शिक्षक दिवस, १९६९

सन्निवेश-दो

सन्निवेश—दो

[राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का विविध रचना संग्रह]

सम्पादक

ज्ञान भारिल्ल

प्रेम सक्सेना

चन्द्रकिशोर शर्मा

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए

चित्रगुप्त प्रकाशन

पुरानी मण्डी, अजमेर.

आमुख

राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के शिक्षा विभाग, राजस्थान, द्वारा प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत अब तक विगत वर्षों में हिन्दी तथा उर्दू की कुल आठ पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इस वर्ष पाँच संग्रह प्रकाशित किये जा रहे हैं जिनमें एक संग्रह राजस्थानी भाषा की कहानियों का भी है।

यह बड़े संतोष तथा प्रसन्नता की बात है कि विभाग की इस योजना का स्वागत सभी क्षेत्रों में हुआ है। सृजनशील शिक्षकों में एक नई उत्साह की लहर उठी है और अब प्रतिवर्ष अधिक से अधिक शिक्षक लेखकों की रचनाएँ प्रकाशनार्थ प्राप्त होने लगी हैं।

आशा है शिक्षक दिवस १६६६ के अवसर पर प्रकाशित किये जा रहे इन ग्रंथों में पाठकों को नई-नई, विविध, रोचक तथा प्रेरणाप्रद सामग्री पढ़ने के लिए प्राप्त होगी और वे उसका पूरा आनन्द उठायेंगे।

राजस्थान के प्रकाशकों ने विभाग की इस प्रकाशन योजना में भरपूर योगदान दिया है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है। इसी प्रकार जिन शिक्षकों ने इन संग्रहों के लिए अपनी रचनाएँ भेजी हैं, वे भी धन्यवाद के अधिकारी हैं।

हरिमोहन माथुर,
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

शिक्षक दिवस, १६६६

अनुक्रम

त्रयी सांख्यं योगः पशुपति मतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिद मदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नाना पथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।

विराट के चरणों में नत, सभी हुए एक मत, जीवन निर्माणरत, शत-शत विमुक्त पथ। 'एक ही अनेक' के विवेक में पगे सभी। त्याग और विराग ने भोग और शृंगार को, ज्ञान और साधना ने शासन और राज को, श्रद्धा और सेवा ने शक्ति और ताज को अपने ही अंकुश में रखकर चलाया। उन्नत अट्टालिकाओं और भव्य प्रासादों की बागडोर मठों और आश्रमों के हाथों में बनी रही। वेदों की वाणी ने व्यष्टि को विमोहा और मंत्रों ने तंत्रों ने समष्टि को संजोया। परोपकार पुण्य और परपीड़न पाप हुआ। अन्तः सौख्य श्रेय और बाह्य सौख्य हेय बना; अनन्त की सत्ता का सारासार ज्ञेय बना—
दीप के प्रकाश में—

शील-शक्ति-सौन्दर्य का अक्षय-अवदात-अंशु, आन-मान-मर्यादा का पुनीत महान पुरुष, दृढ़ प्रतिज्ञ-वचनपालन लोक-कल्याण हित, गरिमामय सद्गृहस्थ-जीवन का [illegible] जिन रघुकुल के देवपूजित महिमामय मोद में, साकेत के अम्बरस्पर्शी प्रासादों की गोद में, धैर्य और सामर्थ्य का समन्वित स्वरूप सदेह प्रकट हुआ।

सो गया। युग-युग की साधना-आराधना का मुक्ति-पंथ विरह-तप्त प्राणों के अश्रु में चमक उठा। वात्सल्य-वेदना ने करुणा प्रवाहित की—विरहिणी की व्यथापूर्ण प्रतीक्षा ब्रज भूमि के कण-कण में कसक उठी—

और फिर—

लोकहित के सबल करों ने दम्भ के राजमुकुट को भूलुंठित कर दिया। अनाचार-कदाचार भस्मीभूत हो गये, अहंकार और दर्प चूर-चूर हो गये—

और फिर—

परंतप को पौरुष का दीक्षामंत्र देते प्रबल स्वर गांडीव और पाञ्चजन्य के गंभीर घोष में गूँज उठे—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

और फिर—

शतसहस्र बाहुयुक्त अन्याय ध्वस्त हुआ, सत्य की विजय हुई—जगत आश्वस्त हुआ—

दीप के प्रकाश में—

गौरव-गरिमामयी, रक्तरंजितकणयुता, वीर प्रसविनी माँ मरुधरा की गोद में प्रकटा एक शौर्य पुञ्ज। तेज तलवारों का पानी छप-छप कर उठा। घोड़ों की टापों और हाथियों की चिंघाड़ों से अरावली की गिरिमालायें स्तम्भित रह गईं। शोणित के नद में शत्रु का तर्पण कर 'केसरिया बाने' ने आन को निभाया। जौहर की ज्वाला ने युग-युग को ज्योति दी, गोरे-गोरे धोरों की धरती सिहर उठी। 'आपणी इला न देणी' वाणी गुंजरित हुई, रक्तभरी 'सैनाणी' यौवन का इष्ट बनी। वैभव-विलास के क्रूरपाश कट गये, शहंशाही फ़रमानों के हौसले पस्त हुए। हिम्मत की कीमत हुई, राजाओं की रौनक गई, तख्तों के पोषक वे शोषक संत्रस्त हुए—

दीप के प्रकाश में—

कीर्ति कलिता, महामहिमान्विता मानिनी मरहठा मही पर मचल उठी एक तलवार। भवानी के भव्य चरणों में पोषित तेज और संयम का मूर्तिमान प्रतिरूप। रोटी-बेटी-चोटी की लाज बचाने वाली बाहों में उमड़ पड़ा जोश का ज्वार और पौरुष का पुञ्ज। रौद्ररूप-ज्वाला में जलकर ताज पहने लगे, तख्ते-ताऊस के नगीने झड़ने लगे। रक्त-चन्दन अभिषिक्त जगदम्बा के वात्सल्य की शुचि छाया में छत्रपति का उन्मुक्त ओज अविरत् अर्चना रत रहा।

दीप के प्रकाश में—

वीर-रक्त-रंजिता, विकट बुन्देल भू के उत्सर्ग-पूत अंगारों के बीच अवतरित हुई अग्नि-शिखा। भैरवी का भीषण-कराल, विकराल रूप रण के

रुधिर-सिक्त प्रांगण में प्रकट हुआ। तरुणाई का सुहाग-सिन्दूर तप्त-रक्त ज्वार के प्रवाह में वह पड़ा। शक्ति की साधना सदेह साकार हुई, शत्रु-सैन्य भयाक्रान्त, स्तम्भित, संत्रस्त हुआ। पौरुष के पुञ्जीभूत ज्वाल में जगमग कर झाँसी का कण-कण फिरंगियों की फांसी बन गया। क्रूरता के निष्करुण प्रहार मुक्ति-मार्ग-साधना से बारम्बार पराजित हुए। जागृति की जाह्नवी दिशि-दिशि लहरा उठी। लखनऊ के नौलखे हार और नागपुर के ज़ेवरों की सरेआम नीलामी ने घर-घर आग लगा दी। परदेशी के प्रहार से परदे की इज्जत बचाने शतसहस्र शीश एक साथ उठ गये। हरबोलों के बोलों में ढालों और भालों के, तीर-तलवारों के तेजस्वी शब्द तैरने लगे। मुक्ति-आराधना का भीषण स्वरूप देख शत्रु-संकल्पों का गढ़ ढहने लगा।

और फिर—

दुष्कर-दारुण दर्प से दबी धरती ने करवट ली। पञ्चनद की लहरों में जोश का ज्वार उठा। यूनानी भुजदण्डों की उद्दण्डता को चोखी सीख देने वाले हाथ फिर सनाथ हुए। वंग के रंग ने कण-कण को रंग डाला। गंगा और यमुना की उच्छल तरंगों ने समस्त जनमानस को शौर्य से सींच दिया। हिमगिरि ने गर्जना की विन्ध्याचल डोल उठा। दक्षिण का सागर संघातों में बोल उठा।

और फिर—

फाँसी के फन्दे गलों के हार बनने लगे, गनों की गोलियों के आगे सीने तनने लगे; जननी के चरण तप्तरक्त में सनने लगे। कारागृह मन्दिर बने, सत्याग्रह पूजा-विधि। इन्क़लाब के गम्भीर घोष से दिग्दिगन्त डोल उठा। एक गिरा-एक उठा, पर निशान थमा रहा। तिरंगे के रंगों पर क्रान्ति फहरा उठी—हिन्द की आज़ाद फ़ौज सीमा पर छा उठी। हथकड़ियाँ—बेड़ियाँ सब मुक्ति-गीत गा उठीं। सूली पर शहीदों की टोलियाँ मुस्करा उठीं।

और फिर—

जलियाँवाला बाग की मासूम चीखों ने दमन के दुखदायी दम्भ को दबोच दिया। दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित हिंसा के दामन पर गहरा दाग लगा—फिरंगी थर्रा उठा—नृशंसता के पाश—ढीले पड़े और तिजारत का छलिया ताज सात समुन्दर पार लौट गया।

और फिर—

एक मुक्त अरुणोदय, एक नव जीवन जोत, एक अनन्त विश्वास, एक अटूट आस्था, श्रम और साधना, सृजन और निर्माण का कारवाँ चल पड़ा—समृद्धि और—विकास की ओर। रक्तपात-चीत्कार समर्थक हिंस्र लाल अजगर ने

विषभरी फुंकारें कीं—पर कारवाँ चलता गया । तैमूर के बेटों ने पुनः लूटपाट की—पर दीप जलता रहा ।

प्रलय के संघातों में, मशरत हाथों मे जला दीप त्रेता और द्वापर के द्वार पर जलता रहा । पुराणों के पृष्ठों को स्वर्णाभा देता दीप, इतिहास के हास और रोदन का साक्षी बना । आत्मनिष्ठ–करुणा और विश्वप्रेम पगा दीप, हिंसा के प्रबल वेग प्रभंजन से बचता रहा । युग-युग की साधना-आराधना से सजा दीप, शोषण के सबल करों से लड़ता रहा ।

दीप—अगणित उच्छ्वासों और श्वासों से सजा दीप,
दीप—अनन्त विश्वासों और आस्थाओं से वलयित दीप,
दीप—युगयुग से नेह-शवलित प्राणों से पुलकित दीप,

संस्कृति का स्वर्णदीप !
जागृति का ज्योति दीप !!
प्रगति का पुण्य दीप !!!
दीप जलता रहा—दीप जलता रहे !

गीत व्याख्या

• राजेश 'चंचल'

प्रशस्ति की छत पर शब्दहीन रिमझिम है। वृष्टि का आभास मात्र प्राण भिगो देता है। सम्मान की शिलाओं पर जमी हुई काई है। और मेरे पग हैं, जो फिसलने को आतुर हैं। आवाज़ें आती हैं, "वाह! वाह!! वाह!!!" धन्यवाद इतने हैं—भेड़ों के समूह से। और इसी झुंड में खोया मैं कभी से हूँ।

चरवाहा नहीं हूँ मैं। टिटकारी नहीं देता। मैं तो बस अहं के फूंकता हूँ अलगोजे! आह! मेरे दग्ध मन! धीर धर! मोह छोड़ मुरली का, राधा से प्रीत जोड़! राधा जो स्नेह की एक स्वस्थ आभा थी। उसी दिव्याभा से अभिभूत हो जी रहा है नंद सुत! मधुवन-वंशीवट के इतिहास भी अमर हैं सब!"

मैं क्या हूँ? प्रश्न हूँ! आत्मा से आत्मा का उलझा व्यक्तित्व हूँ। सुलझने के क्रम में मेरा कहीं नाम नहीं। मण्डी में खड़ा हूँ, मगर लगता है दाम नहीं। काश! कहीं बिक जाता, या कि फिर चुक जाता! या फिर अपने ही इस सीमित क्षेत्र में सिमट कर रह जाता।

मगर; कुछ नहीं हुआ। मनुष्य का चाहा हुआ, चाह तक ही रह गया। डूबते को उतराने चला था एक कवि बनकर, लेकिन मैं स्वयं ही हाय! तिनके सा बह गया। तब हुआ अस्तित्व बोध! भावना का महाशोध! कविता से बनी नहीं, बनिता से बनी नहीं। अकेला-अकेला सा, कंठ तक आया हुआ, करुणा का स्वर हूँ मैं, या कि कोई गीत हूँ!

बोलो न धर्म मीत! मेरे शुचितम् अतीत!!

मैं हूँ अगीत या बिंधे हुए अंतस का स्वयं पीर गीत हूँ।

••

आवागमन

• ब्रजेश 'चंचल'

ज्ञान का अथाह सिन्धु ! और वहाँ में बहुत गहरे तक पैठ जाने की महत्वाकांक्षा ! गहराई तो पग-पग पर मिली, अधिक गहरे पैठने को जी भी हुआ। जब कभी धारों के दर्पण मे देखा, तो अंतरिम वरुण कक्ष के साथ-साथ बाहर के तट भी दिखाई देने लगे। हतप्रभ से रह गये प्राण। तटों के आकर्षण चारों ओर से घेरते चले गये।

इतना निर्जन एकान्त : और यह रस भरा संगीत !

"काम की खंजरी, क्रोध का मृदंग, मोह की मुरली और लोभ की पखावज।" ताल पर ताल लगती रही, धुन पर धुन बरसती रही। अहर्निश चलता रहा यह तट का संगीत ! और ये अट्टहास शोर, खिलखिलाहटें, माधुर्य मेरे मानस पटल पर ऐसे अंकित होते चले गये, जैसे किसी अनुभवी संगतराश ने मिट्टी का सुन्दर सा मन्दिर बनाकर, उस पर नकली हीरे-मोती जड़ दिये हों।

जब कभी डुबकी लगाने का क्रम आया, तो सम्पूर्ण सिन्धु ही उथला-उथला लगने लगा। अनायास ही ध्यानस्थ हो गया मैं ! ध्यानस्थ स्थिति में एक आकर्षक बिम्ब उतरा, आँखें मसल-मसल कर देखा, तो वह किसी भव्य अनश्वर का नहीं, वरन् एक नश्वर मिट्टी का अवशेष मात्र था। आस्था के विशाल स्वर्ण थाल मे महत्वहीन जूठन के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं था।

एक बेर-सी घुटन को बाजुओं मे समेटे, दर्शकों की पंक्ति मे टूटकर मैं अकेला थका-थका सा होकर एक सँकरी पगडंडी पर बैठ गया।

एक विशाल भीड़, अनन्त कोलाहल। इस छोर से उस छोर तक आवाजें ही आवाजें ! मैंने सोचा, और आँखें मूँदकर अपने आत्म-बोध से पूछा—"कैसा है यह अनन्त ! चारों ओर समाप्ति के घेरे हैं। न द्वार खुला है, न खिड़की।

हर क्षण पटाक्षेप-सा लगता है। हर जन्म के चेहरे पर पहले दिन ही मरण की महारेखा दिखाई देने लगती है।

हतप्रभ हूँ मैं इस प्रकृति परिवर्तन पर। और अपनी भूल पर कि मैंने अब तक अपने ही अंतरिम कक्ष में क्यों नहीं झाँका, जहाँ मेरा इष्ट कभी से मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मैं सर्व सत्य सत्ता से भागा, मगर सत्य ने कभी मुझसे अपनी बाँह नहीं छुड़ायी। सत्य ने बहुत ही आत्मीयता से मुझे दुलारा: और कहा—"जो आया था, वह गया। जो आता है, वह जाता है। जो आएगा, वह भी जाएगा। ये तीन काल सीढ़ियाँ, और यह हारा-टूटा पथिक! निस्तार हो तो कैसे?"

आवागमन ही वह निश्चित भाव संज्ञा है, जिससे बँधा हुआ मनुष्य तो निमित्त मात्र है। कुछ भी तो स्थिर नहीं है यहाँ। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, गगन, तारे सब चलते हैं !!!

••

या.....अल्लाह !

• श्रीमती शकुन्तला 'रेणु'

महारानी पद्मिनी ! राणा रत्नसेन की महारानी पद्मिनी ! अद्वितीय सुन्दरी............पद्मिनी............!!—सुलतान अलाउद्दीन के मन में बारम्बार यही ध्वनियाँ टकराती और वह विकलता से अपने अन्तःपुर में इधर-उधर घूमने लगता।

तत्कालीन सम्राज्ञियों में महारानी पद्मिनी अनिन्द्य सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता की गाथाएँ दूर-दूर तक फैल चुकी थी। दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ने भी सुना—दर्शन की इच्छा वेगवती हो उठी।

चित्तौड़गढ़!! राणा रत्नसेन का अन्तःपुर!! दिल्ली का सुलतान अलाउद्दीन मित्रता का हाथ बढ़ाकर राणा का मेहमान बना है। शाही स्वागत में किसी प्रकार की कमी नही रखी गई। "किन्तु"......पद्मिनी........?........ दिल्ली का सम्राट"......,पद्मिनी के दर्शन.......,और क्षत्रिय-मर्यादा ?........ 'अब'......?.......रत्नसेन क्या करे ?........

पद्मिनी सुलतान के सम्मुख न आये तो मैत्री का अपमान होता है। आती है, तो क्षात्रधर्म की मर्यादा टूटती है। राणा की रग-रग में गरम खून दौड़ गया। उनका मन उद्वेलित हो उठा। किन्तु—?

पद्मिनी आयी ! मर्यादा की रक्षिका वीर क्षत्राणी शहंशाह के सम्मुख आयी!—दर्पण में प्रतिबिम्बित हो उठी!! सुलतान के नेत्र चन्द्रमुख के चकोर बन गये............अपलक............निढाल!! (शिथिल.......उत्साहहीन!!)

क्यों भला ? निढाल क्यों ?—क्योंकि यह रूप-सज्जा उसके अन्तःपुर की शोभा न थी। और, परिणीता वीर राजपूतनी का मर्यादाभंग ? खुली शेरनी से खेलने के समान था। मौत की घाटी नजर आती थी। क्षण भर को सुलतान की आँखें मिच गईं।

और, क्या सोचा होगा तब सुलतान ने ?—अपने वैभव उसे बड़े तुच्छ जान पड़े। अपनी ही सत्ता उसे नोचने लगी। "जब तक आसमान का चाँद धरती पर न आए तब तक इस शहंशाहत पर लानत है, सल्तनत मिट्टी है।"—एक निश्वास और अडिग आँखें!! अब वहाँ मात्र दर्पण था, पद्मिनी नहीं थी।

स्वागत समाप्त हुआ। सुलतान विदा लेने लगे। राणा रत्नसेन प्रसन्नता से द्वार तक उन्हें छोड़ने आये। किन्तु यह क्या ?—राणा रत्नसेन बन्दी बने सुलतान के साथ दिल्ली जा रहे थे। चित्तौड़ में हाहाकार मच गया।

अलाउद्दीन का छल सामने प्रकट हुआ। पद्मिनी को कहलाया गया—"यदि रत्नसेन का जीवन सुरक्षित चाहती हैं तो दिल्ली के अन्तःपुर में पधारें।"

संदेशा आया। महारानी पद्मिनी ने उसे सुना। मुख पर रक्त धारायें दौड़ गयीं। भौंहें वक्र हुईं। ओठ काट लिये। किन्तु, तुरन्त ही अधर पर दृढ़ता भरी मुसकान खेल गई,—"मैं·······दिल्ली·······आऊँगी·······उसने कहला भेजा—"किन्तु सात सौ अभिन्न सहेलियों के साथ। और, अंतःपुर प्रवेश से पूर्व महाराणा से एकान्त में भेंट करने की इजाजत मिले।"

बात मान ली गई।

सुलतान ने देखा—सात सौ सजी हुई डोलियाँ दिल्ली की ओर चली·······आ रही हैं···········!! उसका मन मयूर नर्तन कर उठा। रक्त बाँसों उछलने लगा। सुलतान की खुशी का पार न था। उसकी एक मुराद पूरी हो रही थी। लेकिन ? पासा पलटा!—

क्षात्रधर्म के रक्षक, रण बाँकुरे क्षत्रिय वीरों ने अलाउद्दीन के दाँत खट्टे कर दिये। राणा रत्नसेन वापस चित्तौड़ लौटे। पद्मिनी ने मंगला आरती उतारी। और, सुलतान·······? सुलग उठा!!·······

पद्मिनी के रूप ने तो सुलतान को हराया ही, लेकिन उसके बुद्धि कौशल ने भी उसको परास्त कर दिया। दिल्ली का सुलतान! एक स्त्री से पराजित ?—

रणभेरियाँ बज उठीं। चित्तौड़ पर काले बादल घुमड़ आये। तलवारों की बिजलियाँ कौंध गईं। रक्त की नदियाँ बह निकलीं। रणचण्डी के खप्पर नरमुण्डों से भर गये। आन के पीछे सब राजपूत मर मिटे।

वीरान चित्तौड़ के अन्तःपुर में दर्प भरा·······विजय भरा·······हर्ष भरा सुलतान आया—पद्मिनी का वही सौन्दर्य चित्र अन्तःकरण में लिये। किन्तु वहाँ·······? क्या देखा उसने·······? वीर क्षत्राणी का अपूर्व जौहर ! धधकती चितायें!! दहकती होलियाँ!!!

और, क्या सोचा होगा तब सुलतान ने ?—अपने वैभव उसे बड़े तुच्छ जान पड़े। अपनी ही सत्ता उसे नोचने लगी। "जब तक आसमान का चाँद धरती पर न आए तब तक इस शहंशाहत पर लानत है, सल्तनत मिट्टी है।"—एक निश्वास और अडिग आँखें!! अब वहाँ मात्र दर्पण था, पद्मिनी नहीं थी।

स्वागत समाप्त हुआ। सुलतान विदा लेने लगे। राणा रत्नसेन प्रसन्नता से द्वार तक उन्हें छोड़ने आये। किन्तु यह क्या ?—राणा रत्नसेन बन्दी बने सुलतान के साथ दिल्ली जा रहे थे। चित्तौड़ में हाहाकार मच गया।

अलाउद्दीन का छल सामने प्रकट हुआ। पद्मिनी को कहलाया गया—"यदि रत्नसेन का जीवन सुरक्षित चाहती हैं तो दिल्ली के अन्तःपुर में पधारें।"

संदेशा आया। महारानी पद्मिनी ने उसे सुना। मुख पर रक्त धारायें दौड़ गयीं। भौंहें वक्र हुईं। ओठ काट लिये। किन्तु, तुरन्त ही अधर पर दृढ़ता भरी मुसकान खेल गई,—"मैं·······दिल्ली·······आऊँगी·······उसने कहला भेजा—"किन्तु सात सौ अभिन्न सहेलियों के साथ। और, अंतःपुर प्रवेश से पूर्व महाराणा से एकान्त में भेंट करने की इजाज़त मिले।"

बात मान ली गई।

सुलतान ने देखा—सात सौ सजी हुई डोलियाँ दिल्ली की ओर चली····
········आ रही हैं···········!! उसका मन मयूर नर्तन कर उठा। रक्त बाँसों उछलने लगा। सुलतान की खुशी का पार न था। उसकी एक मुराद पूरी हो रही थी। लेकिन ? पासा पलटा!—

क्षात्रधर्म के रक्षक, रण बाँकुरे क्षत्रिय वीरों ने अलाउद्दीन के दाँत खट्टे कर दिये। राणा रत्नसेन वापस चित्तौड़ लौटे। पद्मिनी ने मंगला आरती उतारी। और, सुलतान·······? सुलग उठा!!·······

पद्मिनी के रूप ने तो सुलतान को हराया ही, लेकिन उसके बुद्धि कौशल ने भी उसको परास्त कर दिया। दिल्ली का सुलतान! एक स्त्री से पराजित ?—

रणभेरियाँ बज उठीं। चित्तौड़ पर काले बादल घुमड़ आये। तलवारों की बिजलियाँ कौंध गईं। रक्त की नदियाँ बह निकलीं। रणचण्डी के खप्पर नरमुण्डों से भर गये। आन के पीछे सब राजपूत मर मिटे।

वीरान चित्तौड़ के अन्तःपुर में दर्प भरा·······विजय भरा·······हर्ष भरा सुलतान आया—पद्मिनी का वही सौन्दर्य चित्र अन्तःकरण में लिये। किन्तु वहाँ·······? क्या देखा उसने·······? वीर क्षत्राणी का अपूर्व जौहर ! धधकती चिताएँ!! दहकती होलियाँ!!!

और, क्या सोचा होगा तब सुलतान ने ?—अपने वैभव उसे बड़े तुच्छ जान पड़े। अपनी ही सत्ता उसे नोचने लगी। "जब तक आसमान का चाँद धरती पर न आए तब तक इस शहंशाहत पर लानत है, सल्तनत मिट्टी है।"—एक निश्वास और अडिग आँखें!! अब वहाँ मात्र दर्पण था, पद्मिनी नहीं थी।

स्वागत समाप्त हुआ। सुलतान विदा लेने लगे। राणा रत्नसेन प्रसन्नता से द्वार तक उन्हें छोड़ने आये। किन्तु यह क्या ?—राणा रत्नसेन बन्दी बने सुलतान के साथ दिल्ली जा रहे थे। चित्तौड़ में हाहाकार मच गया।

अलाउद्दीन का छल सामने प्रकट हुआ। पद्मिनी को कहलाया गया—"यदि रत्नसेन का जीवन सुरक्षित चाहती हैं तो दिल्ली के अन्तःपुर में पधारें।"

संदेशा आया। महारानी पद्मिनी ने उसे सुना। मुख पर रक्त धारायें दौड़ गयीं। भौंहें वक्र हुईं। ओठ काट लिये। किन्तु, तुरन्त ही अधर पर दृढ़ता भरी मुसकान खेल गई,—"मैं.......दिल्ली.......आऊँगी.......उसने कहला भेजा—"किन्तु सात सौ अभिन्न सहेलियों के साथ। और, अंतःपुर प्रवेश से पूर्व महाराणा से एकान्त में भेंट करने की इजाज़त मिले।"

बात मान ली गई।

सुलतान ने देखा—सात सौ सजी हुई डोलियाँ दिल्ली की ओर चलीं....
.......आ रही हैं............!! उसका मन मयूर नर्तन कर उठा। रक्त बाँसों उछलने लगा। सुलतान की खुशी का पार न था। उसकी एक मुराद पूरी हो रही थी। लेकिन ? पासा पलटा!—

क्षात्रधर्म के रक्षक, रण बाँकुरे क्षत्रिय वीरों ने अलाउद्दीन के [illegible] कर दिये। राणा रत्नसेन वापस चित्तौड़ लौटे। पद्मिनी ने मंगल [illegible] उतारी। और, सुलतान.......? सुलग उठा!!........

पद्मिनी के रूप ने तो सुलतान को हराया ही, लेकिन उसके बुद्धि [illegible] भी उसको परास्त कर दिया। दिल्ली का सुल्तान! एक स्त्री से पराजि[illegible]

रणभेरियाँ बज उठीं। चित्तौड़ पर काले बादल घुमड़ आये। [illegible] की बिजलियाँ कौंध गईं। रक्त की नदियाँ बह निकलीं। रणचण्डी के [illegible] नरमुण्डों से भर गये। आन के पीछे सब राजपूत मर मिटे।

वीरान चित्तौड़ के अन्तःपुर में दर्प भरा.......विजय भरा.......ह[illegible] सुल्तान आया—पद्मिनी का वही सौन्दर्य चित्र अन्तःकरण में लिये। वहाँ.......? क्या देखा उसने.......? वीर क्षत्राणी का अपूर्व जौह[र] धधकती चिताएँ!! दहकती होलियाँ!!!

पद्मिनी ने उसे यहाँ भी परास्त किया। आग की लपटें अमर सतीत्व की गौरव गाथा, गगन में फहरा रही थीं।

और सुलतान?—

गला फाड़कर चीख उठा—

"........अ.......अल्ला.......हू........"

••

राम रंजाट के दो प्रसंग

° श्री नन्दन चतुर्वेदी

कविराजा सूर्यमल्लजी के इस अप्रकाशित ग्रन्थ रामरंजाट के दो प्रसंगों से अभिप्राय तीज-त्यौहार के साथ किये गये वर्षा-वर्णन और नवरात्री के बाद विजयादशमी पर किये गये रामलीला वर्णन से है। 'रामरंजाट' में राव-राजा रामसिहजी के विवाह[1], तीज-त्यौहार[2], रामलीला[3], हय[4], गज[5], बूंदी के तारागढ़[6], चौबरज्या[7] तथा शिकार[8] आदि के वर्णन यत्र-तत्र बिखरे हैं। कविराजा सूर्यमल्ल का उदीयमान साहित्यिक वहाँ प्रत्येक प्रसंग की पंक्ति-पंक्ति से झांक रहा है तथापि ग्रन्थ के उपरोक्त दोनों प्रसंग समूचे कथ्य में अपना विशेष अस्तित्व रखते हैं।

उल्लेखनीय तथ्य है कि 'रामरंजाट' कविराजा सूर्यमल्लजी के बचपन की रचना है, जिसे उन्होंने १० वर्ष की अवस्था में लिखा था। ग्रन्थ की समाप्ति पर एक दोहा मिलता है—

संवत् सरस अठार सै, साल बियासी संत।
रवि वसंत पांचै रहसि, गिरा संपूरण ग्रंथ ॥[9]

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ—७ से १५ तक
२. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—१६ से ३० तक
३. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—३३ से ५४ तक
४. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—२१
५. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—२२ से २५ तक
६. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—७१, ७२
७. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—७३
८. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—९४
९. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ—१११

अंतर्साक्ष्य से स्पष्ट है कि ग्रन्थ संवत् १८८२ विक्रमी की बसन्त पंचमी के दिन संपूर्ण हुआ। दोहे के बाद गद्य की छः पंक्तियाँ भी यही आशय व्यक्त करती हैं, "इति श्री महाराजधिराज म्हाराव राजा श्री रामसिंघ नृपति अज्ञात कवि सूर्यमल विरचित रामरंजाट ग्रन्थ सम्पूर्ण। मासानामोत्तमे मासे माघव मासे शुभ शुक्ल पक्षे वसन्तपंचम्यां रवि वासरे अस्विन नक्षत्रे ॥ संवत् १८८२ ॥ शुभ मस्तु। कल्याणमस्तु ॥[1]........"

सूर्यमल्लजी का जन्म कवि रत्नमाला पृष्ठ ११४, राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा पृष्ठ १४४, डिंगल में वीररस पृष्ठ ६८ और वीर सतसई (भूमिका) पृष्ठ १२ के आधार पर संवत् १८७२ विक्रमी प्रामाणिक ठहरता है। इस प्रकार रामरंजाट की समाप्ति पर उनकी आयु १० वर्ष से अधिक नहीं ठहरती। प्रस्तुत लेख के प्रमाण—सूर्यमल्ल स्मारक समिति, बूंदी के सचिव डॉ० ओमकारनाथ चतुर्वेदी से उपलब्ध रामरंजाट की मूल हस्तलिखित प्रति से लिये गये हैं, जो सूर्यमल्लजी के प्रपौत्र चारण चण्डीदानजी के पास सुरक्षित है। यह प्रति स्वयं सूर्यमल्ल मिश्रण के हाथ की लिखी हुई है। अस्पष्ट लिखावट, पृष्ठों पर अंकित गिनती की अशुद्धियाँ[2], स्वयं को "अज्ञातकवि सूर्यमल" लिखना, वर्तनी की अशुद्धियाँ, यत्र-तत्र अक्षर-रचना के बाल-सुलभ अभ्यास तथा प्रारम्भ में 'श्री रामजी' "श्री श्री सरस्वती बुद्धि दीजे हैं" जैसे वाक्य कृतिकार के अल्पवयस्क होने तथा रामरंजाट की इस प्रति को उसी के हाथ से लिखे जाने की पुष्टि करते हैं।

विशेष महत्वपूर्ण तथ्य यही है कि दसवर्ष के इस कवि की कृति में ओज-प्रसाद और माधुर्य का कितना बड़ा भण्डार भरा पड़ा है। वर्षा वर्णन और रामलीला के युद्ध वर्णन तो पृथ्वीराजरासो का स्मरण करा देते हैं।

तीज—त्यौहार और वर्षा-वर्णन

बूंदी की तीज राजस्थान में प्रसिद्ध है। सूर्यमल्लजी की वाणी ने तत्का-लीन तीज-समारोह का कितना विशद वर्णन किया है। रावराजा रामसिंह झुंझनू से दूसरा विवाह करके लौटे हैं। वर्षा ऋतु आगई है। तीज का उत्सव प्रारम्भ हो गया है। बिजली चमकने लगी, मोर बोलने लगे। उत्तर की

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ—१११

२. सूर्यमल्लजी ने रामरंजाट की इस प्रति में पृष्ठ १०६ को १००६, ११० को १००१० व १११ को १००११ लिखा है।

—रामरंजाट : ह० लि० प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ १०६, ११०, १११

अटारी पर रंग-बिरंगी घटा छा गई। मेघ की गम्भीर आवाज से धरती धमकने लगी। अब तो दिन-रात का भेद भी नहीं दिखाई देता। विष्णुजी के सुपुत्र राजा रामसिंह उत्साह-पूर्वक ऐसे समय तीज-त्यौहार में रम रहे हैं—

इम उछ्व तीज प्रारम्भ किया, अब बीज चमंकत राह बिहूं,
झल मंगल और अमंगल झौंकत, मोर कोहोकत राति-दिहूं।
चलि बाय प्रचंड उदंड चहूं दिसि, बादल जुत्थ अकास भ्रमें
विसनेस सुभाव उछाव बधोतर, राव असि बिधि तीज रमै।[1]
रंग-रंग घटा उतराध अटा चढि च्यार तरफ्फ छटा चमकै
अति मेघ अवाज भयंकर ओपम, धाम धराधर भू धमकै,
दिन-राति न भेदे अभेद दरस्सत, संतज भूलत संधि समै। विसनेस........[2]

आसमान में पवन का गमन बड़ा क्षिप्र है। प्रोषित पतिकायें भू पर लोट रही हैं। गिरि की खोहों में नीर का प्रवाह उद्दाम वेग से बह रहा है—

असमान गवन्न पवन्न उडावत, मोर बढावत सोर मही,
षतषोटत जे प्रोषित पतिका, सुणि लोटत भू प्रमुदा जु सही,
अति नीर प्रवाह चलंत उतावल गाजत षोह जिता गिर मैं। विसनेस....[3]

धरती पर सर्वत्र नीर ही नीर दर्शित है, मेंढ़क, अहि और झिल्लीगण बोलने लगे—

नदि डावर नीर निवाण जिता मिलि एकइता सर होत मही,
जल व्यंब दरस्सत वारि बरस्सत एक सरस्सत भेक अही,
बोहो दादुर सोर झली गण बोलत छोलत ब्रहणी डाह छमै। विसनेस....[4]

सावन की रात्रि में तो समागम की राह भी मुश्किल से मिल पाती है—

अंधियार निसा बणि सावण, आगम संद समागम राह मिलै
जल लहर छोल झकोल जमी पर पोत गमी पर जाणि प्रलै।[5]

वर्षा ऋतु की इस प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर सामाजिक दृश्य भी कितना स्पृहणीय होकर उभरा है—

चोतरफा प्रमुदा चतुर लड़ हींदा लटकाय,
हींवै अपछरि ज्यूं हरषि खिण-खिण झोला खाय
कियां कसूमल केसर्‌यां हियां हीउलै हारं,
गावै लूहरि रागणा झांझ स्यंग झणकार[6]

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ—१६.
२—३. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—१७.
४—५. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—१८.
६. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—२६.

चारों दिशाओं में बिजली चमक रही है। झिल्ली गण और दादुर झंकार कर रहे हैं। वर्षा की झड़ी में भी रावराजा रामसिंग का उत्साह ठण्डा नहीं पड़ा है। लाल-हरा और केसरिया रंग बह-बह कर मिल रहा है, मिल-मिल कर बह रहा है—

चमकंत बीज अति दिसा च्यार, झिल्ली गण दादुर झंतकार
उड़ि ढोल् रोल् बोलो अनेक, बोधाड़ पवन झपटो बिसेक ॥[1]
भीजतो रंग, धुवतो अभंग, रत हरित केसर्या बहत रंग
रामो अलबेल्यो महाराज, सब कियां केसर्या गरक साज ॥[2]
इण रीति मदन मूरति उदार, धोरां रंग बहतो नीर-धार ॥[3]

वर्षा बीत गई। शरद ऋतु आ गई। नवरात्रा प्रारम्भ हुए। पूजन शुरू हुआ। वातावरण का चित्रण द्रष्टव्य है—

बरषा गई बीत आई सरद्, हुआ दुंदभी नाद नीसाण नद्।
करे पूजनं नो दिनं देवि केरो, घुरै नद् नीसाण बंबी घनेरो।
अडींयंभ चहुवाण "सत्यूरि" आया, भली तिथि आठैं, सदा मन भाया।
करै पूजनं रक्तदंता सुकेरी, पडे पाठ दुर्गा सता बीस वेरी।
करे बाकरा प्राणि बलिदान केही, तसां ईसरं थांन वाही सुतेही।[4]

नवमी तक पूजा व बलिदान का क्रम पूरा हुआ। विजयादशमी आगई और रामलीला प्रारम्भ हुई।

विजयादशमी का रामलीला वर्णन

रावण की प्रचंड लंका नगरी बनाई जाती है, जिसके रक्षक रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद जैसे भट हैं। रावराजा रामसिंह राम की भाँति रावण पर चढ़ाई करते हैं। दूत भेजकर रावण को मनाया जाता है, किन्तु रावण नहीं मानता। मेघनाद, कुंभकर्ण आदि सभी योद्धा लड़ते हुए काम आते हैं। यहाँ दूत और रावण का संवाद तथा बाद में युद्ध वर्णन द्रष्टव्य है। संवाद में तो कला पक्ष के साथ ही भावपक्ष भी बड़ा ही सबल बन पड़ा है—

दूत— जानकी देर सब तजि जिलो आशो मिलो अवधेस सूं।
रावण— ब्रह्मा बद ब्रहसपति वेद मो आगल् बांचै
वस हो भइ दगपाल सदा सेवा मुझ साचै

1. रामरंजाट . हस्तलिखित प्रति . सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ २६
2–3. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ २८
4. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ ३१
5. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ ३६

अटारी पर रंग-बिरंगी घटा छा गई। मेघ की गम्भीर आवाज़ से धरती धमकने लगी। अब तो दिन-रात का भेद भी नहीं दिखाई देता। विष्णुजी के सुपुत्र राजा रामसिंह उत्साह-पूर्वक ऐसे समय तीज-त्यौहार में रम रहे हैं—

इम उछव तीज प्रारम्भ किया, अब बीज चमंकत राह बिहूं,
झल मंगल और अमंगल झौंकत, मोर कोहोकत राति-दिहूं।
चलि बाय प्रचंड उदंड चहूं दिसि, बादल जुत्थ अकास भ्रमें
विसनेस सुभाव उछाव वधोतर, राव असि विधि तीज रमै।[1]
रंग-रंग घटा उतराध अटा चढि च्यार तरफ्फ छटा चमकै
अति मेघ अवाज भयंकर ओपम, धाम धराधर भू धमकै,
दिन-राति न भेदे अभेद दरस्सत, संतज भूलत संधि समै। विसनेस........[2]

आसमान में पवन का गमन बड़ा क्षिप्र है। प्रोषित पतिकायें भू पर लोट रही हैं। गिरि की खोहों में नीर का प्रवाह उद्दाम वेग से बह रहा है—

असमान गवन्न पवन्न उडावत, मोर बढावत सोर महो,
बतबोटत जे प्रोषित पतिका, सुणि लोटत सू प्रमुदा जु सही,
अति नीर प्रवाह चलंत उतावल गाजत बोह जिता गिर मैं। विसनेस....[3]

धरती पर सर्वत्र नीर ही नीर दर्शित है, मेंढ़क, अहि और झिल्लीगण बोलने लगे—

नदि डाबर नीर निवाण जिता मिलि एकइता सर होत मही,
जल व्यंब दरस्सत वारि बरस्सत एक सरस्सत भेक अही,
वोहो दादुर सोर झली गण बोलत छोलत व्रहणी डाह छमै। विसनेस....[4]

सावन की रात्रि में तो समागम की राह भी मुश्किल से मिल पाती है—

अंधियार निसा वणि सावण, आगम मंद समागम राह मिलै
जल लहर छोल झकोल जमी पर पोत गमी पर जाणि प्रलै।[5]

वर्षा ऋतु की इस प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर सामाजिक दृश्य भी कितना स्पृहणीय होकर उभरा है—

चोतरफा प्रमुदा चतुर लड़ हींदा लटकाय,
हींवै अपछरि ज्यूं हरषि षिण-षिण झोला पाय
कियां कसूमल केसर्यां हियां हीउलै हारं,
गावै लूहरि रागणा झांझ स्यंग झणकार[6]

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ—१६.
२–३. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—१७.
४–५. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—१८.
६. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—२६.

चारों दिशाओं में बिजली चमक रही है। झिल्ली गण और दादुर झंकार कर रहे हैं। वर्षा की झड़ी में भी रावराजा रामसिंग का उत्साह ठण्डा नहीं पड़ा है। लाल-हरा और केसरिया रंग बह-बह कर मिल रहा है, मिल-मिल कर बह रहा है—

चमकंत बीज अति दिसा च्यार, झिल्ली गण दादुर झंतकार
उड़ि घोल् रोल् बोलां अनेक, बोछाड़ पवन झपटो बितीक ॥[1]
भीजतां रंग, चुकतां अभंग, रत हरित केसर्‌यां बहत रंग
रामो मलबेल्यो महाराज, सब कियां केसर्‌यां गरक साज ॥[2]
इण रीति मदन मूरति उदार, घोरां रंग बहतो नीर-धार ॥[3]

वर्षा बीत गई। शरद ऋतु आ गई। नवरात्रा प्रारम्भ हुए। पूजन शुरू हुआ। वातावरण का चित्रण द्रष्टव्य है—

बरषा गई बीत आई सरद्द, हुआ दुंदभी नाद नीसाण नद्द।
करे पूजनं नो दिनं देवि केरो, धुरै नद्द नीसाण बंबी घनेरो।
अष्टीयंभ चहुवाण "सत्पुरि" आया, भली तिथ्यि आठें, सदा मन्न भाया।
करै पूजनं रक्तदंता सुकेरी, पढ़ै पाठ दुर्गा सता बीत बेरी।
करे बाकरा प्राणि बलिदान केहो, तसां ईसरै थांग बाहो सुतेहो।[4]

नवमी तक पूजा व बलिदान का क्रम पूरा हुआ। विजयादशमी आगई और रामलीला प्रारम्भ हुई।

विजयादशमी का रामलीला वर्णन

रावण की प्रचंड लंका नगरी बनाई जाती है, जिसके रक्षक रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद जैसे भट हैं। रावराजा रामसिंह राम की भाँति रावण पर चढ़ाई करते हैं। दूत भेजकर रावण को मनाया जाता है, किन्तु रावण नहीं मानता। मेघनाद, कुंभकर्ण आदि सभी योद्धा लड़ते हुए काम आते हैं। यहाँ दूत और रावण का संवाद तथा बाद में युद्ध वर्णन द्रष्टव्य है। संवाद में तो कला पक्ष के साथ ही भावपक्ष भी बड़ा ही सबल बन पड़ा है—

दूत— जानकी देर सब तजि जिलो आणो मिलो अवधेस सूं।
रावण— ब्रह्मा अरु बृहस्पति बेद मो आगल् बांचै
दस ही भड़ दृगपाल सदा सेवा मुझ सांचै

---

१. रामरंजाट . हस्तलिखित प्रति . सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ २६
२-३. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ २९
४. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ ३१
५. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ ३६

अटारी पर रंग-विरंगी घटा छा गई। मेघ की गम्भीर आवाज़ से धरती धमकने लगी। अब तो दिन-रात का भेद भी नहीं दिखाई देता। विष्णुजी के सुपुत्र राजा रामसिंह उत्साह-पूर्वक ऐसे समय तीज-त्योहार में रम रहे हैं—

इम उछव तीज प्रारम्भ किया, अब बीज घमंकत राह बिहूं,
झल मंगल और अमंगल झौंकत, मोर कोहोकत राति-दिहूं।
चलि वाय प्रचंड उदंड चहूं दिसि, बादल जुत्थ अकास भ्रमें
बिसनेस सुभाव उछाव वधोतर, राव असि विधि तीज रमें।[1]
रंग-रंग घटा उतराध अटा चढि च्यार तरफ्फ छटा चमकै
अति मेघ अवाज भयंकर ओपम, धाम धराधर नू धमकै,
दिन-राति न भेदे अभेद दरस्सत, संतज भूलत संधि समै। बिसनेस......[2]

आसमान में पवन का गमन बड़ा क्षिप्र है। प्रोषित पतिकायें भू पर लोट रही हैं। गिरि की खोहों में नीर का प्रवाह उद्दाम वेग से वह रहा है—

असमान गवन्न पवन्न उडावत, मोर वढावत सोर मही,
षतषोटत जे प्रोषित पतिका, सुणि लोटत सू प्रमुदा जु सही,
अति नीर प्रवाह चलंत उतावल गाजत षोह जिता गिर मैं। बिसनेस....[3]

धरती पर सर्वत्र नीर ही नीर दर्शित है, मेंढ़क, अहि और झिल्लीगण बोलने लगे—

नदि डावर नीर निवाण जिता मिलि एकइता सर होत मही,
जल व्यंब दरस्सत वारि बरस्सत एक सरस्सत भेक अही,
वोहो दादुर सोर झली गण बोलत छोलत ग्रहणी डाह छमै। बिसनेस....[4]

सावन की रात्रि में तो समागम की राह भी मुश्किल से मिल पाती है—

अंधियार निसा बणि सावण, आगम मंद समागम राह मिलै
जल लहर छोल झकोल जमी पर पोत गमी पर जाणि प्रलै।[5]

वर्षा ऋतु की इस प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर सामाजिक दृश्य भी कितना स्पृहणीय होकर उभरा है—

चोतरफा प्रमुदा चतुर लड़ हींदा लटकाय,
हींदै अपछरि ज्यूं हरषि षिण-षिण झोला पाय
कियां कसूमल केसर्यां हियां हीउलै हार,
गावै लूहरि रागणा झांझ स्यंग झणकार[6]

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ—१६.
२–३. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—१७.
४–५. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—१८.
६. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ—२६.

चारों दिशाओं में बिजली चमक रही है। झिल्ली गण और दादुर झंकार कर रहे हैं। वर्षा की झड़ी में भी रावराजा रामसिंग का उत्साह ठण्डा नहीं पड़ा है। लाल-हरा और केसरिया रंग बह-बह कर मिल रहा है, मिल-मिल कर बह रहा है—

चमकंत बीज अति दिसा च्यार, झिल्ली गण दादुर झंनकार
उड़ि दोल् रोल् बोलां अनेक, बोछाड़ पवन झपटो बिसेक ।।[1]
भीजतां रंग, चुवतां अभंग, रत हरित केसर्यां वहत रंग
रामो अलबेल्यो महाराज, सब कियां केसर्यां गरक साज ।।[2]
इण रीति मदन मूरति उदार, घोरां रंग वहतो मोर-धार ।।[3]

वर्षा बीत गई। शरद ऋतु आ गई। नवरात्रा प्रारम्भ हुए। पूजन शुरू हुआ। वातावरण का चित्रण द्रष्टव्य है—

बरषा गई बीत आई सरदं, हुआ दुंदभी नाद नीसाण नदं।
करै पूजनं भी दिनं देवि केरो, घुरै नद्द नीसाण बंबी घनेरो।
अड़ीबंभ चहुवाण "सरपूरि" आया, भली तिथि आठें, सदा मन्न भाया।
करैं पूजनं रक्तदंता सुकेरी, पढे पाठ दुर्गा सता बीस बेरी।
करे बाकरा प्राणि बलिदान केही, तसां ईसरं दांग याही सुतेही।[4]

नवमी तक पूजा व बलिदान का क्रम पूरा हुआ। विजयादशमी आगई और रामलीला प्रारम्भ हुई।

विजयादशमी का रामलीला वर्णन

रावण की प्रचंड लंका नगरी बनाई जाती है, जिसके रक्षक रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद जैसे भट हैं। रावराजा रामसिंह राम की भांति रावण पर चढाई करते हैं। दूत भेजकर रावण को मनाया जाता है, किन्तु रावण नहीं मानता। मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि सभी योद्धा लड़ते हुए काम आते हैं। यहाँ दूत और रावण का संवाद तथा बाद में युद्ध वर्णन द्रष्टव्य है। संवाद में तो कला पक्ष के साथ ही भावपक्ष भी बड़ा ही सबल बन पड़ा है—

दूत— जानकी देर सब तजि झिलो आणी मिलो अवधेस सूं।
रावण— ब्रह्मा अरु ब्रहसपति वेद भो आगल् बांचे
बस हो भइ इगपाल सदा सेवा मुझ सांचे

---

१. रामरंजाट - हस्तलिखित प्रति - सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ २६
२-३. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ २६
४. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ ३१
५. रामरंजाट : वही वही : पृष्ठ ३६

छजवालि थंब तूटै अथेह, मह ओलां वरसै जाणो मेह।
रावण रा कंचन महल रीठ, उड पडै छत्त छाजा अदीठ।
सिर तूटै राकस तड़ै सूर, धड़ फूटै बाणा धाके पूर।
नाचत कमंध अन्नेक नाच, अन्नेक आछटै पड़ग आंच।[1]

तोपों से गोले छूट रहे हैं। बुर्जों के कितने ही कंगूरे टूट गिरे। पत्थर अरॉकर बिखर रहे हैं। छज्जे और खंभे टूट-टूट कर गिर रहे हैं। रावण के कंचन महल में छत-छज्जे उड़-उड़कर गिर रहे हैं। कबंध नृत्य कर रहे हैं। तलवारें चल रही हैं। बाण छूट रहे हैं। आखिर रावण रो जाता है। जाकर इंद्रजीत को रक्षार्थ बुलाता है। फिर भयकर युद्ध होता है—

बड़ योइंद्रजीतं, प्रभंगो अभीतं
बहै सोक बाणां, करप्पै कमानं
घलै घाग घट्टं, पड़ै सीस पट्टं
बहै श्रोण धारं, रजं अंधकारं
धरा रुंड धावं, पड़ी मूंड पावं।
धकै केक बीरं, तपै तप्र तीरं
मही कीच मच्चें, पिती पांच पुच्चें।[2]

युद्ध में लक्ष्मण के हाथों इंद्रजीत मारा जाता है। रावण अपने भ्राता कुम्भकर्ण को जगाता है। कुम्भकर्ण उसे राम से संधि करने की सलाह देता है। रावण को वह "कुबुध्यां का संगी" कहता है। पर रावण क्यों मानने लगा? अततोगत्वा युद्ध मे कुम्भकर्ण धराशायी होता है और फिर प्रचंड युद्ध करता हुआ रावण भी। राजा रामसिंघ रावण मार कर महल मे आते हैं, फिर दरीखाना कर नजरें लेते व पान के बीडे देते हैं। तत्पश्चात् दीप-मालिका पर हीड़ें बांटते हैं, अगहन की पूर्णिमा तक महल में रहकर वे शिकार के लिये प्रस्थान कर जाते हैं—

मारी लंका मह पति, रावण सुधा रंजाट
इंद्रजीत हाणी आवधां, कुंभकरण सिर काट।
महल पधारे मेहपती, करी कते मधरीक,
रावण मार्यो राड़ करी भटको याही भीक।
करे दरीखानो सकज, नजरि लिये नरिंद
सूंपै बीड़ा सोहड़ां, मोजां लहर समंद।

1. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ ४४-४५
2. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ ४८-४९

किन्नर गंध्रब कित्ता इता संगीत उचारै
नारद आवै नित्ति सदा मुझ कारज सारै
सुरराज सदा राखूं सरण आप रहूं अतिमान सूं
झटजगां बीस बिसवा झलूं मिलै न रावण राम सूं ।[1]

दूत— जानकी देर करि मेल जाइ, अवधेस तणों पड़ि पगां आय
मति खोवै रावण वंस मूल, चढि आयो नृपति चव चलल ।[2]

रावण— अवधेस तणो दल कितो एम, जाण स्यूं अवै त्रण मात्र जेम ।
मारुं अनेक भड़ समर मांझ, सताव करुं नहं पड़ै सांझ ।
फाड़ स्यूं राम की सरब फौज, अति वधै सूझ पग समर ओज ।[3]

रावण की गर्वोक्तियाँ दर्शनीय हैं । ब्रह्मा और ब्रहस्पति उसके यहाँ वेद बाँचते हैं, दसों दिग्पाल सदा सेवा करते । किन्नर-गंधर्व संगीत उच्चारते और नारद नित्य आकर उसके कार्य पूरे करते हैं । वह तो देवराज को भी शरण देने वाला है, राम से क्यों मिले ? राम के दल को वह 'तृण मात्र' समझता है, उसे समाप्त करने में तो वह संध्या भी नहीं होने देगा । वह नहीं मानता । राम (राजा रामसिंघ) की फौज तब आगे बढ़ती है । कवि यहां लगता है कि बहक गया है । वह रामलीला का वर्णन सच्चे युद्ध वर्णन की तरह कर गया है—

चलि पदम अठारह सेन चाव, रोसाल् नयण चहुवाण राव ।
अति बाजि बीर बाजा अपार, असमान दबे रज अंधकार ।
ऊपड़ी बाग घोड़ा असंक, पाहड़ा तणों जिमि लगी पंख ।
फुण सेस तूटि गज भार फेट, चकचूर हुआ परबत चपेट ।[4]

'अठारह पदम' सेना का कूच, शेष नाग के फण विदीर्ण होना, गज भार से पर्वतों का चपटा हो जाना अतिशयोक्ति से भरा है किन्तु वातावरण चित्रण कितना ध्वन्यात्मक और शक्त बन पड़ा है । युद्ध वर्णन तो और भी भयंकर है—

घण तोपां इसड़ी चली घोष, सरणाट गजर गोला ससोक
कागरां बुरज उड चोट केक, अरड़ाव पथर बुरजां अनेक

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ ३७-३८
२. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ ४०
३. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ ४१
४. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ ४२-४३

छजवालि थंब तूटै अछेह, मह ओलां बरसे जांणी मेह।
रावण रा कंचन महल रीठ, उड पड़ै छत छाजा अदीठ।
सिर तूटै राकस पड़ै सूर, धड़ फूटै बाणा धाक धूर।
नाचत कमंध अनेक नाच, अनेक आघटै खड़ग आंच।[1]

तोपों से गोले छूट रहे हैं। बुर्जों के कितने ही कंगूरे टूट गिरे। पत्थर अर्राकर बिखर रहे हैं। छज्जे और खंभे टूट-टूट कर गिर रहे हैं। रावण के कंचन महल में छत-छज्जे उड़-उड़कर गिर रहे हैं। कबंध नृत्य कर रहे हैं। तलवारें चल रही हैं। बाण छूट रहे हैं। आखिर रावण रो जाता है। जाकर इंद्रजीत को रक्षार्थ बुलाता है। फिर भयंकर युद्ध होता है—

अड़ योइंद्रजीतं, प्रभंगी अभीतं
ग्रहे सोल बाणां, करव्वै कमानं
चलै पात चट्टं, पड़ै सीस पट्टं
बहे श्रोण धारं, रजं अंधकारं
धरा रुंड धावै, पड़ी मूंड पावै।
ग्रकै केक वीरं, तघे तन्न तीरं
महा बीच मच्चै, पिसी पांर पुच्चै।[2]

युद्ध में लक्ष्मण के हाथों इंद्रजीत मारा जाता है। रावण अपने भ्राता कुम्भकर्ण को जगाता है। कुम्भकर्ण उसे राम से संधि करने की सलाह देता है। रावण को वह "कुबुध्या का सगी" कहता है। पर रावण क्यों मानने लगा ? अंततोगत्वा युद्ध में कुम्भकर्ण धराशायी होता है और फिर प्रचंड युद्ध करता हुआ रावण भी। राजा रामसिंघ रावण मार कर महल में आते हैं, फिर दरीखाना कर नजरें लेते व पान के बीड़े देते हैं। तत्पश्चात् दीपमालिका पर होड़ें बांटते हैं, अगहन की पूर्णिमा तक महल में रहकर वे शिकार के लिये प्रस्थान कर जाते हैं—

मारी लंका मह पति, रावण सुबां रंजाट
इंद्रजीत हाणी आवधां, कुंभकरण सिर काट।
महल पधारे मंहपती, करी फते मह्यरीक,
रावण मार्‌यो राड़ करी भटकां बाही भीक।
करे दरीखानो सकज, नंजरि लिये नरिंद
दूंपे बीड़ा सोहड़ा, मोजां लहर समंद।

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ ४४-४५
२. रामरंजाट : वही : वही : पृष्ठ ४८-४६

दीप माल कातिक दरस, हीड़ां वगसि हजूर
पछैं सिकार पधारिया पून्यूं उतर्यां पूर ।।[1]

रामरंजाट के उपरोक्त दोनों प्रसंग (वर्षा वर्णन व रामलीला वर्णन) आलोच्य ग्रन्थ ही नहीं डिंगल साहित्य की भी रक्षणीय निधि हैं। ध्वन्यात्मक चित्रोपम तथा प्रवल गतिमान शब्दावली का प्रस्तुत प्रयोग किसी भी कवि के लिये स्पृहणीय हो सकता है।

आश्चर्य का विषय है कि वीरसतसई के संपादकत्रय ने समग्र रामरंजाट को "शिकार और दौरे का ग्रन्थ"[2] घोषित किया है। यही नहीं उनका मत है कि रावराजा रामसिहजी ने विजयादशमी के दिन जो शिकार खेली थी, उसको लेकर यह ग्रन्थ लिखा गया है।[3] पर क्या रामरंजाट को केवल शिकार और दौरे का ग्रन्थ कहा जा सकता है? शिकार का वर्णन ग्रन्थ में यत्र-तत्र है अवश्य किन्तु वह तो प्रभाव की दृष्टि से एकदम शून्य है। फिर विजया दशमी पर तो किसी शिकार का उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता नहीं। स्वयं कृतिकार ने भी इसे शिकार ग्रन्थ कहीं नहीं कहा है। प्रमाण २९ से स्पष्ट है कि शिकार के लिये राजा रामसिह जी विजयादशमी के कम से कम एक माह और पाँच दिन बाद गये। ग्रन्थ में अन्य भी कई वर्णन मिलते हैं। शिकार तो ग्रन्थ में एकदम गौण है। न कला न भाव। अस्तु, जो भी हो, रामरंजाट एक उच्च कोटि की साहित्यिक कृति है, जिसका महत्व इसलिये विशेष है कि वह कविराजा सूर्यमल्ल के बचपन (दस वर्ष आयु) की रचना है। उपरोक्त दो प्रसंग ही पर्याप्त प्रमाण हैं कि रामरंजाट केवल शिकार और दौरे का ग्रन्थ नहीं है। उसे शिकार और दौरे का ग्रन्थ कहकर संतोष कर लेना क्या सूर्यमल्ल जी के कृतित्व और व्यक्तित्व के प्रति अन्याय नहीं है? • •

---

१. रामरंजाट : हस्तलिखित प्रति : सूर्यमल्ल मिश्रण : पृष्ठ ५४-५५

२. दस वर्ष की अवस्था में रामरंजाट नामक पद्य ग्रंथ बनाया जिसमें बूंदी के रावराजा रामसिह जी के शिकार और दौरे का वर्णन है।
—वीर सतसई : भूमिका : कन्हैयालाल सहल, पतराम गौड़, ईश्वरदान आशिया : पृष्ठ १६

३. वीर सतसई : वही : वही : पृष्ठ ६८

राजस्थानी लोक गीत पणिहारी में भारतीय नारी

* बी० एम० जोशी

जब राजस्थान के कोने में पनिहारी जी हे लोय—मिरगा नैनी जी लो
की आवाज फूट पड़ती है, मरु के कण-कण में जब वर्षा की बूंदें छम-छमा
नगती हैं, जब खेतों में हल चलाता हुआ किसान जंगल-जंगल लकड़ियाँ चुनते
हुई किशोरियाँ, चक्की की तान में राग मिलाती हुई नव वधुएँ, रुनझुन-रुन
झुन की धुन में द्वार-द्वार अलख जगाता अड़भोपा, हल के पीछे खेतों में बीज
डालती हुई कृषक तरुणियाँ, घर-घर चरखा कातती हुई प्रौढ़ाएँ व वृद्धाएं
हिलमिलकर गांव के चौराहों पर मस्ती में नाचते गाते अलबेले जब पनिहारी
जी हे लोय—छणगारी जी हे लोय की राग अलापते दृष्टिगोचर होते हैं सं
श्रोताओं के मनमयूर नाच उठते हैं, पग अनायास ही थिरक उठते हैं," जं
नाचने को चाहता है। लोकगीत का सारा दृश्य साकार हो उठता है और स
वे अलबेले अपने आप में खो जाते हैं। गीत की कड़ियाँ साकार होकर उनके
सामने लोकगीत का कथानक सजीव दृश्य उपस्थित करता है।

पानी की गागर को कांख में दबाये इठलाती हुई नवल नवेली ग्रा
वधुटियाँ अपनी सहेलियों के साथ प्रकृति के सौन्दर्य शृंगार का अवलोक
करती हैं तो उनके मुँह से गीत के बोल अनायास ही फूट पड़ते हैं—

आज धराऊ धूंधलो ए पणिहारी जी हे लोय.......
मोटोड़ा छांटां री बरसे मेह.......बालाजी.......
परनाला भर नाड़ियां, पणिहारी जी हे लोय.......
मोटोड़ा छांटा री बरसे मेह.......बालाजी.......

इस प्रकार छमछमाती वरसती वरसा का उपकार मानती हुई ये पणिहारियां तालाव पर पहुँची हैं, वर्षा ऋतु में मटमेले पानी वाले तालाव का मनोहारी वातावरण व दूर तक फैला हुआ मटमेला पानी, उसके दिल में एक टीस पैदा कर देता है और तव वरवस ही उसे अपने परदेशी प्रियतम की याद सताने लगती है, उसके भीतर की नारी सजग हो उठती है। उसका मन-मयूर नाच उठता है, वह आत्म विभोर सी हो उठती है, और तव संग आई हुई सहेलियां उसे छेड़ बैठती हैं। उसके दिल के दर्द को बढ़ाने के लिये सहेलियां उससे पूछती हैं—

कुण जी खुदाया कुआ वावड़ी ए पणिहारी जी हे लोय····
कुण जी वन्धोड़ा तालाव·······वालाजी·······

प्रश्नोत्तर की कल्पना में आत्म विभोर पणिहारी के गोरे–गोरे गालों पर लालिमा छा जाती है। वह मदमस्त आँखों में किसी की छवि संजोये पानी में घड़े को पानी में नचाती हुई इस छेड़कानी का प्रत्युत्तर देने गुनगुना उठती है—

सुसराजी खुदाया कुआ वावड़ी ए पणिहारी जी हे लोय····
पियुजी वन्धोड़ा तालाव··············वालाजी·······

प्रत्युत्तर सहेलियों के लिये सन्तोषजनक नहीं होता है, वे तो दिल के दर्द को पूरा वढ़ा देना चाहती हैं। अतः फिर प्रश्न होता है—

किणसुं खुदाया कुआ वावड़ी ए पणिहारी जी हे लोय····
किणसुं वन्धोड़ा तालाव··············वालाजी·······

और तव विवश पणिहारी अपने दिल के दर्द को दिल में दवाये सहेलियों को मुंह तोड़ जवाव देती है—

नाडेला खुदाया कुआ वावड़ी ए पणिहारी जी हे लोय····
मोतियां वन्धोड़ा तालाव··············वालाजी·······

हे सखियों, नारियलों के वदले ये कुए वावड़ी खुदायी गई है व तालाव वन्धवाने की कीमत मोतियों में चुकायी गई है। आत्मविभोर पणिहारी नारियल व मोती चुकाने वाले अपने परदेशी प्रियतम की याद में खो जाती है, अन्य सहेलियां उसे आत्मविभोर छोड़कर चली जाती हैं। पणिहारी वियोग के दुःख में पीड़ित अपने परदेशी प्रियतम की याद में खो जाती है और घड़ा पानी में तैरता रहता है, लोकगीत पणिहारी में इस दृश्य का वर्णन अतीव मनोहर वन पड़ा है—

सात सहेलियां रे झूलरे ए पणिहारी जी हे लोय·······
पाणीड़ा ने चाली रे तालाव वालाजी·······
सात सहेलियां पानी भर पाछी फिराशी ए पणिहारी जी हे लोय····

पणिहारी रही रे तालाब..........बालाजी......
घड़ो न डूबे ताल में ए पणिहारी जी हे लोय......
इंडोणी ज्यूं तिर तिर जाय......बालाजी......

निगोड़ी गागर इंडोणी की तरह तैर-तैर कर दूर चला जाता है, थोड़ी देर में उसे अपनी स्थिति का ख्याल आता है और वह झटपट अपने घड़े को खींचकर लाती है, उसे भरती है, उठाना चाहती है, किन्तु विरह की वेदना उसे निर्बल बना देती है, वह अकेली उस घड़े को नहीं उठा पाती है। तब विवशसी इधर-उधर किसी को मदद के लिये ढूंढती है—

(विरहाकुल पणिहारी ऊंट पर जाते हुए एक पुरुष को मदद के लिये पुकारती है)

ऊंठो ओठिने हेलो मारियो रे लंजा ओठी हे लोय......
घड़ियो उठातो जायो..........बालाजी......

और इसी तरह दोनों नायक-नायिका अनजाने में ही मिल जाते हैं, नायक पणिहारी को मलिन वेश में तथा फटे हाल देखकर पहचान नहीं पाता तथा उनकी *अन्य सहेलियों की तरह सजी-धजी नहीं देखकर तथा* उसके काजल-बिन्दी नहीं लगाने का कारण पूछता है, वह कहता है—कि क्या तुम्हारी सास सौतेली है या तुम्हारा नैहर दूर है, जो तुम्हारी यह हालत है ?—

ओरां रे काजल टिकिया ए पणिहारी जी हे लोय......
थांका है फीका सा नैण..........बालाजी......
के है रे सासू थारे साव की ए पणिहारी जी हे लोय......
के है थारो पिहरियो परदेश........बालाजी......

तब वह अपने दिल की बात परदेशी से कहती है कि हे परदेसी न तो मेरी सास ही सौतेली है और न मेरा नैहर ही दूर है। मेरे प्रियतम और पणिहारीयों के पतियों की तरह यहां नहीं हैं, वे परदेश गये हुए हैं (क्योंकि वह अपने सम्मुख खड़े परदेशी पति को नहीं पहचान पाती है)

नहीं रे सासू दूसरे सार की रे लंजा ओठी हे लोय......
नहीं मारे पिहरियो परदेश........बालाजी......
ओरा के पिऊजी घर बसे रे लंजा ओठी हे लोय......
म्हारोड़ा बसे है परदेश..........बालाजी......

इस तरह विरहाकुल पणिहारी वियोग में उपरोक्त शृंगार नहीं करने का कारण सुन्दर ढंग से उप्द्ररोही पति को बता देती है।

राहगीर उसे अकेला पाकर मलीन वेश में लिपटे सुन्दर सौन्दर्य से आकर्षित होकर प्रणय निवेदन करता है और कहता है—

घड़ो तो पटक दे ए जी ताल में ए पणिहारी जी हे लोय····
चालो म्हारे ओठिड़ा री लार················बालाजी·······

हे पणिहारी इस घड़े को इस तालाब में पटक कर मेरे साथ चलो। सती का सतीत्व खतरे में पड़ जाता है और वह इस निर्लज्ज ऊँटनी सवार को फटकारती है:—

बालूं रे झालूं रे थारी जीभड़ी रे लंजा ओठी हे लोय····
डसे थने कालो नाग························बालाजी·······

नायक फटकारे जाने के बाद भी उसे प्रलोभन व लालच देने में नहीं चूकता है और कहता है कि अगर मेरे साथ चलो तो आपको सोने की चूड़ियां व नवसर हार बनवा दूंगा।

चालो तो चढ़ाऊँ चुड़ियां ए पणिहारी जी हे लोय·······
चालो तो नवसर हार·······················बालाजी·······

तब परदेशी उसे दक्षिण देश की साड़ी व हाथी दांत की चूड़ियों का प्रलोभन देता है—

चालो तो चिराय देऊँ थारे चुड़लो ए-पणिहारी जी हे लोय····
चालो तो दखणी रो चीर····················बालाजी·······

पणिहारी परीक्षा में खरी उतरी है तथा उस निर्लज्ज ऊँटनी सवार को मुँह तोड़ जवाब देती है:—

अस्यी तो चुड़ल्या मारे घर घणां रे लंजा ओठी हे लोय····
सूंट्या टंग्या नवसर हार···················बालाजी·······
चुड़लो चिरासी घर रो सायबो रे लंजा ओठी हे लोय····
ओढ़नियां ओढ़ासी म्हारो वीर···········बालाजी·······

हे निर्लज्ज मेरे प्रियतम मेरे लिये बहुत सी चूड़ियाँ ला देंगे व मेरा भाई मेरे लिये साड़ियों का ढेर लगा देगा।

अब पणिहारी को गुस्सा भी आ जाता है और वह अपने सतीत्व पर आंच नहीं सहन करने की वजह से नागिन से गुस्से में फुफकारती हुई घड़े को उठा लेती है (क्योंकि गुस्से में घड़ा उठाने की शक्ति आ जाती है) तथा सीधी आकर अपनी सास को उसी गुस्से में कहती है—

घड़ो तो पटक दूं अबी चोक में ओ म्हारा सासूजी हे लोय·······
ढोला सो [illegible] उतरावों················बालाजी··········

सासूजी [illegible] चौक में पटक कर [illegible] और पूछती है—

1 [illegible]

कुण थाने मोसो मारियो ए म्हारा बहु जी हे लोय''''
कुण थाने बोबो दे गाला बालाजी......................

हे पुत्रवधू किसने तुम पर व्यंग किया है व किसने तुझे गालियां दी है। प्रत्युत्तर में पणिहारी अनजान ऊँटनी सवार का पूरा वर्णन करती है। सहज भोली नायिका का स्वाभाविक भोलापन गीत बनकर फूट पड़ता है—

एक ओठिड़ो अस्यो मलियो रे ए म्हारा सासूजी हे लोय''''
पूछो मनड़ा री बात......................बालाजी.......

और तब वह उसका परिचय देती हुई सास को अपनी शिकायत सुनाती है।

देवर सरिसो डिगो पतलो ए म्हारा सासूजी हे लोय''''
नणदल बाई री आवे उठिहार..............बालाजी.......

वह कहती है कि सासूजी उस निर्लज्ज का शरीर देवर जी के जैसा ही लंबा व पतला है और उसकी मुखाकृति ननद बाई जैसी है—

और तब सास उस भोली नायिका पर हँस पड़ती है तथा उसे आश्वासन देकर कहती है कि बहू वह तो तेरा पति ही है—

थे तो भोला घणा रा म्हारा बहुजी हे लोय.......
वो तो थारो ही भरतार....................बालाजी.......

पणिहारी के गालों पर लालिमा छा जाती है। शर्म से सिमिटकर बहू सास के पास से भाग जाती है। वियोग संयोग मे बदल जाता है। बादल गर्जने लगते हैं, रिमझिम मेह बरसने लगता है, धरती से आलिंगन को आसमान बेताब हो फूट पड़ता है।

भारतीय नारी का जैसा सुन्दर वर्णन लोकगीत पणिहारी में बन पड़ा है, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

• •

घड़ो तो पटक दे ए जी ताल में ए पणिहारी जी हे लोय''''
चालो म्हारे ओठिड़ा री लार''''''''''''''''वालाजी''''''''

हे पणिहारी इस घड़े को इस तालाब में पटक कर मेरे साथ
गारी का मंजीरा गारे में पड़ जाता है और वह इस निर्लज्ज ऊंटनी स
फटकारती है:—

थानूं रे म्हानूं रे थारी जोभड़ी रे लंजा ओठी हे लोय''''
डसो थने कालो नाग''''''''''''''''''''''''''वालाजी''''''''

नायक फटकारे जाने के बाद भी उसे प्रलोभन व लालच देने में नहीं
है और कहता है कि अगर मेरे साथ चलो तो आपको सोने की चूड़ि
नवसर हार बनवा दूंगा।

चालो तो चढ़ाऊं चूड़ियां ए पणिहारी जी हे लोय''''''''
चालो तो नवसर हार''''''''''''''''''''''''''''वालाजी''''''''

तब परदेशी उसे दक्षिण देश की साड़ी व हाथी दांत की चूड़ियं
प्रलोभन देता है—

चालो तो चिराय देऊं थारे चुड़लो ए-पणिहारी जी हे लोय''''
चालो तो दखणी रो चीर''''''''''''''''''''''वालाजी''''''''

पणिहारी परीक्षा में खरी उतरी है तथा उस निर्लज्ज ऊंटनी सवार
मुंह तोड़ जवाब देती है:—

अस्यी तो चुड़ल्या मारे घर घणां रे लंजा ओठी हे लोय''''
खूंट्या टंग्या नवसर हार''''''''''''''''''''''''वालाजी''''''''
चुड़लो चिरासी घर रो सायबो रे लंजा ओठी हे लोय''''
ओढ़नियां ओढ़ासी म्हारो वी''''''

हे निर्लज्ज मेरे प्रियतम मेरे [illegible] ला देंगे व मे
भाई मेरे लिये साड़ियों का ढ़ेर [illegible]
अब पणिहारी को [illegible] र वह अपने सतीत्व प
आंच नहीं सहन करने [illegible] में फुफकारती हुई घड़े को
उठा लेती है (क्यो [illegible] शक्ति आ [illegible] सी
घर पर आकर [illegible] में कहती

दिनांक..........

दिन शुरू होते ही एक अनुपयुक्तता मुझे चारों ओर से घेर लेती है। या तो मैं इस माहौल, लोगों के उपयुक्त नहीं हूँ या ये मेरे उपयुक्त नहीं हैं। लेकिन कहीं कुछ ऐसा जरूर है, जो हमें एक दूसरे से एकाकार नहीं होने देता। सारे दिन, मेरे कन्धों, घुटनों में दर्द होता रहता है, और जैसे ही मैं उस दर्द के प्रति जागरूक होता हूँ और उसके कारण के औचित्य पर विचार करने लगता हूँ तो मैं खुद में इतना अकेला, असहाय, और बीमार होकर रह जाता हूँ कि उस मानसिक यन्त्रणा से मैं खुद को उन लोगों को दे देता हूँ, जो आदमी से ज्यादा, भेड़िये हैं, कुत्ते हैं, या फिर भुसभरे पुतले हैं।

☐

दिनांक..........

पढ़े लिखे समाज में से अगर अखबार और फ़िल्मों को निकाल दिया जाये तो उन शिक्षित लोगों का बौद्धिक स्तर बिल्कुल ईंट-गारा ढोने वाले मिस्त्रियों या ठेकेदारों के स्तर का रह जायेगा।

सारे दिन अध्यापक लोग या तो अखबारों की सतही खबरों पर बहस करते रहते हैं (जिसमें, थोड़ी-सी भी तो वैचारिक गंभीरता और उदारता नहीं होती) या फिर व्यक्तिगत हँसी मजाक। उन लोगों के बेतुके तर्कों के बीच मेरी साँस चढ़ने लगती है, और मेरा अकेलापन बढ़ जाता है।

☐

दिनांक..........

चेतना-परिष्कार और आध्यात्मिक विकास दोनों ही कठिन, मुतवातिर उपवासों की तरह हैं, जिनसे घबरा कर आदमी अपनी बुनियादी आस्था को भी ठेस पहुँचा देता है। अजीब समय आया है, एक ओर जितना-जितना आदमी का मानसिक धरातल ऊँचा उठ रहा है, उतना ही उसका नैतिक और आन्तरिक पक्ष, कमजोर और संकुचित हो रहा है।

☐

दिनांक..........

जन गण मन अधिनायक जय हे,
भारत भाग्य विधाता।

हर सुबह मेरे चारों ओर मिट्टी के बुतों की तरह खड़े किये सैंकड़ों लड़कों की एक भद्दी, बेसुरी अशुद्ध आवाज गूँजती है।

मैं बार-बार अपने पुराने कोट और पैन्ट को देखता हूँ। जिसमें मैं जरूर कारटून लगता हूँगा।

☐

डायरी के पन्ने

• रमेशकुमार 'शील'

दिनांक............

वर्तमान प्रस्तुत क्षण की चेतना एक छिपकली की तरह होती है, जो मन की दीवारों पर पंजों और सीने से चिपकी रहती है। □

चेतना के तीन पक्ष हैं, सुखद, दुखद और तीसरा कुछ न होना रिक्तता, खालीपन—अपना आपा ज़मीन से उठा और उड़ा महसूस करते रहना। □

अनुभूति की भी तीन स्थितियाँ होती हैं। एक स्वयम् को पकड़े रहने वाली चाकू की धार की तरह तेज़, तीखी होकर पसलियों, जोड़ों में चिरती रहने वाली, दूसरी—अपने से परे किसी दूसरे संबंधित व्यक्ति को लेकर विश्लेपणात्मक प्रक्रिया से चलती रहने वाली, बिल्कुल सवालिया, गणितज्ञ नीति से आगे बढ़ती रहने वाली और तीसरी, समतल अप्रभावित, ठोस ज़मीन की तरह बिछी, लेकिन संवेदनाहीन, बंजर, उजाड़। मेरी स्थिति चेतना के तीसरे पक्ष और अनुभूति के पहले पहलू से जुड़ी स्थिति है। □

दिनांक............

मेरी नियति नित्यप्रति संघर्ष करते रहने से ही प्रमाणित होती है, यह मैं जानता—समझता हूँ लेकिन बहुत सी बार मैं यह जानकर भी समझ नहीं पाता कि यह नाटक आखिर किस कहानी के आधार पर हो रहा है, इसमें छायायें हैं—धूमिल, कोहरीली, ध्वनियाँ—शब्द सारहीन, अर्थ—लय से अलग बेसुरी कभी सुर से उठती, गिरती, धीमी, तेज़ पास, दूर होती और मैं सुबह होते ही गंदी रूहों और भूत-प्रेतों की रहस्यमय, गतिविधियों के चक्र में फँस जाता हूँ। □

दिनांक..........

दिन शुरू होते ही एक अनुपयुक्तता मुझे चारों ओर से घेर लेती है। या तो मैं इस माहौल, लोगों के उपयुक्त नहीं हूँ या ये मेरे उपयुक्त नहीं हैं। लेकिन कहीं कुछ ऐसा जरूर है, जो हमें एक दूसरे से एकाकार नहीं होने देता। सारे दिन, मेरे कन्धों, घुटनों में दर्द होता रहता है, और जैसे ही मैं उस दर्द के प्रति जागरूक होता हूँ और उसके कारण के औचित्य पर विचार करने लगता हूँ तो मैं ख़ुद में इतना अकेला, असहाय, *और बीमार होकर रह जाता हूँ कि उस* मानसिक यन्त्रणा से मैं ख़ुद को उन लोगों को दे देता हूँ, जो आदमी से ज्यादा, भेड़िये हैं, कुत्ते हैं, या फिर मुसमरे पुतले हैं।

☐

दिनांक..........

पढ़े लिखे समाज में से अगर अखबार और फिल्मों को निकाल दिया जाये तो उन शिक्षित लोगों का बौद्धिक स्तर बिल्कुल ईंट-गारा ढोने वाले मिस्त्रियों या ठेकेदारों के स्तर का रह जायेगा।

सारे दिन अध्यापक लोग या तो अखबारों की सतही खबरों पर बहस करते रहते हैं (जिसमें, थोड़ी-सी भी तो वैचारिक गंभीरता और उदारता नहीं होती) या फिर व्यक्तिगत हँसी मजाक। उन लोगों के बेतुके तर्कों के बीच मेरी साँस घुटने लगती है, और मेरा अकेलापन बढ़ जाता है।

☐

दिनांक..........

चेतना-परिष्कार और आध्यात्मिक विकास दोनों ही कठिन, मुतवातिर उपवासों की तरह हैं, जिनसे घबरा कर आदमी अपनी बुनियादी आस्था को भी ठेस पहुँचा देता है। अजीब समय आया है, एक ओर जितना-जितना आदमी का मानसिक धरातल ऊँचा उठ रहा है, उतना ही उसका नैतिक और आन्तरिक पक्ष, कमजोर और संकुचित हो रहा है।

☐

दिनांक..........

जन गण मन अधिनायक जय हे,
भारत भाग्य विधाता।

हर सुबह मेरे चारों ओर मिट्टी के बुतों की तरह खड़े किये सैकड़ों लड़कों की एक भद्दी, बेसुरी अशुद्ध आवाज गूँजती है।

मैं बार-बार अपने पुराने कोट और पैन्ट को देखता हूँ। जिसमें मैं जरूर कारटून लगता हूँगा।

☐

दिनांक............

कहते हैं, आदमी अपना दर्पण खुद होता है। लेकिन यह घुटता धुंआ—न शक्ल याद रहती है और न दर्पण की प्रतिच्छाया।

□

दिनांक............

मैं कहता हूँ नौकरी का क्या मतलब है ? लोग कुत्ते पालते हैं और फिर जब उनके घर महमान आते हैं तो उनसे उनको करतब दिखवाते हैं—टामी-टामी, शेक हैण्ड करो—टामी-टामी............'।

□

दिनांक............

'बेखुदी हद से जब गुजर जाये
कोई ऐ दिल, जिये या मर जाये'

आज सारे दिन ये लाइनें, दिमाग़ की नीची सतह पर स-स्वर-रेंगती रहीं............। बेखुदी........? मैं खुद से पूछता हूँ—क्या किया जाय........?

□

दिनांक............

कहते हैं, सारे दुःखों की जड़ आदमी की बुद्धि और चेतना है। मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ।

□

दिनांक............

कई बार ऐसे मौके आये हैं, जब मुझे अपने चारों ओर एक वीयाबानियत, सन्नाटा सा छाया अनुभव होता है—जैसे कोई मर गया हो और मैं मातम वाले घर में बैठा होऊँ। मुँह से बोल फूटते ही दिल पर फफोले से उभरते हैं, लेकिन बच्चे हैं कि बेमान, हरेक अनुभव से बेखबर, सारे घर में चाहे कोई वक्त हो, शोर करते घूमते रहते हैं। मैं सोचता हूँ ये लोग इसीलिये तो सुखी हैं कि ये कुछ भी अनुभव नहीं करते—समझते-सोचते।

□□

दिनांक............

गांधी चौक के चौराहे पर रामचन्द्र वकील के घर के पास एक बुढ़िया एक फटी-मैली बोरी पर थोड़े से फसली लाल झाड़बेरिया के बेर लिये बैठी रहती है। कुल मिलाकर वे सारे बेर चार-छः आने की क़ीमत के होते होंगे। बुढ़िया इतनी ज्यादा बूढ़ी है कि उसे अपनी रोजी के लिये इस तरह संघर्ष करते देखकर उसके प्रति बड़ी अजीब श्रद्धा और करुणा उत्पन्न होती

है। कई बार तो मेरी इसे देखकर श्रद्धा से आँखें भर आई हैं। बुढ़िया के मुर्री भरे चेहरे, सफ़ेद बाल और पास रखी लाठी मेरे लिये सहज ही जिन्दगी की एक सही तस्वीर बन गई है। मुझे उससे संघर्ष करने की बड़ी प्रेरणा मिलती है।

□

दिनांक..........

मैं चाय जरा देरी से ही पीता हूँ। एक-एक चुस्की लेकर बीच-बीच में सिगरेट के कश लेता हुआ दूसरी-दूसरी बातें सोचने का आदी हूँ। लेकिन इस दौरान ही मुझे एक दिलचस्पी और है, और वह है शाम के धुँधलके में रेडियो सुनना..........कुछ दिन से मेरी रेडियो सुनने की दिलचस्पी महसूस करके ही अब निरंजन होटल वाला रेडियो बन्द रखता है, वह चाहता है....... मैं उससे रेडियो खोलने को कहूँ.......लेकिन पहली बात तो यह है कि वह कह देने के बाद खोल ही देगा यह कोई जरूरी नहीं है और अगर खोल भी दिया तो ऐसी एहसान भरी आँखों से मेरी ओर देखेगा कि मैं उस दृष्टि के सीधेपन को सहन नहीं कर सकता।

वैसे फ़िल्मी गानों के सिवा वह और कोई कार्यक्रम नहीं सुनता-सुनाता। गुस्से से मेरी कनपटियाँ धमकने लगती हैं—और दिल धड़कने लगता है।

□

दिनांक..........

खुद को नीचा मानना मैंने नहीं सीखा। वे सब लोग इसीलिये तो चिढ़ जाते हैं कि मैं उनके व्यक्तित्वों को (जो साधारण भी नहीं होते) कोई तरजीह नहीं देता। भले ही वे लोग व्यक्त नहीं करते लेकिन उनकी हरेक क्रिया से ईर्ष्या और द्वेष टपकता है। आदमी की इस बुनियादी अबुद्ध प्रवृत्ति से जो शुद्ध की आती है, मुझे सहानुभूति है, दुःख है।

□

दिनांक..........

इस बार यह हफ़्ता इतना लम्बा और असहनीय अनुभव हो रहा है कि काटे से नहीं कट रहा। ऐसा लगता है, जैसे एक दिन की दूरी पार करने में मुझे कई महीनों से श्रम करना पड़ रहा हो।

□

दिनांक..........

अपनी व्यक्तिगत कविताओं वाली डायरी मैंने बक्स में सबसे नीचे छुपा कर रखदी है। सुशीला की नजर बड़ी तेज है—कभी अगर उसकी उस पर

निगाह पड़ गई तो वह पीछा छोड़ने वाली नहीं है। उसकी कलह के कारणों पर कभी-कभी तो बड़ी हँसी सी आती है, बड़े बेमानी और बेकार के कारण होते हैं लेकिन मुझे ख़ुद पर यक़ीन नहीं रहा। हर वक़्त की गम्भीरता और घुटन ने भीतर जैसे बारूद भरदी है—कोई भी बेकार की बात और वह भी प्रतिक्रियात्मक, सहन नहीं होती। फ़ौरन ही गुस्सा चढ़ आता है……और फिर कई दिन तक उस कलह से मन बड़ा खिन्न रहता है। वो डायरी, निहायत व्यक्तिगत है, जिसकी कविताएँ……। वह सभी को तो जानती है। मैं उन्हें प्रकाशित भी नहीं कराऊँगा।

□

दिनांक…………

'पहले आती थी हाले दिल पर हँसी'

'अब किसी बात पर नहीं आती'

ग़ालिब—उफ ! ग़ालिब, मैं तुम्हारी आत्मा का वही कथ्य हूँ, बिल्कुल वही शेर……।

□

दिनांक…………

'मैं ग़लत शहर में

अपने आत्मीय स्वजन तलाश कर रहा हूँ।'

कितनी सार्थक और सच्ची है, मेरी ख़ुद की लिखी ये कविता की पंक्तियाँ।

□

दिनांक…………

'बिसमिल्लाह खाँ……।

मैं तुम्हारी शहनाई की आवाज पर कविता कब लिखूंगा! कब……।

बूंदी के भित्तिचित्र

* कान्तिचन्द्र भारद्वाज

शैल मालाओं के आँचल में प्राकृतिक उपकरणों से विभूषित राजस्थान की सौंदर्यपूर्ण छोटी सी नगरी बूंदी ने एक ओर रणक्षेत्र में असि-संचालन कर राजपूती शौर्य प्रदर्शित किया है, जिसका राजस्थानी इतिहास साक्षी है, दूसरी ओर इस वनस्थली रंगभूमि में तूलिका के माध्यम से नाना रंगों के प्रभाव से चूने की दीवारों में प्राण फूंके हैं। राजपुत्रों को शक्ति तथा चारणों को सरस्वती का प्रसाद पूर्ण रूप से मिला है।

सरस्वती के प्रिय भाजन कवि सूर्यमल्ल जी द्वारा लिखित "वंश भास्कर" से विदित होता है कि सम्वत् १२९८ आषाढ़ वदि १ के दिन जैता मीणा को मारकर ३०० घरों की इस छोटी सी वस्ती पर देवसिंह जी ने अधिकार किया। संवत् १८१० तक बूंदी के राजाओं को शान्ति नहीं मिली। कभी उदयपुर ने घेरा डाला तो कभी जयपुर ने अधिकार जमाया।

लगभग १६ वीं शताब्दी में जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, कोटा तथा बूंदी राजपूत-चित्रकला के केन्द्र हो चुके थे। वैसे राजपूत-चित्रकला का विकास उत्थान व पतन १६ वीं श० से १९ वीं श० तक हुआ। १९ वीं श० के मध्य से राजपूत चित्रकला के पतन के चिन्ह दृष्टिगत होने लगे थे।

संवत् १८१० ज्येष्ठ वदी ११ के दिन महाराव राजा श्री उम्मेदसिंह जी ने गढ़ में श्री रंगनाथ जी की स्थापना करवाई थी। आप १० वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ हुए थे। आप चित्रकला तथा वास्तुकला के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने अपने राज्यकाल में रंगविलास बाग, किले में किलेधारी जी का मन्दिर, शिकारबुर्ज में हनुमान जी का मन्दिर व गढ़ में रंगनाथ जी के मन्दिर के पास चित्रशाला बनवाई।

चित्रशाला आधुनिक आर्ट गैलेरी की भाँति है। मध्य में चौक तथा फव्वारा है। चारों ओर की भित्तियों पर चित्र अंकित हैं। एक भाग में उम्मेद सिंह जी की चरण पादुकाएँ अब भी पूजी जाती हैं। कोतवाली में भी एक

स्थान पर राव भावसिंह जी की गद्दी की पूजा की जाती है तथा उस भित्ति पर भी चित्र बने हुए हैं।

विषय—

विषय की दृष्टि से चित्रशाला के चित्र अधिकांशतः राजपूत हैं। कोई कोई चित्र मुगल शैली का भी है। शिव-उमा, राधा-कृष्ण, शिकार-युद्ध, राजाओं की मन्त्रणा, गणेश [illegible], चीर हरण, साधु-सन्यासी, मुगल वेश-भूषा में स्त्री तथा तीज व गणगौर की सवारियों के चित्र भी मिलते हैं। नीचे के भाग में हाथियों की दौड़ तथा लड़ाई के चित्र हैं। राग-रागिनी तथा नायिकाओं का चित्रण भी पूर्ण सफलता से किया गया है। शिकार में सूअर, सिंह हिरन आदि की स्वाभाविक आकृतियां हैं।

वनस्थली से प्रेरित कलाकारों ने चित्रों के पार्श्व भाग को विभिन्न प्रकार के वृक्ष, लताओं से सुसज्जित किया है। मयूर, हंस, तथा अन्य पक्षियों के चित्र प्रचुर संख्या में दिये हैं।

रंग व रेखाएँ—

अधिकतर नीला, लाल तथा हरे रंग का प्रयोग किया गया है। हाथी की लड़ाइयों के चित्रों को लाल पृष्टभूमि पर काली रेखाओं से उभारा गया है। चित्रकार बूंदी के ही निवासी थे, जो नक़द वेतन पर काम करते थे। समय-समय पर उन्हें पुरस्कार आदि मिला करते थे। चित्रकारों के नाम अप्राप्य हैं। उनमें भित्तिचित्र का कुशल कलाकार जयपुर का था। पुराने चित्रकारों में बूंदी के अन्तिम चित्रकार "खेमाजी" थे। उन्होंने "नैनवा" के महलों में चित्रकारी की थी। जहाँ छिपकली का चित्र आज भी दर्शकों को भ्रम में डाल देता है।

जैन चित्र—

बूंदी में लगभग १२ जैन मन्दिर हैं, जिनमें ५ मन्दिर प्रमुख हैं। इन सभी में चित्रकला के अंश मिलते हैं, किन्तु भगवान श्री आदिनाथ जी के मन्दिर की कला सराहनीय है। प्रतिमा की पार्श्व-भित्ति पर चित्रांकन हुआ है। प्रथम चित्र नेमीनाथ भगवान के महल का है जो तीन भागों में विभाजित है। ऊपरी भाग में एक पुरुष का चित्र है, जो सम्भवतः नेमीनाथ जी के पिता का है तथा तीन-तीन पुरुष आगे-पीछे हैं। पास के कमरे में प्रधान स्त्री, ७ पुरुष व ३ स्त्रियाँ हैं। नीचे ७ सूंड वाला हाथी, द्वारपाल, सेवक आदि हैं। शेष भाग में गाँव का बाजार, उद्यान तथा कृष्ण मन्दिर हैं। चित्रित गाँव में विभिन्न प्रकार की दुकानें हैं। शस्त्र बनाने वाले, फल-फूल बेचने वाली स्त्रियाँ हैं। चित्र ५ फीट लम्बा ४ फ़ीट ऊँचा है। चारों ओर परकोटा तथा दो मुख्य द्वार, बुर्ज, ११ अन्य द्वार

तथा फाटक हैं। चारों ओर जल से भरी खाई, नाव, मछलियाँ आदि हैं। लगभग २५० आकृतियाँ स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं।

इसके पास ही में दूसरा चित्र श्री नेमीनाथ जी के विवाह का है। इसके भी दो भाग हैं। प्रथम भाग मे बारात है। एक हाथी वाले रथ में श्री कृष्ण हैं तथा दूसरे हाथी वाले रथ मे श्री नेमीनाथ जी हैं। कुछ जैनी लोग कहते हैं कि ये दोनों भाई थे। यह चित्र अधूरा है। कई आकृतियों की खुलाई (रेखाङ्कन) नहीं की गई। बरात में ४ रथ, ४० घोडे, तथा १५० प्यादे है, जो ध्वजाएँ तथा वाद्य लिये हुए हैं। कहारों के कंधो पर ४ पालकियाँ हैं। बारात पहाड़ी मार्ग से प्रस्थान कर रही है। इसके दूसरे भाग मे नेमीनाथ जी के ससुराल का चित्र है। राजकुमारी राजुलमती (वधू) प्रीतम–प्रतीक्षा मे मग्न है।

पिताजी मन्त्रणा कर रहे हैं। पास ही नाना पल्लवों से विवाह मण्डप को स्त्रियाँ सजा रही हैं। लगभग १२ स्त्रियाँ मेंहदी पीसना आदि कार्यों में व्यस्त हैं। एक ओर बाजार का दृश्य है। एक आयत (कुण्ड) मे बकरे, हिरन, ऊँट आदि ६० पशु हैं, जो प्रीति-भोज में बलि हेतु लाये गये हैं। पशु घबराये हुए से प्रतीत हो रहे हैं।

कहा जाता है कि जब नेमीनाथ जी को विदित हुआ कि मेरे विवाह में इतने पशुओं की बलि होगी तो वे गिरनार पर्वत पर चले गये और दीक्षा-ग्रहण कर ली।

तीसरा चित्र पूर्ण रूप से अधूरा है। श्री नेमीनाथ जी दीक्षा-ग्रहण कर रहे हैं, जैन तीर्थङ्कर के साथ १२ सेवक हैं। यह चित्र १॥ फीट व्यास के चक्र में अंकित है। तीन गोलों मे क्रमशः ६५ तथा ८० आकृतियाँ हैं।

एक अन्य चित्र उद्यान का है। एक पुरुष पालकी में आसीन है। १० स्त्रियाँ, २० पुरुष, वृक्ष आदि हैं।

एक अन्य चित्र की खुलाई नही की गई। २ फीट व्यास के गोले में साँपों तथा नरक की यातना के चित्र हैं, जिसमे १२ राक्षस हैं।

पास के दूसरे मन्दिर में इसी प्रकार के धार्मिक चित्र हैं पर वे नष्ट हो चुके हैं, तथा उनके स्थान पर तेल चित्र बने हैं।

चित्रों के विषय जैन हैं, किन्तु प्राचीन जैन-शैली नहीं है। शैली चित्र-शाला से मिलती है। वही रंग हैं, संभव है—कि उन्ही चित्रकारों की रचनायें हैं। कहीं-कहीं सोने के रंगों का भी प्रयोग किया गया है।

बूंदी के अन्य, राजवर्गीय घरों में भी भित्तियों पर चित्र मिलते हैं। जिनके विषय हैं—कृष्ण, राग-रागिनी, शिव, उमा, शिकार, गणगौर आदि, कहीं-कहीं पर ग्रामीण रेखाओं के भी दर्शन होते हैं।

• •

सरिता का तट

☐ भगवन्तराव गाजरे

पुष्प का सुगन्ध से, देह का श्वास से तथा जल का जीवन से जिस प्रकार अविच्छिन्न और शाश्वत सम्बन्ध है, उसी भाँति तट का सरिता से। बिना कूल के कल्लोलिनी का क्या अस्तित्व है ?

इस तट ने वर्षा के यौवन के अनेकों उतार–चढ़ाव देखे हैं। वसन्त और पतझड़ की अनेक रहस्यमयी बातें सुनी हैं। अगणित विधवाओं, विरहिणियों तथा अवला युवतियों के इसने आँसू पोंछे हैं। भूले–भटके पथिकों, तृषित पशु-पक्षियों, प्रेमी पादपों एवं असंख्य प्रकृति के प्रेमियों को इसने अपनी वात्सल्य-मयी अंक में आश्रय दिया है। नियति नदी के एकान्त और शान्त वातावरण में हुए सभी कार्यकलापों का इसने वर्णन किया है। अभिन्न प्रिय स्नेही बन्धुओं तथा रसिक मित्र-मण्डली की अनेक हृदय स्पर्शी चर्चाओं को इसने श्रवण किया है। प्रेमी-युगल की मार्मिक मधुर वाणी का इसने रसास्वादन किया है। उनके गुप्त भेदों से वह भली प्रकार परिचित है।

कवि की कल्पना को साकार रूप देने में वह सदैव सहयोगी रहा है। कलाकार की सरस तूलिका को इसने गति प्रदान की है। सखी–सहेलियों की जल–क्रीड़ाओं का वह साक्षी है। चांदनी रात में नौका–विहार का वह सच्चा दर्शक है। सुदृढ़ सेतु के द्वारा इसका अपने साथी से मिलन हुआ है। वही उनके विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम है। जिससे इसको पथ–प्रदर्शन मिला है।

अनेक आँधी और तूफानों का तट ने डट कर सामना किया है। वर्षा, आतप और शील को सतत् सहता हुआ वह जीवन में अपने पथ से विचलित [illegible] मर संदेश दे रहा है।

[illegible]सके हृदय की गहराइयों को नाप सकेंगे ?

••

सन्ध्या के आँचल में

• भगवन्तराव गाजरे

मधुमास की एक सन्ध्या। पश्चिम का अम्बर स्वर्णिम से रक्तिम होने जा रहा है। भगवान भास्कर निस्तेज हो अस्ताचल की गोद में छिप रहे हैं। शीतल, सुगन्धित और मन्द-मन्द पवन के झोंकों से आस-पास की हरियाली नृत्य कर रही है। ऐसे समय में शान्ति का एक उपासक ग्राम से कुछ दूर सुन्दर सरोवर के तट पर शोभित आम्र-कुञ्ज में बैठा हुआ तालाब की उर्मियों पर दृष्टिपात कर रहा है। सरोवर के स्वच्छ जल में सूर्य की अरुणिम प्रभा प्रतिभासित हो रही है। तालाब के एक छोर पर दूब से हरी-भरी अवनी पर सारस पक्षी का एक जोड़ा प्रेमालाप कर रहा है। उपासक मन्त्र-मुग्ध है। रह-रहकर उपासक अपनी गर्दन उठाकर चार फर्लांग दूर एक पहाड़ी के नीचे प्रकृति की गोद में बसे हुए अपने ग्राम की ओर दृष्टिपात कर लेता है। और क्षण भर बाद ही अन्मना हो पुन. भावों की शृ खला में बढ़ता प्रतीत होने लगता है। सरोवर के दूसरे छोर पर एक भक्त सन्ध्या में लीन है। सारी प्रकृति शान्त है। केवल कुञ्ज की आम्र-वल्लरी पर कोकिल का मधुर स्वर रह-रहकर कानों में रस घोल रहा है। निकटस्थ क्यारियों के पुष्प म्लानमुख हो उपासक की साधना पर विचार कर रहे हैं। सरोवर की पश्चिम दिशा से मिलन के उत्सुक पक्षी-गण पंक्ति बद्ध आकाश में उड़ते हुए अपने-अपने नीड़ों की ओर आ रहे हैं। व्योम में यत्र-तत्र मेघ छिटके पड़े हैं। उपासक कभी-कभी गगन पर भी अपनी चितवन गाड़ देता है। सरोवर के तीन ओर पार्श्व में ही सुन्दर लहलहाते शस्यश्यामल खेत धरती के आँचल से प्रकृति को निहार रहे हैं। पर्वत की तलहटी में स्थित ग्राम की ओर जाने वाला पथ भी सरोवर के तट पर होकर जा रहा है।

सूर्य ने अन्तिम बार क्षितिज से जगती को निहारा और उपासक को अपनी अन्तिम प्रभा प्रदान कर पश्चिम के आंचल में छिप गया। उपासक ने

सन्ध्या को प्रणाम किया और ग्राम की ओर देखा। मन्दिर के घण्टे बजने लगे थे और ग्राम पंचायत के इने-गिने दीप जहाँ-तहाँ टिमटिमाने लगे थे। इसी समय उपासक ने सरोवर के तट-पथ में एक ग्राम बाला के अतिरिक्त कुछ न देखा। बाला के सिर पर घास का गट्ठर और हाथों में बैलों की रस्सी। शान्ति का यह उपासक अब भी शान्त वातावरण में उलझा हुआ था।

उपासक ने अन्तिम बार पश्चिम के क्षितिज को निहारा और उठ खड़ा हुआ। चारों ओर दृष्टिपात किया और चल दिया, तालाब के किनारे-किनारे, जहाँ म्लान मुख कमल उसे निहार रहे थे। साधक भावनाओं में व्यस्त था। कुछ देर वह तालाब के आस-पास की प्रकृति को निहारता रहा। अम्बर में उदित नक्षत्र उसे दिखाई दिया और वह ग्राम की ओर उन्मुख हुआ। यही उसका सदैव का क्रम था। वह सदैव सन्ध्या से पूर्व यहाँ चला आता था और सान्ध्य प्रकृति के दर्शन कर विचारों में व्यस्त पुनः घर चला जाता था। एक दिन उससे पूछने पर उसने नम्रता से उत्तर दिया—मैं साधक हूँ, प्रकृति मेरा साधन और सन्ध्या मेरी साध्य है।

मैं, मेरी सान्ध्य प्रकृति और मैं।

स्वराज्य

• धतुर्भुज शर्मा

स्वराज्य क्या है—

स्वराज्य शब्द में दो पद हैं—'स्व' और 'राज्य'। इसमें प्रथम पद 'स्व' का प्राधान्य है। स्व का अर्थ है 'अपना'। इस प्रकार 'स्वराज्य' का शब्दार्थ हुआ 'अपना राज्य'। ज्यों-ज्यों 'स्व' की सार्वजनीन सीमा का विस्तार होगा त्यों-त्यों स्वराज्य की अर्थ-परिधि में भी सार्वभौम पवित्रता आती जायगी।

मेरे लिए 'स्व' का अर्थ (स्वार्थ) 'मेरा' है। तेरे लिए 'स्व'—अर्थ (स्वार्थ) 'तेरा' है। लेकिन यह 'मेरा' तथा 'तेरा'—'स्व-भाव' 'स्व' की संकीर्ण मनोभावना 'स्वार्थ' का ही सूचक है। मैं-मैं, तू-तू का कारण है। द्वन्द्व का द्योतक है। यही आसुरी सम्पदा है; जागतिक आपदा भी। इसे ही गीता-कार ने 'आसक्ति', शास्त्रों ने 'मोह' और स्मृतियों ने अ-नीति' कहा है। मनुष्य मात्र की अधोगति का मूल हेतु 'अंहकार' भी यही है। काम और क्रोध का मूल विकार भी यही है। इसी से राग-द्वेष को उद्दीपन मिलता है और यही ममता-मत्सर का रूप धारण करता है। ऐसी स्थिति में इस 'स्व'-अर्थ (स्वार्थ) दर्शन में 'स्वराज्य' कहाँ ?

वास्तव में तो 'स्व' का अर्थ कुछ और ही है। वह 'स्व' न मेरा है; न तेरा। अपितु मेरे 'स्व' तथा तेरे 'स्व' से अभिन्न सर्वात्म भाव ही उसका 'स्व'-भाव है। क्योंकि 'स्व' स्वयं समन्वय का प्रतिफल है। 'सु' और 'अ' की संधि से समुत्पन्न 'सु' संसार की समस्त शोभा, शुचिता और शिवता को प्रकट करने का अक्षर प्रतीक अव्यय पद है। और 'अ' सर्वात्मा का स्वयं सत्य स्वरूप। 'अक्षराणां अकारोऽस्मि' में ईश्वर का स्वयं का स्वयं द्वारा 'स्व' परिचय है। अतः 'स्व' का अर्थ हुआ स्वार्थ से परे सर्वार्थ संलग्न सृष्टि की समस्त सुन्दरताओं से संयुक्त सर्वात्म सत्ता और इस प्रकार 'स्वराज्य' की अर्थ निष्पत्ति हुई 'सर्वात्म-सुराज-व्यवस्था।'

जब सबके हाथ उठेंगे—सबके हृदय जुड़ेंगे और सबके कदम बढ़ेंगे तभी स्वराज्य के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं, कहने योग्य बन सकेंगे। हमें प्राप्त यह 'स्वराज्य' (राजनैतिक स्वतन्त्रता) स्वराज्य प्राप्ति का प्रथम और अनिवार्य आवश्यक चरण है। इसके बिना हमारे अगले चरण उठ ही नहीं सकते थे। जैसे जीवन के लिए प्राण, खेती के लिए भूमि और विचारों को अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है, वैसे ही सच्चे स्वराज्य संसिद्धि के लिए सर्व प्रथम राजनैतिक स्वतन्त्रता अनिवार्यतः आवश्यक होती है। हमें प्रसन्नता है कि हमारी यह अनिवार्य आवश्यकता पूरी हो चुकी है। अब हमें इससे आगे क्रमशः आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक सभी जीवन क्षेत्रों में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-चारों पुरुषार्थों की उपलब्धि हेतु पूर्णतः स्वतन्त्र होना है—स्वावलम्बी बनना है। इसके लिए प्रतिपल परिश्रम, अनवरत अध्यवसाय और नित्य नूतन निर्माण में तल्लीन होना होगा। परन्तु हमारा सततृश्रम, लगातार उद्योग, सारे समायोजन और अखिल कार्यक्रम तभी प्रतिफलित होंगे जब इन सब में 'अखिल भारतीय भावना' और 'समस्त मानवीय स्नेह' का भाव अंतर्निहित हो। याद रखिये जिस तरह सबको सहज सुलभ होते हुए भी वायु बिना नासिका रंध्र में खींचे नहीं प्राप्त हो सकती उसी प्रकार 'स्वराज्य जन्म-सिद्ध अधिकार' होते हुए भी बिना परिश्रम के नहीं प्राप्त हो सकता। यह प्रयत्न परिश्रम एकाकी नहीं; अपितु सामूहिक हो। सामूहिक में भी समूह सीमा का दोष है, अत: सार्वजनीन हो—ऐसा कहना ही ठीक होगा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते—

हर राज्य में शासक होता है, तो शासित भी, ऐसी स्थिति में कर्तव्य और अधिकार का झगड़ा खड़ा हो जाता है। एक अधिकार मांगता है; तो दूसरा कर्तव्य चाहता है। एक कर्तव्य त्यागता है तो दूसरा अधिकार छीनता है। यह अधिकार और कर्तव्य का द्वन्द्व—वर्ग-वर्ग में, जाति-जाति में और व्यक्ति-व्यक्ति में व्याप्त हो जाता है और तब शान्ति अखण्डित नहीं रह पाती। कर्तव्य और अधिकार के अलग-अलग परिच्छेदों का निर्माण होने पर 'मनुष्यता' सकुचा जाती है। व्यक्तिगत जीवन में 'स्वार्थ' और 'अहं' आ घुसता है और सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार और उत्तरदायित्व व्याप्त हो जाता है। लेकिन स्वराज्य में ऐसी स्थिति रहने की नहीं। वहाँ न शासक होंगे न शासित। सभी अपने "स्वभाव" से स्वशासित होंगे, अनुशासित होंगे। सभी राजा, सभी प्रजा। ऐसी राज्य व्यवस्था बनेगी। सेवक को ही स्वामित्व मिलेगा। 'स्व' का 'स्व' के लिये 'स्व' द्वारा 'स्व' शासन होगा, तब कर्तव्य और अधिकार का संघर्ष, व्यामोह, द्वन्द्व स्वयं समाप्त हो जायगा।

स्वराज्य में सेवा सर्वोपरि—

'स्व' पद की विवेचना एक अन्य प्रकार से भी की जा सकती है। शब्द का संधि विच्छेद इस भाँति भी संभव है—'सु-अराज्य' अर्था राज्य जहाँ कोई राजा न हो, सत्ता न हो, शक्ति-दंड न हो; लेकिन स सु-व्यवस्था हो", सर्व सुधार हो और हो 'सु' के सुपालन के लिए सर्वत्र सु-अवसर। ऐसे राज्य में सभी 'स्व' शासित होंगे सभी स्व-अनुश होंगे। सत्ता विकेन्द्रित होगी। सेवा सर्वोपरि होगी और 'सर्वेषां अविरे भाव को पोषण प्राप्त होगा।

स्वराज्य विश्लेषण नहीं संश्लेषण चाहता है—

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान ने विश्लेषण विधि को जन्म दि विश्लेषण के द्वारा खण्ड-खण्ड कर देखने, विचारने और सोचने समझने आदत सी पड़ गई। यह हमारी ही भूल है। हमारा दृष्टि-दोष है, विज्ञान नहीं। विज्ञान ने तो हमें विश्लेषण इसलिए दिया कि अखण्ड को खण्ड-खण्ड देख सकें। हर समस्या और स्थिति के सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार सूत्र को पकड़ स व शुद्ध निर्णय ग्रहण कर सकें। 'बीजं मां सर्वभूतानां' तथा 'विकाराश्च गुण श्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्'—गीता तत्वों के सत्य-दर्शन पर प्रयोग कर शोध क और करें गहन चिन्तन। लेकिन सभी प्राणियों से अपने आप को श्रेष्ठतम बुद्धि मान समझने वाले हम मनुष्य विज्ञान के द्वारा देखते हैं केवल अखण्ड के खण्ड खण्ड को। अणु और परमाणु में निहित शक्ति को, संहार को। खण्डीकरण 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' पदों को जैसे भूल से गये हैं। त्वरित गति से विकासमान हमारा भौतिक विज्ञान आध्यात्म दर्शन की अवहेलना कर सृष्टि के संहार की ओर बढ़ रहा है। चन्द्रलोक को जाने की त्वरा में हम लोग धरती का ध्यान भुलाते जा रहे हैं। यह कोरा विज्ञान और थोथा ज्ञान ही है— जो भयावह है, संहारक है और है मानवता—विध्वंसक।

'स्वराज्य' विज्ञान में यह सब चलने का नहीं। वहाँ विश्लेषण, खंडीकरण, की उपयोगिता तभी स्वीकार होगी, जब उसके माध्यम से

व्रत हमारे सार्वजनीन व सार्वकालिक धर्म के तत्व हैं। हमारा धर्म-पालन हमारे कर्तव्य संसार के कल्याण हेतु है। संसार में हम भी तो हैं। अतः हम अपने कल्याण की तो उपेक्षा कर ही नहीं सकते। हाँ, अपने कल्याण के साथ दूसरों के कल्याण पर भी समान दृष्टि से सोचना हम अपना धर्म मानते हैं। 'सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वेसन्तु निरामया' हमारी नित्य की प्रार्थना है, जिसमें सर्वकल्याण-कामना की कितनी भावमय अभिव्यंजना है। पंचशील सहअस्तित्व के राजनैतिक सिद्धान्तों में भी हमारी विश्व मंगल भावना 'सर्वभूतहिते-रत-भाव' एवं धर्म निरपेक्षता धर्म की अभिव्यक्ति ही हुई है। हम सबके मित्र हैं। दलबन्दी से दूर, तटस्थ भी। हमारे सत्य ने हमें यही सिखाया है। संक्षेप में हमने धर्मनिरपेक्ष बन स्वस्तिक (स्वस्तिक-कल्याणकारी) धर्म को मान लिया है। इसे हम 'स्व' राज्य धर्म भी कह सकते हैं।

इस स्वस्तिक धर्म की प्रेरणा हमें कहीं बाहर से नहीं प्राप्त हुई। बाहरी प्रेरणा फलदायक भी नहीं हो सकती। यह प्रेरणा हमारी संस्कृति से हमें मिली है। यह हमारे पूर्वजों के तप-त्याग और दर्शन का प्रतिफल है। हम नित्य देखते हैं कि अपने घरों के द्वारों पर मन्दिर की देहलियों पर और तुलसीपूजा के स्थान पर अपनी भोली-भाली बहनों और सीधी-सादी बेटियों द्वारा हल्दी कुंकुम से बनाये गये 'स्वस्तिक' चिन्हों को।

ये स्वस्तिक चिन्ह हमारे सत्यधर्म, शिवकर्म और सुन्दर मर्म के प्रतीक हैं। इन्हीं में वैदिक धर्मसार ओम ॐ शैव धर्म की शक्ति त्रिशूल, ईसाई धर्म की पवित्रता क्रास तथा मुस्लिम धर्म के चांद सितारे समन्वित हो उठे हैं। सम्पूर्ण विश्वधर्म मानों धर्म निरपेक्ष हो स्वस्तिक में मूर्त हो उठा हो। हमें विश्वास है *कि सच्चा स्वराज्य स्वस्तिक धर्म से ही सिद्ध होगा। तभी* हमारा स्वस्ति वाचन (ॐस्वस्तिनः इन्द्रो·······) सार्थक होगा तथा तभी हमारा शान्ति पाठ (द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॐ:) शान्तिप्रद बनेगा।

हमारी मुद्रा अभयंकरी—

हम शक्ति संचय कर रहे हैं। पुरुष सिंह बन रहे हैं। हमारा शक्तिचयन या पुरुषसिंह स्वरूप हिंसा के लिये नहीं, अपितु अहिंसा के लिए है। पर पीड़ा के लिये नहीं; किन्तु पारस्परिक प्रीति व प्रतीति प्रसारण हेतु है। हिंसक सिंह क्या मिलकर रह सकते हैं। हमारी मुद्रा में सिंह के हिंस्र भाव को हमने बदल दिया है। परस्परावलम्बन की भावना से प्रभावित हम चारों ओर से बँध कर एक हो गये हैं। तभी तो चारों सिंह एक जगह बैठ सके हैं। ये चारों सिंह हमारे चारों पुरुषार्थों के प्रतीक हैं। हमें मुद्रा में तीन ही सिंह दिखाई देते हैं। ये पुरुषार्थ का 'त्रिवर्ग रूप' (धर्म, अर्थ और काम) है, जो प्रगत प्रकट है।

कर्मयोग का प्रकाश पुनः प्राप्त होगा, सभी जान जावेंगे—'कर्मण्येवाधिकारस्ते'—'कर्म करना ही तेरा अधिकार है।'

स्वराज्य के लिए हमारे प्रयत्न—

स्वतंत्र होने के बाद हमने अपने विगत वर्ष व्यर्थ ही नहीं खोये। इन वर्षों में हमने 'स्वराज्य' के संगठन के लिये कुछ प्रयत्न भी किये हैं, माना, हमारे इन प्रयासों को अभी पूर्णतया सफलता नहीं मिल पाई। तथापि क्या इससे हमारे अगले प्रयत्नों के लिये अवसर नहीं खुले?

सत्यमेव जयते—

हमने 'सत्यमेव जयते' को विरुद बनाया है। यह कोई छोटी बात या कम साहस का काम नहीं। इस कुटिल नीति के युग में सत्य-आचार, सत्य-व्यवहार और सत्य-विचार की साधना बड़ी कठिन है। इसके लिये असीम आत्मबल और स्थित-प्रज्ञ भाव चाहिये। हम वह आत्मबल अपनी संस्कृति से प्राप्त कर सकते हैं। जिस देश में सत्यनारायण की पूजा हो, जहाँ का समस्त नीति और ज्ञान 'तत्सत्' में समा जाय और जहाँ के महात्मा का जीवन 'सत्य के प्रयोग' से भिन्न कुछ भी न हो वहाँ सत्य से विमुख होने पर विकास की सम्भावना कैसी?

धर्म निरपेक्षता—

हमने धर्म निरपेक्षता को ही धर्म स्वीकारा है। धर्म के नाम पर हुए युद्धों और विनाशों का हमें स्मरण है। हमें धर्मांधतावश किये गये नरसंहार के ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त हैं। धर्म का ढोंगी रूप हम देख चुके हैं। अस्पृश्यता की दुर्वह दुर्गन्ध अभी भी हमारे वातावरण में रह रही है, मात्र दांभिक धर्म से ही। ऐसी दशा में हमने धर्म के संकीर्ण भाव को झाड़ फेंका है, लेकिन हम यह भी जानते हैं कि बिना धर्म के गति नहीं—'यतो धर्मस्ततो जयः' पर हमारा विश्वास है। अतः हमने सत्य-धर्म—'धर्म निरपेक्षता' को ही धर्म मान लिया है। आज का हमारा "राष्ट्रीय धर्म" धर्म निरपेक्षता ही है।

'धर्म निरपेक्षता भाव' धर्महीन होने का आदेश नहीं देता और न इसमें किसी धर्म के प्रति विरोध भाव का ही अवसर है, अपितु यह तो न्याय निष्ठा निरपेक्ष भाव की उत्पत्ति कर सभी धर्मों के विरोध प्रतिरोध व अवरोध की समाप्ति द्वारा सत्यधर्म के पालन के प्रति अहिंसात्मक आग्रह करता है और बताता है 'न ते वृद्धाः ये न वदन्ति धर्मं, न तद्धर्मंयस्मिन्नसत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्।'

हमारे यहाँ सभी धर्मों का समान सम्मान है। हम धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की समता में विश्वास करते हैं। 'सत्य-अहिंसा-अस्तेय-अपरिग्रह' आदि

सब हमारे सार्वजनीन व सार्वकालिक धर्म के तत्व हैं। हमारा धर्म-पालन हमारे कर्तव्य संसार के कल्याण हेतु है। संसार में हम भी तो हैं। अतः हम अपने कल्याण की तो उपेक्षा कर ही नहीं सकते। हाँ, अपने कल्याण के साथ दूसरों के कल्याण पर भी समान दृष्टि से सोचना हम अपना धर्म मानते हैं। 'सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वेसन्तु निरामया' हमारी नित्य की प्रार्थना है, जिसमें सर्वकल्याण-कामना की कितनी भावमय अभिव्यंजना है। पंचशील सहअस्तित्व के राजनैतिक सिद्धान्तों में भी हमारी विश्व मंगल भावना 'सर्वभूतहिते-रत-भाव' एवं धर्म निरपेक्षता धर्म की अभिव्यक्ति ही हुई है। हम सबके मित्र हैं। दलबन्दी से दूर, तटस्थ भी। हमारे सत्य ने हमें यही सिखाया है। संक्षेप में हमने धर्मनिरपेक्ष बन स्वस्तिक (स्वस्तिक-कल्याणकारी) धर्म को मान लिया है। इसे हम 'स्व' राज्य धर्म भी कह सकते हैं।

इस स्वस्तिक धर्म की प्रेरणा हमें कहीं बाहर से नहीं प्राप्त हुई। बाहरी प्रेरणा फलदायक भी नहीं हो सकती। यह प्रेरणा हमारी संस्कृति से हमें मिली है। यह हमारे पूर्वजों के तप-त्याग और दर्शन का प्रतिफल है। हम नित्य देखते हैं कि अपने घरों के द्वारों पर मन्दिर की देहलियों पर और तुलसीपूजा के स्थान पर अपनी भोली-भाली बहनों और सीधी-सादी बेटियों द्वारा हल्दी कुंकुम से बनाये गये 'स्वस्तिक' चिन्हों को।

ये स्वस्तिक चिन्ह हमारे सत्यधर्म, शिवकर्म और सुन्दर मर्म के प्रतीक हैं। इन्हीं में वैदिक धर्मसार ओम ॐ शैव धर्म की शक्ति त्रिशूल, ईसाई धर्म की पवित्रता क्रास तथा मुस्लिम धर्म के चाँद सितारे समन्वित हो उठे हैं। सम्पूर्ण विश्वधर्म मानों धर्म निरपेक्ष हो स्वस्तिक में मूर्त हो उठा हो। हमें विश्वास है कि सच्चा स्वराज्य स्वस्तिक धर्म से ही सिद्ध होगा। तभी हमारा स्वस्ति वाचन (ॐस्वस्तिनः इन्द्रो·······) सार्थक होगा तथा तभी हमारा शान्ति पाठ (द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॐ:) शान्तिप्रद बनेगा।

हमारी मुद्रा अभयंकरी—

हम शक्ति संचय कर रहे हैं। पुरुष सिंह बन रहे हैं। हमारा शक्तिचयन या पुरुषसिंह स्वरूप हिंसा के लिये नहीं, अपितु अहिंसा के लिए है। पर पीड़ा के लिये नहीं; किन्तु पारस्परिक प्रीति व प्रतीति प्रसारण हेतु है। हिंसक सिंह क्या मिलकर रह सकते हैं। हमारी मुद्रा में सिंह के हिंस्र भाव को हमने बदल दिया है। परस्परावलम्बन की भावना से प्रभावित हम चारों ओर से बँध कर एक हो गये हैं। तभी तो चारों सिंह एक जगह बैठ सके हैं। ये चारों सिंह हमारे चारों पुरुषार्थों के प्रतीक हैं। हमें मुद्रा में तीन ही सिंह दिखाई देते हैं। ये पुरुषार्थ का 'त्रिवर्ग रूप' (धर्म, अर्थ और काम) है, जो जगत प्रकट है।

चौथा पुरुषार्थ 'मोक्ष' अप्रकट होता हुआ भी 'सत्य' है। इस त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, और काम) की संसिद्धि ही संसार में "अभ्युदय" का मूल हेतु है। इन तीनों सिंहों (पुरुषार्थों) में बीच का सिंह (धर्म) और भी अधिक प्रकट है। इसीसे अगल-बगल के सिंह (अर्थ और काम) बने हैं। 'मोक्ष' सधा है। अर्थ का मूल धर्म है और फल काम है। यह पुरुष ही काममय है। अतः अब हमने अपनी मुद्रा में अभी तक परस्परावलम्बन को सर्वोपरि रखा है। यही हमारी कामना है। हमारी यह त्रिमूर्ति मुद्रा 'अदीनास्याम शरदः शतम्' और 'उदबुध्यस्वं समनसः सखायः' सूक्तों में अनुस्यूत आकांक्षा की प्रतिमूर्ति है।

'स्वराज्य' विकास के लिए जनता में अभय और परस्परावलम्बन प्रेम-भाव का होना अनिवार्य है। अकेले अभय की अतिशयता अहंकार के अंकुर पैदा कर सकती है और केवल परस्परावलम्बन का भाव आलस्य अशक्ति को जन्म दे सकता है। अतः चहुँमुखी विकास के लिए चारों ओर से अभय और परस्परावलम्बन प्रीतिभाव का समन्वित स्वरूप निखरे। ऐसा होने पर ही समष्टि चक्र को सतत् सुगति मिलती है, धर्मवृषभ को बल मिलता है और अश्वशक्ति में वृद्धि होती है। प्राच्य संस्कृति के धर्म (वृषभ), (ज्ञान) और पाश्चात्य सभ्यता की अश्वशक्ति (विज्ञान) का समन्वय सधने पर ही अशोक चक्र गतिशील होगा। स्वराज्य की सच्ची छाप पड़ेगी। आसमुद्र हमारी मुद्रा चलेगी।

• ०

मैं और मेरी कल्पना

• चन्द्रमोहन हाड़ा 'हिमकर'

संसार अत्यन्त विचित्र है, सुन्दर है, सुहावना है, लुभावना है। प्रकृति के क्रीड़ा स्थल में अगणित प्राणी अवतरित होते हैं और चार दिवस के पश्चात् अपनी जीवन लीलाओं द्वारा अठखेलियाँ करके फिर अपने सुरक्षित अमर स्थान को चले जाते हैं, जिस प्रकार मेरे जन्म से पूर्व न मनुष्य मुझे जानते थे और न मैं किसी व्यक्ति को जानता था, इस परिचित संसार को क्या विदित था मेरे गुणों और पुरुषार्थ के विषय में। मैंने एक अपरिचित नन्हे, असहाय अकिंचन बालक के रूप में विश्व में प्रवेश किया और उत्तरोत्तर उन्नति करने की धुन में ही लगा रहा।

बालपन में मेरी अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी, क्योंकि बिना अनुभवी धाय और संरक्षक के शिशु का विकास, शारीरिक व मानसिक उन्नति कठिन ही नहीं दूभर है। मैंने अपने पुष्पकुंज हृदय को सुन्दर-सुन्दर सुगंधित पुष्पों से सुसज्जित कर रखा है। जो मनुष्य मेरे उद्यान में प्रवेश करता है, वह नील भ्रमर के समान कोमल तथा गुणयुक्त कंजकली पर अनुरक्त हो जाता है और अपनी प्रेयसी का मुख चुम्बन करके मुदमग्न हो, मस्ती में झूमता हुआ अन्त में अमर पद प्राप्त करता है।

☐

निर्बल, असहाय एवं साधनहीन मनुष्य का हृदय संसार के आकर्षणों से विरक्त सा हो जाता है, परन्तु समय पाकर वही असहाय उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होता है। तब समस्त संसार उसके सम्मुख नत मस्तक हो जाता है। मैं आपको कैसे बताऊँ कि मेरा जन्म कब हुआ ? क्यों हुआ ? कैसे हुआ ? इस विषय में तो मुझे कुछ ज्ञात नहीं है किन्तु यह अवश्य है कि मेरे बिना मन मन्दिर वैसा ही था जैसे चन्द्रहीन रजनी, रविरहित दिवस, कस्तूरी-रहित, मृग एवं नयनरहित सुन्दरी। मैं विवश था—संसार को अपने विराट स्वरूप का दर्शन देने में, क्योंकि अधिकतर विभूतियों ने संसार का

कल्याण किया है—उसे उन्नति के यश-सिंहासन पर आरूढ़ किया है। उसने अपने शरण पल्लवों से यात्रियों को सदा ही सुख प्रदान किया है परन्तु अकेले रहकर नहीं, उनके साथ उनके कार्य में हाथ बटाने वाली सुघड़ गृहलक्ष्मियाँ स्फूर्ति-दात्री देवियाँ भी प्रोत्साहित करती थीं। मेरी तो गृह लक्ष्मी थी ही नहीं—यही—बस यही अभाव मुझे काँटे की भाँति खटक रहा था और यही मुझे अपना विराट रूप विश्वदर्शन प्रस्तुत करने में असमर्थ बनाये रखता था।

☐

अन्वेषण पर अन्वेषण और प्रयत्न पर प्रयत्न........। देश-विदेश का भ्रमण करने के पश्चात् एक सुन्दरी को देखा और प्रथम ही भेंट में उसने मुझे चक्षुयुद्ध में पराजित कर दिया, मैं उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत हो गया और वह भी मुझे प्राप्त करने हेतु व्यग्र हो उठी, विकल, व्याकुल हो उठी।

सौभाग्य की बात है कि हम दोनों प्रेम-सरिता के तट पर पहुँच ही रहे थे कि इतने में भयंकर बवण्डर ने हमारे जीवन में उथल-पुथल मचा दी, लहरों की थपेड़ों से हम तिलमिला उठे और जीवन की आशा-निराशा के सुहावने तथा नग्न चित्र चक्षु समक्ष नृत्य करने लगे।

अनन्त शक्ति तथा गति भी अनन्त है। संसार में बवण्डर शान्त हुआ। हम किनारे पर लगे और वह भी सैंकड़ों वर्षों के पश्चात्।

☐

एक बार मैं भ्रमण करता हुआ एक उद्यान में पहुँचा, जहाँ पर मुसकराती हुई कलियाँ, प्रफुल्लित सुगंधित पुष्प, हँसते हुए वृक्ष, प्रसन्नता के सागर में आनन्द-तरंगों के साथ अठखेलियाँ करते हुए, अपनी अपनी-प्रेयसी के संग विहार कर रहे थे, उस दृश्य को देखकर मैं ही एक ऐसा अभागा लगता था जो अकेला था, विश्व के धार्मिक समाज के किसी भी महानुभाव ने मेरी दयनीय दशा पर सदय दृष्टि की वृष्टि तो क्या प्रतिविम्ब भी अंकित नहीं किया। सदैव से ही ब्राह्मणों ने देश व समाज का उद्धार किया है और प्रत्येक को दया दृष्टि प्रदान की है। डूबते को बचाया है, सोतों को जगाया, भूखों को भोजन दिया और पतित को पावन बनाया है।

महर्षि वाल्मीकि ने मेरी हृदय द्रावक कथा सुनी, विरह विदग्ध करुण कहानी से उनका वियोगी हृदय द्रवीभूत हो गया। मुझे प्रतीत होता था कि वे भी विरह बहेलिये के तीक्ष्ण तीरों के आखेट बन चुके थे। इसीलिये वे मेरी हृदय व्यथा को शीघ्र समझ गये। अस्तु, उन्होंने मुझे प्रसन्न करने के लिये भाषा सुन्दरी को निमंत्रित किया, उचित समय पर हम दोनों का पाणिग्रहण संस्कार

सम्पन्न कर प्रणय-सूत्र में सदैव के लिये बाँध दिया। महर्षि ने सुबुद्धि से, योगदत्ता से वाक्पटुता सहित कवित्व कुमार एवं भाषा सुन्दरी का शुभ लग्न शुभ मुहूर्त में सम्पन्न किया।

अंधे को आँखें मिलीं, प्यासे को पानी, भूखे को भोजन, निर्धन को धन, मूर्खों को सरस्वती, नंगों को वस्त्र और प्रभात को उषा मिल गई। भाषा की यौवन की अंगड़ाई में मधुर मुस्कान, मधुर दृष्टि दृग्गोचर हुई। आनन्द-पवन के मस्त हिलोरों में अब हम विहार करने के अधिकारी हो गये। वे सुन्दर दृश्य, चहकते हुए पक्षी, पगुराते हुए पशु, कमल, चम्पक……आदि मुझे देखकर अब मेरी खिल्ली नहीं उड़ा सकते।

□

असन्तोष उन्नति का मूल मंत्र है, केवल एक वस्तु की प्राप्ति से पूर्ण सन्तोष नहीं हो सकता। भाषा के साथ विहार करते हुए, संसार का उद्धार करने के विचार मन में विचरने लगे। एक अत्यन्त ही शोचनीय दृश्य देखा— सभी सभ्य तथा असभ्य एक स्त्री को हीन दृष्टि से देखते थे, उससे घृणा करते थे, वह समाज के प्रत्येक प्राणी की दृष्टि में पतिता थी, पददलित थी, घृणित थी और थी मलीन, व अस्पृश्य कोई भी उसका आदर नहीं करता था। उसे पास बिठाने में लोग हिचकते थे—सद्व्यवहार करने में सकुचाते थे। महर्षि के सम्पर्क से स्त्री की इस दयनीय दशा से हृदय दयार्द्र हो उठा और उसकी तुरन्त सहायता करने को विह्वल हो उठा मैं, उसका नाम ? हां, हां उसका नाम था मिथ्या देवी। शरणार्थी की रक्षा करना मानव का सच्चा धर्म है, मैंने उसके साथ कोई उपकार नहीं किया। मैंने तो केवल कर्तव्य का पालन किया। हमारे तो आदि रचयिता ही सहायता पर आये। उन्होंने मिथ्या देवी का शुभ लग्न मेरे (कवित्वकुमार) साथ सुअवसर देखकर सुख-शान्ति पूर्वक गंधर्व-विवाह पूर्ण करवाया। श्रीमती भाषा अत्यन्त गुणवती थी। उसने भी नये विवाह का स्वागत किया। और कोई सुग्गी होती तो सौतिया डाह से जल उठती, ईर्ष्या उसको भ्रमित कर देती परन्तु वह विमल हृदया, सहन-शीला अत्यन्त गुणवती स्पष्ट भाषिणी एवं सरल, सौजन्य-सम्पन्न नारी-तिलक थी।

□

पारस पत्थर के सम्पर्क से लोहा भी सोना बन जाता है। पुष्पों के सम्पर्क से क्षुद्र कीट भी भगवान के चरणों तक पहुँच जाते हैं। धर्मात्मा तथा भक्तों के पुण्य प्रताप से दुष्ट पुरुषों को भी अनन्त के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। घृत के संसर्ग से मट्ठा भी महापुरुषों के आमाशय का अतिथि बनता है। इस प्रकार

मिथ्या भी कल्पना के रूप में परिवर्तित होकर महात्माओं, महापुरुषों, कवियों और सभ्य जनों की कृपा पात्री बनी हुई बहन भाषा के साथ अपने प्रतिभा-शाली पति कवित्व के हृदयासन पर विराजमान है। समय बीता, युग ने करवट ली। दो–दो पत्नियों के होते हुए भी चित्रकला नामक सुन्दरी से तीसरा विवाह और हो ही गया। दो–तीन पत्नियां रखने का परिणाम क्या हुआ यह जानने को आप आतुर होंगे। परिणाम स्वरूप मेरी पत्नियों के दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम हैं–काव्य तथा आलेख और एक पुत्री कविता। भाषा और कल्पना दोनों ने मिलकर इनका पालन पोषण दक्षता से किया।

☐

किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन मैं संसार में सर्वोच्चासन पर आरूढ़ होकर कला संसार में मानव हृदय पर शासन करूँगा। अकेला नहीं—कक्ष में कल्पना, वक्ष में भावना, मुख में भाषा, आँखों में चित्रकला और हृदय में कल्पना।

अब ! अब मैं अमर हूँ मेरे आराधक अमर हैं। मेरे मन–मन्दिर पर कल्पना का अधिक प्रभाव है। यही मुझमें दोष है, फिर भी मैं उच्च हूँ, भव्य हूँ, महान् हूँ, तूफान हूँ। उत्थान में, संघर्ष में–जनता का सच्चा सहचर हूँ। मैं अपने अनुभव का अभिमान हूँ।

इतना सुललित सुहावना दृश्य देखने में मग्न था। संलग्न था कि इतने में मुझ पर नन्हे वामन प्रफुल्ल ने आकर एकाएक ठंडे पानी का लोटा उंडेल दिया, मैं जाग उठा, मेरे कल्पना लोक में भूकम्प आ गया। स्वप्न मग्न हो गया और शेष क्या रहा ? बताऊँ ? बस—मेरी कल्पना।

••

कृष्णगढ़ के कवि

□ भागचन्द्र जैन

[कृष्णगढ़ के हिन्दी (पिगल) कृष्ण-भक्त-कवियों का परिचयात्मक अध्ययन
(केवल राज-परिवार) परिचयात्मक स्रोत—त्रिवेणी संगम]

कृष्णगढ़ में कृष्ण—भक्ति—साम्य की प्रणयन शक्ति का अभ्युदय प्रमुखतः तीन ओर से क्रान्तिकारी रूप में हुआ। स्थानीय राज परिवार+ सलेमाबाद (कृष्णगढ़ से १२ मील दूर) के निम्बार्कीय भक्त+फुटकर कृष्ण—भक्त—कवि—प्रस्तुत तीन महान् शक्तियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की सराहनीय सेवा की हैं। यहाँ का राजपरिवार वल्लभ—सम्प्रदाय व निम्बार्क सम्प्रदाय से प्रभावित था। त्रिवेणी प्रवाह से कृष्णगढ़ का समूचा वातावरण कृष्णमय एवं राधामय हो उठा। आज भी यहाँ के राजमन्दिर व सलेमाबाद के निम्बार्कीय मन्दिर में क्रमशः कृष्ण और राधा की रट से वातावरण रंजित रहता है। यहाँ पर विभिन्न कृष्ण—भक्त—कवियों के हृदय-स्पर्शी, रसपूर्ण एवं सुमधुर ब्रजभाषा में वर्णित गीत, पद आदि सर्वदा एक आलौकिक किरण-जाल फैलाये रखते हैं। श्रद्धालु भक्तों द्वारा भगवान कृष्ण का नाना विधि शृंगार, उपासना एवं उत्सवादि उत्साह के साथ सम्पन्न होते रहते हैं। महान कवियों के महान ग्रन्थ यत्र—तत्र ज्योति—किरणों का प्रसार कर रहे हैं। हमारा अभीष्ट उन महान भक्त कवियों का परिचय उनकी रचनाओं सहित प्रस्तुत करना है—

राजपरिवार—राजपरिवार में अनेक कृष्ण—भक्त—कवि हुए हैं। महाराजा रूपसिंह से श्री यज्ञनारायणसिंहजी तक की कृष्ण—भक्ति—साहित्य सेवा का विवरण प्रस्तुत है।

१. श्री रूपसिंह—आपके जन्मस्थान व पिताजी के सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रसिद्ध है—

कृष्णगढ़ उत्तर दिशहि नाम बधेरा ग्राम।
ग्राम बधेरा मधि हुतो, भारमल्ल को धाम।।

नगधर प्यारे होहुन न्यारे इहा तोसों कोटि रर।
राजसिंह को स्वामी नगधर साविन देखे दिन कठनभरें।[3]

३. नागरीदास—(महाराज सांवतसिंहजी) आपके व्यक्तित्व व कृतित्व के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने लेखनी उठायी है तथा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी अपना असाधारण स्थान है। आपका जन्म पौष-कृष्ण १३, सं० १७५६ में हुआ तथा स्वर्गवास भादों सुदी ३, स० १८२१ मे हुआ।

आपके कुल ग्रन्थ ७२ हैं। आपने अपने साहित्य मे विभिन्न छन्दों का प्रयोग कर बहुमुखी होने का परिचय दिया है। आपने रेखता भाषा मे भी 'इश्क-चमन' ग्रन्थ का प्रणयन किया है। आज भी आपके पद वैष्णव मन्दिरों मे गाये जाते हैं। राधा-कृष्ण भक्ति के विभिन्न पद अत्यन्त ही सरस एव हृदय मे प्रवेश करने वाले हैं।

नागरीदासजी के निम्न कवित्त मे प्रियत्तम से अभिन्नता प्रदर्शित की गई है—

तेरे नैन मेरे नैन मेरे नैन तेरे नैन,
ओर ठोर चलिबे को दीठ के न पग हैं।
तेरी प्रीत मेरी प्रीत मेरी प्रीत तेरी प्रीत
प्रीत की प्रतीत दोऊ ओर बैठी लग है।
तेरे प्रान मेरे प्रान मेरे प्रान तेरे प्रान
नागरिया एक प्रान जानें सब जग है।
तेरो मन मेरो मन मेरो मन तेरो मन
ठगवे के तेरो मन ठग है।

४. महाराज कल्याणसिंह—राजा प्रतापसिंहजी की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे। इनका राज्यकाल बड़े उतार-चढ़ाव का समय रहा है। परस्पर की कलह और जागीरदारों से लोहा न ले सकने के कारण ये दिल्ली में जाकर रहने लगे। आप एक अच्छे कवि और ज्योतिषी थे। ऐसा अभी आपके प्राप्त ग्रन्थों से पता चलता है। प्रस्तुत बधाई पद द्रष्टव्य है—

आनन्द बधाई माई नन्द जू के द्वार।
ब्रह्मा विष्णु रुद्र पुन कीन्हीं तिन लोनों अवतार।
जनमत ही घर-घर प्रति लछमी बांधत बंदनवार।
भूप कल्याण कृष्ण जन्महि पे तन मन कीन्हों वार॥

५. महाराज जवानसिंह—महाराज पृथ्वीसिंह के द्वितीय पुत्र श्री जवानसिंह हुए, जिनको करकेड़ी का शासनभार प्राप्त हुआ। ये राजगद्दी पर वि०

३. नागर समुच्चय—पद सं० ४०, पृ० ४१०

स० १९३६ से १९५७ तक विराजे। आपने छप्पन भोग महोत्सव, यज्ञादि धर्म-कृत्य किये। फलस्वरूप दीक्षित की पदवी से आपको विभूषित किया गया। आपकी दो रचनाएँ प्रमुख हैं (१) रसतरंग (२) जलवय शहनशाह इश्क। आप 'नगधर' उपनाम से कविता किया करते थे। प्रस्तुत निम्न पद में पलनें में झूलते हुए बालकृष्ण का चित्र मनोरम दिखाई पड़ रहा है—

पलनां झूलत सांवरो।
करि जसुमति स्तन पान, खेलत नंद अवास मैं।
व्रजजन जीवन प्रान, झूलत पौढ़े पालनैं।
जसुमति को गहि हाथ, चूंसत कर अंगुष्ठ कौं।
मन हरसत हुलरात, पलनैं झूलत देखि के।
भूल्यो तन सुधिकाम, पल नंहि लागत दृगनि की
निरखत 'नगधर' श्याम।

६. **महाराजा मदनसिंह**—आप शार्दूलसिंहजी के बाद किशनगढ़ की गद्दी पर बैठे। आपका जन्म कार्तिक सुदी १४, संवत् १९४१ को रानी देवडीजी की कोख से हुआ। आप एक कुशल प्रशासक के साथ वीर शिरोमणी, भक्त-हृदय एवं प्रजावत्सल राजा थे। अंग्रेज आपकी वीरता एवं योग्यता से प्रभावित थे। निम्न पद में हिंडोरे का चित्रण चित्रित किया गया है—

हिंडोरे हेलीरयो रंग सरसाय।
तेरस के सुभ लगन देख के दोनों खंभ गडाय।
गोपीजन सब आय ठाड़ी भई, झोटा देत हरखाय।
मदन नरपत मन मोद बड़ो है, आनंद उर न समाय॥

७—**महाराज यज्ञनारायणसिंह जी**—संवत् १९८३ मार्गशीर्ष ५, गुरुवार को आपका राज्याभिषेक हुआ। परम्परानुसार आपने भी कृष्ण-काव्य के क्षेत्र में लेखनी चलाई। हृदय में उठने वाले भाव-सुमनों को आराध्यदेव के चरणों में श्रद्धा के साथ अर्पित किये हैं। आपके द्वारा प्रणीत स्फुट पद मिलते हैं। ज्ञात हुआ है कि आपने 'दान लीला' ग्रन्थ का भी प्रणयन किया परन्तु अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। पदों में यज्ञपुरुष की छाप दिखाई देती है। प्रस्तुत पंक्तियों में वसंत पंचमी का चित्र खींचा गया है। प्रकृत्ति में नवीन उत्साह के दर्शन हो रहे हैं, कृष्ण की सखियां होली खेलने के लिये झुण्ड बनाकर खेलती, गाती, नाचती हुई आ रही हैं—

ो सब जुर जुर आई खेलन फाग वसंत पंचमी आज।
: नये पुष्प नये नये फा कुच भड़वालाई साज।

नये नये बसन पहन नव भूषन मदन उमंग हिये राजे।
नव पुरुष संग हिल-मिल खेलो दोऊ लोक की लाजे।

८. ब्रज कुंवरीजी (बांकावती जी)—ये लवाण-नरेश बांकावत आनन्द-सिंह जी की राजकुमारी महाराज रूपसिंह जी की दूसरी पटरानी थी। आपका पाणिग्रहन वि० सं० १७७६ में हुआ। आपको श्रीमद् भागवत का पद्यबद्ध अनुवाद करने में परशुराम पुरी (सलेमाबाद) के आचार्य श्री वृन्दावन देवजी से विशेष प्रेरणा मिली थी। इनका कविता काल सं० १७६० के आसपास माना जाता है।

लोक परम्परा पर आधारित बनड़ा-बनड़ी का पद प्रस्तुत है—

यों बनो बनी के रंग राच्यो।
अद्भुत रूप निहारि परस्पर दंपति द्रिग गहगड मांच्यो।
रीझ छबरा रिझवार प्रिया पिय नैन सैन धन मन सांच्यो।
सरस सनेह निहारि दुहूं दिसि मन ब्रजदासि उमंग नाच्यो।

९. सुन्दर कुंवरी—सुन्दर कुंवरी जी के पिता महाराज राजसिंह, पिता-मह श्री मानसिंह व प्रपितामह श्री रूपसिंह कवियों के आश्रय दाता थे। आपके भ्राता महाराज श्री सावन्तसिंह (नागरीदास) जी श्रेष्ठ कवि थे तथा इनकी माता बांकावती जी भी काव्य रचना करती थीं। अतः इन्हें काव्य रचना की शक्ति विरासत में मिली थी। आपका जन्म सवत् १७६१ मे हुआ। राघवगढ़ के खीची महाराज बलभद्रसिंह जी के कुंवर बलवंतसिंह के साथ आपका विवाह सं० १८२२ में हुआ।

इनकी कुल ११ रचनाएँ हैं तथा अन्य फुटकर पद व कवित्त भी पाये जाते हैं।

श्री राधा के सौन्दर्य-सागर में श्याम के नैन डूबे हुए हैं। निम्न पंक्तियों में प्रियाजी का स्वरूप देखते ही बनता है—

स्याम नैन सागर में नैन वार पार थके,
मचत तरंग भंग—भंग रंग भगी है;
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बेनु,
नागिनि अलक जुग सोधे सग बगी है।
भवेंर त्रिभंगताई पानिप सुनाई तामै,
मोती मनि जालन की जोति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकाव लोवी पाल तामै
आज राधे लाज की नाव डगमगी है।

१०. बनीठणी (रसिकविहारी)—नागरीदास जी की पासवान (उ पत्नी) बनीठणी कृष्ण-भक्ति-काल में रसिकबिहारी की छाप से कवित किया करती थीं। आपके कुल पद आदि मिलाकर ६१ ही हैं। परन्तु इन श्रीकृष्ण और राधा से सम्बन्धित सारे मधुर प्रसंग आ गए हैं। इसे गागर सागर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

रात भर जगी हुई नायक की आँखों का चित्रण राजस्थानी भाषा दृष्टव्य है—

रतनाली हो थारी आँखड़ियां।
प्रेम छकी रस बस अलसांणी जांणि कँवल की पांखड़ियां।
सुन्दर रूप लुभाई गति मति होइ गई ज्यूं मधु मांखड़ियां।
रसिक बिहारी प्यारी कौण बसी निस कांखड़ियां।

११. छत्रकुंवरीजी—ये बाई जी रूपनगर के राजा सरदारसिंह की बेटी और सुप्रसिद्ध श्री नागरीदास की पोती थीं। इनका विवाह संवत १८३१ में कोटड़े के खीची गोपालसिंह के साथ हुआ था। इन्होंने संवत् १८४५ में "प्रेम विनोद" ग्रन्थ का प्रणयन किया।

आपकी रचनाओं में काव्य-सौष्ठव अधिक है। इनमें चित्रमय वर्णन है, इनमें सहज भावुकता का स्पर्श भी है। चौपड़ के खेल में इस कवयित्री ने रूप-निधि में लहर उठाकर मन-मीन को कैसे कौशल से लीन किया है, यह प्रस्तुत पंक्तियों से ज्ञात होता है—

रसिक बिहारी प्यारी खेलत खिलारी मिलि
वाढ़्यो रंग भारी रांचे रंग रिझवारी है।
झमकि उठाई पांसे, रमकि चलाई प्रिया,
रूपनिधि मानो कर लहर पसारी है।
तामें मन-मीन पिय लीन है कलोलत है,
निकस न चाहे कैसे मोज सुखकारी है।
संपट है नैन ओन-पोन कंज संपुट में,
कढ़त न लोभी अलि गति मतवारी है।

१२. कृष्णकुमारी—आप दीक्षित जवानसिंह जी की पत्नी थीं। आप भक्त-कवयित्री के रूप में अवतरित हुई। इष्टदेव की साज-सज्जा की सामग्री स्वयं अपने हाथों से तैयार कर सजाती थीं। आपका एक पद श्रीनाथजी के मन्दिर में संग्रहीत है। प्रस्तुत पद राग कजरी के स्वरों में गुंथा हुआ है। शब्दों में कोमल की दुरू गुनाई पड़ती है—

देखो सखी सावन आयो मनभावन ।
सावन आयो मन भावन ।
घुमड़ये घन गरजत बरसत स्याम घटा हो बरसावन ।
स्यामरसी मुरली मुरली सुन मोर कुहुक मन भावन ।
झूलत झमक हिंडोरे सुन्दर अंग सोभा हो सरसावन ।
स्यामा स्याम दोउ मिलि झूलत देखत मन हुलसावन ।
स्याम बरन तन सोह लहरिया लहर-लहर लहरावन ।
कृष्णकुंवरि सोभा संपत लखि हरष हरष हरषावन ।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि कृष्णगढ़ के राज-परिवार ने श्रीकृष्ण व राधा की विभिन्न लीलाओं का सुमधुर वर्णन प्रस्तुत कर हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य की प्रशंसनीय सेवा की है ।

••

विजया दशमी : एक अद्भुत-अभूतपूर्व बलिदान

• बी० एल० जोशी,

बात बहुत पुरानी है, तिरंगे झण्डे के स्थान पर भारत में यूनियन जेक लहराता था। मेवाड़ में दोस्ती लन्दन का सिक्का चलता था, रियासती राज्य का जमाना था।

विजया दशमी का विजय पर्व थाली की झंकार, और मादल के मादक रव में मदोन्मन्त रात्रि में पिछोला की पाल पर अवस्थित मेदपाट की राजधानी उदयपुर में सोल्लास मनाया जा रहा था। ढ़ोल ढ़मक रहे थे, कसुम्बा की गमक में मतवाले मेवाड़ी वीर माँ अम्बा का अर्चन कर रहे थे, बलिदान के बकरे कटे, भैंसे का लोह कर मेवाड़ी वीर नतमस्तक माँ अम्बा के चरणों में बलिदान में कटे भैंसे के शीश के साथ लोट गया। माँ अम्बा का खाली खप्पर लाल-लाल लहू से भर गया, मतवाले मेवाड़ी वीर माँ के इस प्रसाद को गट-गट कर पी गये। सभी वाद्य-यन्त्र मौन हो गये। माँ अम्बाजी के मन्दिर में बैठी सारी सभा मौन हो राणाजी की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी तभी झाला मन्ना जी का वंशज नत मस्तक उठ खड़ा हुआ, उसने करबद्ध होकर विनम्र निवेदन किया—

"घणी खम्मा.......अन्नदाता, सेवक आज्ञा चाहता है"

एक प्रश्नवाचक दृष्टि से राणाजी ने युवक सरदार की ओर देखा ?

"अर्द्ध रात्रि में पहर भर शेष है प्रभु, राष्ट्र सेनी माँ की अर्चना करनी है, सेवक को आज्ञा प्रदान करें अन्नदाता।" युवक सरदार ने पुनः अपनी प्रार्थना दोहराई।

"झाला सरदार! यहाँ तो भैंसा ही माँ को अर्पित हुआ है, यहाँ क्या हाथी का बलिदान देने का विचार है ?" एक अन्य सरदार ने गर्वोन्नित राज राणा झाला सरदार पर सीधा प्रहार किया।

महाराणा जी स्वीकारोक्ति स्वरूप मुसकरा दिये। "यदि मेरे स्वामी मेद-पाटेश्वर महाराणा स्वयं पधारें तो हाथी माँ के लिये क्या बड़ी वस्तु है", विनम्र सरदार ने इस व्यंग्योक्ति पर सानुनय निवेदन किया। "हम आयेंगे राजराणा हम भी आज राष्ट्र सेनी जी के दर्शन करेंगे। "जो आज्ञा प्रभु" युवक सरदार ने झुककर वन्दना की तथा आवेश को नियंत्रित कर महाराणा जी की अगवानी हेतु घोड़े पर बैठ कर प्रस्थान किया।

उदयपुर से १७ मील दूर, उत्तर में देलवाड़ा मेवाड़ का ठिकाना था। देल-वाड़ा के दक्षिण में कैलाशपुरी से २ मील पूर्व मे एक ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ राष्ट्र सेनी माँ का मन्दिर विजय पर्व में उल्लसित जगमगा रहा था। यही झाला राणा की अधिष्ठात्री राष्ट्र सेनी माँ का मन्दिर था, जहाँ माँ को हाथी का बलिदान देने की सभी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। देलवाड़ा ग्राम की सारी जनता ने इस अभूतपूर्व बलिदान के लिए रातभर बेगार कर, पत्थर डाल कर हाथी को पहुँचाने के लिये मार्ग तैयार किया। कसुम्बा घोटा गया। मदिरा की प्यालियां छलकने लगी। महाराणा जी सहित समस्त मेवाड़ के १६ व ३२ के सर-दार राव-उमराव माँ के चरणों मे उपस्थित हो गये। थाली, मादल मादक रव मे बजने लगे, ढोल ढ़मकने लगे। तूर्यनाद के साथ रणभेरी भैरव रव मे भयावह गीत गाने लगी। दो प्रहर रात्रि बीत चुकी थी, घुंघरू घमकाता मदमाता मतवाला हाथी महावत के अंकुश की मार से चिंघाड़ता भयभीत पहाड़ की चढ़ाई चढ़ने लगा। धीरे-धीरे मृत्यु के द्वार पर मतवाला हाथी पहुँच गया।

मन्दिर के द्वार पर मदिरा के दो ढ़ोल भरे हुए थे, महावत ने हाथी को मदिरा पात्र की ओर हूल दिया। सूण्ड भरकर मदिरा उछालता हाथी दोनों ही ढ़ोल की समस्त मदिरा को उदरस्त कर गया। खाली पात्रों को मदोन्मत्त हो लुढ़काने लगा।

महाराणा जी की आज्ञा हुई, महाराणा जी ने महावत को कहा "सुलेमान! हाथी को बढाओ"। "जो आज्ञा अन्नदाता", सुलेमान ने हाथी को अंकुश मारा।

"सुलेमान तुम उतर जाओ तब हाथी को बलिदान के लिये बढ़ाओ" राजराणा ने आदेश दिया। "नहीं अन्नदाता, यह गजराज ही मेरा अन्नदाता है, मेरी रोजी और रोटी का एक मात्र विधाता है। मेरा सुख इसके साथ है, मैंने इसे जब सुख मे नहीं छोड़ा तो दु:ख में कैसे छोड़ दूँ ? जो इसकी गति, वही मेरी गति। इससे पूर्व कि राजराणा कुछ कहें महावत ने मदिरोन्मत्त मतवाले

हाथी पर अंकुश प्रहार किया। हाथी ने आक्रोश में भर मदिरा के ढ़ोल को पैरों से लुढ़काया, एक चिघाड़ के साथ उस स्थान का दृश्य ही बदल गया।

पहाड़ पर से मदिरा के ढ़ोल लुढ़क रहे थे, हाथी लुढ़क रहा था और उसके साथ–साथ वफ़ादार साथी-महावत हाथी की पीठ पर चिपका हुआ लुढ़क रहा था। कभी हाथी के पैर ऊपर होते कभी पीठ पर चिपके–महावत का क्षत-विक्षत तन ऊपर उठता है।

क्षण भर में ही तलहटी में मदिरा का ढ़ोल था, बलिदान बिखर चुका था—विजय पर्व का मतवाला कसुम्बा उतर चुका था। सब मौन चुपचाप लौट रहे थे।

यह विजया दशमी के महापर्व पर राष्ट्र सेनी माँ की अर्चना थी—राष्ट्र सैनी माँ के लिये हाथी का अभूतपूर्व बलिदान था।

अपने अन्नदाता के प्यार में महावत का अभूतपूर्व बलिदान था अथवा जघन्य पशु बलि को चुनौति देने के लिये मानव का साहस पूर्ण आत्मोत्सर्ग था।

आज भी यह मन्दिर इस अभूतपूर्व बलिदान की याद दिलाता है। आज भी देलवाड़ा के राजराणा ५) रु० पाँच रुपया प्रतिमास देकर इस महावत परिवार को उस आत्मोत्सर्ग का मूल्य चुकाते हैं।

प्रत्येक दशहरा इस घटना की याद ताज़ा करता है।

••

घुटिया मास्टर

• विश्वेश्वर शर्मा

लंबे-चौड़े, काले-कलूटे। माथे पर चंदन-केसर का त्रिपुंड। घुटे हुए सर पर महाप्रभु वल्लभाचार्य संप्रदाय की नागिन-सी मुड़ी मोटी-चोटी। चौड़ी पीली किनारी की धोती और रामनाम का उपरणा—बारामासी पोशाक। न सर्दी में ठिठुरते हैं, न गर्मी में पिघलते हैं। मानों पूरा शरीर इस्पात से बना है। भोजन उतना ही करते हैं, जितना उदर में समाता है और उदर में उतना ही समाता है, जितना एक कनस्तर में नराता है। स्निग्ध-पौष्टिक पदार्थों से विशेष प्रीति। केवलानन्द सम्प्रदाय के पीठाधीश। संस्कृत वाङ्मय के दबंग व्याख्याता। वेद-उपनिषदों के मर्मज्ञ। परम आस्तिक। नियमित संध्यावन्दनादि ब्रह्मकर्म करके ही घर से बाहर निकलते हैं। शहर के मशहूर पब्लिक हाई स्कूल में पढ़ाते हुए यह बारहवां वर्ष है।

जब कक्षा में जाते हैं तो अधिकतर छात्र किसी-न-किसी बहाने कक्षा त्याग देते हैं। प्रायः इनके अन्तर में उपस्थिति का औसत बहुत गिर जाता है। कुछ मेधावी, प्रतिभावान अथवा दुर्बल मनःस्थिति के छात्रों को छोड़कर बाकी सब चतुर चिरैये फुर्रर""हो जाते हैं। जब यह अनुपस्थिति असह्य अवस्था पर पहुँचती है, तब बचे छात्रों को सम्बोधित करते हुए बड़े गर्व से कहते हैं 'बेटा! संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन कोई खेल नहीं। लोहे के चने चबाना है—लोहे के चने; लेकिन जो इन लोहे के चनों को चबा जाता है, वह फिर इस्पात सा मनुष्य बन जाता है। आजकल के छोकरे—न शुद्ध बोलना जानते हैं, न शुद्ध लिखना—और हो गये आचार्य-महामहोपाध्याय। जरा मेरे निकट आएँ, तो तपाकर कुन्दन अलग निकाल दूँ।'

वास्तव में उनके पास पचास मिनट पढ़ना अधिकतर छात्रों को नरकवास सा लगता है। ठोस पढ़ाई""सतत अध्ययन""कठोर परीक्षण, उनके इन तीन

सिद्धान्तों ही से छात्रों की काया काँपती है। वह तो शरीर से भी दैत्याकार हैं, नहीं तो छात्रों ने अब तक तो उनकी कितनी ही सेवा-पूजा की होती; लेकिन जो इक्की-दुक्की थप्पड़ें इन्होंने किन्हीं उद्दण्ड छात्रों को मारी होंगी उसके आतंक से ही छात्रों के रोम खड़े हो जाते हैं। सामने बोलना दूर, बदमाश से बदमाश लड़का भी उनके सामने आँख उठाकर देखने का साहस नहीं कर सकता। जिस लड़के को उन्होंने पुकारा, वह अपने पाँवों में बिजली लगा लेगा। सामान्यत: उनका हाथ किसी छात्र पर उठता नहीं और चोरी तथा दुराचार के अपराध को वह कभी क्षमा करते नहीं। बीड़ी-सिगरेट पीते, ताश अथवा जुआ खेलते तथा सिनेमा देखने जाते हुए छात्र को वे स्कूल तो क्या स्कूल से बाहर भी क्षमा नहीं करते। तुरन्त रास्ते ही में वह खरी-खरी सुना देंगे कि लड़के की सिट्टी गुम हो जाय। अमरकोश लघु सिद्धान्त-कौमुदी, धातु लिंग और नित्यानुष्ठान विधि छात्रों को कंठस्थ करवाते हैं और अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करके यहाँ तक भी देखते हैं कि छात्र का जीवन उन सिद्धान्तों का अनुसरण कर रहा है या नहीं?

जब कोई छात्र अच्छे अंकों से पास होता है, खेल में पुरस्कृत होता है, सांस्कृतिक गतिविधियों में सम्मानित होता है, तो उनकी बाँछें खिल उठती हैं। वे उस छात्र को एक बार सजल नेत्रों से गले लगाये बिना कभी नहीं रहते। स्कूल की हर गतिविधि में आगे मिलेंगे। लगभग सभी तरह के खेल खेल लेते हैं। स्टेज पर सूरदास का भजन गाने से लेकर विदूषक का अभिनय करने तक के काम बड़ी कुशलता से कर लेते हैं। गला भी अच्छा भारी है—शरीर सा ही। ज़ोर से लड़के को आवाज़ दें तो दीवार काँपती है—खिड़कियाँ खनकती हैं।

खीझे हुए छात्र कहते हैं— "मास्टर क्या है? यमदूत है साला! जाने किस जनम का बैर चुकाने आया है। बीसवीं सदी में लघु सिद्धान्त रटवाता है। ऐसा भैंसा नहीं होता तो वो खबर लेते कि देखता; लेकिन भूत है कम्बख्त।"

जब लड़कों का कोई बस नहीं चला तो उन्होंने एक नाम प्रचारित कर दिया है—'चुटिया मास्टर'; जिसे उन्होंने भी अपने उपनाम के रूप में सहर्ष स्वीकार लिया है।

••

पंत जी का साहित्यिक विकास

• श्याम श्रोत्रिय

लम्बेबाल, उभरा हुआ नाक नक्श, नर्म-नर्म आँखें, सहज गम्भीर मुद्रा, असाधारण पर सुरुचिपूर्ण वस्त्र–रेशमी व्यक्तित्व–ये हैं पंडित सुमित्रानन्दन पन्त। जन्म २० मई १९०० ई० को कौसानी–अल्मोड़ा में एक चाय के बाग में। शिक्षा–अल्मोड़ा, बनारस (जयनारायण हाई स्कूल) व इलाहाबाद (म्योर सेन्ट्रल कॉलेज) में। १९२० में गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में नियमबद्ध शिक्षा से मुक्ति ले ली। सृजन-प्रक्रिया के लिये पर्याप्त अवकाश मिला। अल्मोड़ा की सुन्दर पहाड़ियों और सुरम्य घाटियों में संजोई हुई कल्पनाएँ 'पल्लव' (१९२६) में मुखरित हुईं। 'वीणा' का प्रकाशन १९२६ में हुआ, यद्यपि यह पंतजी की आरम्भिक रचनाओं का संग्रह है। 'ग्रन्थि' (१९२९) के प्रकाशन के बाद पंत जी अस्वस्थ हो गये और कुँवर सुरेशसिंहजी के साथ १९३० से १९४० तक कालाकाँकर में रहे। साहित्य सृजन चलता रहा।

'गुञ्जन' (१९३२) 'ज्योत्सना–नाटक' (१९३४) 'युगान्त' (१९३६) 'ग्राम्या' (१९४०) के पश्चात् संग्रह–'पल्लविनी' व 'आधुनिक कवि' (१९४१) में प्रकाशित हुए। इन्हीं दिनों—बच्चनजी के साथ 'बमुया' में बैठकर इलाहाबाद में नवीन मानव समाज की स्थापना हेतु 'लोकायतन' नामक संस्था की रूपरेखा बनाई गई जो उभर न पाई। १९४२ में पंतजी प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर भट्ट के 'कल्चर सेन्टर' से सम्बद्ध हो गये जहाँ 'कल्पना' फिल्म के लिए उन्होंने गीत लिखे। इसी बीच पन्तजी योगिराज अरविन्द (पांडिचेरी) के सम्पर्क में आये और पूरे अरविन्दवादी बन गये। इसी समय 'स्वर्ण–किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' की रचना हुई।

१९४७ में पन्तजी पुनः इलाहाबाद लौटे। यहीं बच्चनजी के साथ 'स्वत-

न्त्रता दिवस' भी मनाया गया और फिर 'वापू' के निधन का समाचार भी सुना गया। दोनों ने जो काव्य श्रद्धान्जलियाँ अर्पित कीं वे 'खादी के फूल' नाम से प्रकाशित हुई। एक नवीन काव्य–संग्रह 'उत्तरा' (१९४९) प्रकाशित हुआ तथा एक उपन्यास 'क्रमश:' नाम से लिखना आरम्भ किया जो अप्रकाशित रहा और 'पाँच कहानियाँ' संग्रह भी तैयार किया गया।

१९५० में पन्तजी को 'ऑलइण्डिया रेडियो' के हिन्दी विभाग में 'चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर नियुक्ति मिली। यहीं १९५० से १९५४ तक उन्होंने ११ रूपक लिखे जो 'रजतशिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' नामक संग्रहों में प्रकाशित हुए। उनके नवीन काव्य संग्रह हैं—अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, किरण वीणा, पुरुषोत्तम राम, पौ फटने से पहले, पतझर–एक भाव क्रान्ति तथा चिदंबरा। 'चिदम्बरा' पर पन्तजी को भारतीय ज्ञान पीठ की ओर से एक लाख रुपये का पुरस्कार इसी वर्ष प्रदान किया गया है।

पन्त जी की साहित्यिक कृतियों पर विमर्श करने की दृष्टि से निम्न क्रम दिया जा सकता है—

१. छायावादी–रहस्यवादी प्रवृत्ति प्रधान रचनाएँ अर्थात् पूर्व पंतवीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन और ज्योत्सना।

२. मानव चिन्तन प्रवृत्ति की रचनाऐं—अर्थात् मध्य पंत-युगान्त युग वाणी और ग्राम्या

३. संस्कृति चिन्तन प्रवृत्ति की रचनाएँ—अर्थात् उत्तर पन्त-स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, युगान्तर, खादी के फूल तथा १९५० के बाद की रचनाएँ—रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण (रूपक) एवं अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा-चाँद (काव्य संग्रह)

छायावादी रहस्यवादी रचनाएँ

वीणा (१९१८)

पन्त जी उस समय तक 'गई न सिसुता की झलक' में थे। यह भाव प्रधान मुक्तकों का संग्रह है। सामूहिक रूप से वीणा का कवि 'भावुक–अल्हड' है। वह प्रकृति के प्रति सजग भी है और आकर्षित भी—

> **छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया**
> **बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?**
> **भूल अभी से इस जग को !**

कवि प्रकृति को विस्मय भरी दृष्टि से निहारता है, वह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध है, उसकी पावनता से अभिभूत। वह सोचता है, उसे प्रकृति की गोद में ही वह सब कुछ मिल जायगा जो वह पाना चाहता है।

ग्रंथी—(१६२०)

'ग्रन्थि' में कवि ने अपनी रागात्मिका प्रवृत्ति को जगाया है। यह एक लम्बा दुःखान्त प्रेम गीत है। इस विषय में बच्चन जी के उद्‌गार सुनिये—"यह कविता कोरी कल्पना है। न तो पन्त जी कभी प्रेमपाश में पड़े और न निकले। वे तो प्रेमपाश के निकट जाते हुए भी घबराते हैं।" आगे बच्चनजी लिखते हैं—"जब उन्होंने (पन्तजी ने) प्राकृतिक सौन्दर्य को जी भर के छक लिया और यौवन ने उनकी कल्पना को गुदगुदाया तो एक आदर्श नारी का अमूर्त रूप उनके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा पर इसकी रक्तमांस वाली प्रतिमूर्ति को ढूँढ़ने-पाने-अपनाने का उन्होंने कभी प्रयास नहीं किया। कल्पना-कल्पना में ही उसका भोग कर वे उससे विरक्त भी हो गये। वे माता को भी नहीं जान सके थे (जन्म के कुछ ही घंटों बाद पन्त जी की माताजी का निधन हो गया था) वे 'प्रेयसि' अथवा 'पत्नी' को भी नहीं जान सके। उनकी भावी-पत्नी (पल्लव) 'भावी' ही बनी रही और वे चिरकुमार ही बने रहे।"

पल्लव—(१६१८ से १६२४)

'वीणा' का आध्यात्म चिन्तन 'ग्रंथि' में प्रेम के बंधन में सीमित हो गया है। 'पल्लव' में वही प्रकृति का आश्रय ग्रहण करता है। विरह उत्पादन-कारी पृष्ठ भूमि के कारण पल्लव की रचनाओं के तीन प्रकार हैं—(क) प्रकृति प्रधान (ख) विरह प्रधान (ग) चिन्तन प्रधान। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

प्रकृतिप्रधान— "इस तरह मेरे चितेरे हृदय को
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत-चित्र थी।"
(उच्छ्‌वास)

"मेरा पावस ऋतु सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन।"
(आँसू)

विरह प्रधान— "न जाने किस गृह में अनजान, छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान नवल कलिकाओं की सीवाण, बालरति से अनुपम, असमान, न जाने कौन ? कहाँ ? अनजान
प्रिये प्राणों की प्राण !
(भावी पत्नी के प्रति)

चिन्तन प्रधान— बाँध दिये क्यों प्राण, प्राणों से,
तुमने चिर अनजान प्राणों से !
गोपन रह न सकेगी अब यह मर्म कथा
प्राणों की न रुकेगी बढ़ती विरह व्यथा

विवश फूटते गान प्राणों से !

'पल्लव' का कवि प्रधानतया प्रकृति का कवि है, परन्तु अब वह प्रकृति को उन आँखों से देखता है, जो प्रेम के आँसुओं से धुल चुकी हैं। कवि का रागी मन जिसने एक दिन प्रकृति के सामने नारी की अवहेलना की थी, गा उठता है—

तुम्हारे रोम रोम से नारी, मुझे है स्नेह अपार !

तथा

"घने रेशम से बाल, धरा है सिर पर मैंने देवि तुम्हारा
यह स्वर्गिक शृंगार स्वर्ण का सुरभित भार"

किन्तु प्रकृति दर्शन (Naturalistic Philosophy) के अध्ययन ने कवि के मन पर यह बिठा दिया कि विश्व का सारा सौन्दर्य नश्वर है—

"अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के, चिकने व्याल
केंचुली काँस, सिवार;"

नारी मरीचिका के आमंत्रण को अस्वीकार कर कवि ने अपनी कुलबुलाती भावनाओं को सुलाने के लिए ही प्रकृति दर्शन की यह खुराक़ अपने गले में उलट ली। 'जीवन क्षणभंगुर है', 'यौवन पानी का बुलबुला है', सौन्दर्य चार दिन की चाँदनी है, 'प्रेम आँधी का एक झोका है'—इस दर्शन ने साहित्य जगत को एक प्रसिद्ध रचना दी—'परिवर्तन', जो पल्लव में अन्तिम रचना के रूप में सज्जित है।

वासनाओं पर विजय पाना बहुत कठिन कार्य है। अपने ही व्यक्तित्व के एक सशक्त भाग से लड़ने में पन्त जी को अपनी सभी शक्ति लगानी पड़ी। वे बीमार पड़ गये और कुंवर सुरेशसिंह के साथ कालाकाँकर जाकर रहे। यहीं "गुञ्जन" और उसके पश्चात् की रचनाएँ लिखी गईं।

गुञ्जन—(१६१६–१६३२)

'गुञ्जन' पन्तजी की साहित्य साधना की चरमसीमा है, जहाँ मानव और प्रकृति दोनों ही किसी रहस्य की खोज में पड़े हुए हैं।

दर्शन, प्रेम और प्रकृति का क्रमशः 'वीणा,' 'ग्रन्थि' और 'पल्लव' में प्रतिपादन किया गया है। इसके पश्चात् 'गुञ्जन' की रचना हुई है। 'वीणा' से 'पल्लव' तक कवि 'सत्' और 'चित्' दो प्रवृत्तियों पर चिन्तन प्रस्तुत कर चुका है। 'गुञ्जन' दर्शन की तीसरी प्रवृत्ति 'आनन्द' का प्रकाशन है। 'गुञ्जन' में

कवि की भावधारा बदल गई है। उसे प्रत्येक स्थल पर नवीन सौन्दर्य और नवीन आनन्द दिखाई पड़ता है। कल्पनालोक से उतरकर कवि जीवन की भाव-भूमि पर आ गया है। उसका स्वर 'सा' से 'रे' में परिवर्तित हो गया है। गुञ्जन' का कवि अपने मन को जीतने में सफल हो गया है।

वह कह उठता है—"देखूँ सबके उरकी डाली,
किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छवि उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम-शूल !"

गुञ्जन की कविताओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार हो सकता है—

१. मानव प्रेम सम्बन्धी : "चाहिए विश्व को नव जीवन"

२. सुख दुःख चिन्तन सम्बन्धी : "देखूँ सबके उर की डाली"

३. प्रकृति सम्बन्धी : "जग के दुख दैन्य शयन पर
यह रुग्ण जीवन बाला
रे, कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला"
(चाँदनी)

४. जीवन दर्शन सम्बन्धी "तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन"

ज्योत्सना—(१६३४) 'ज्योत्सना' की रचना 'गुञ्जन' के बाद हुई। यह नाटक है, जिसमें बीच-बीच में सुन्दर गीत भी हैं। नाटक की दृष्टि से यह रचना 'असफल' है। कथानक स्वप्निल, पात्र-निर्जीव, और कथोपकथन बोझिल है। किन्तु पन्तजीका जीवन दर्शन इसी रचना में स्पष्ट होता है—

"मत हो विरक्त जीवन से
अनुरक्त न हो जीवन पर"

मानव चिन्तन प्रवृत्ति की रचनाएँ

युगान्तः—(१६३६) 'युगान्त' का कवि 'विद्रोही' और 'क्रान्तिकारी' है। उसका स्वर कर्णकटु और कठोर है। भूमिका मे पन्त जी लिखते हैं—"मेरी नवीन रचनाओं में 'पल्लव काल' की कोमल कान्त पदावली का अभाव है और आगे चलकर मैं किसी अन्य प्रकार के माध्यम मे विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा।"

प्रथम रचना में ही कवि नवीनता की चाह प्रकट करता है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे स्रस्त-ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण

हिम-ताप-पीत, मधुवात भीत
तुम वीतराग जड़ पुरा चीन
नाना

"गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस—भ्रंश जग के जड़-बन्धन
पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन।"

'युगान्त' की रचनाओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

१. जागरण प्रवृत्ति की रचनाएँ:—"गा कोकिल संदेश सनातन
मानव देह स्फुलिंग चिरन्तन
वह न देह का नश्वर रजकण
देश काल है उसे न बन्धन
मानव का परिचय मानवपन।"

२. प्रेम गीत (केवल एक है, जिसमें 'ग्रन्थि' के कवि का आहत स्वर है)।
"तुमने अधरों पर धरे अधर, मैंने कोमल वपु धरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल मधुर, मिल गये सहज मारुतोमोद।

३. प्रकृति सम्बन्धी (किन्तु प्रकृति के कण-कण से कान्ति झलकती है)
"चंचल पग दीप शिखा के धर, गृह-मग-वन में आया वसन्त
पल्लव पल्लव में नवल रुधिर पत्रों में मांसल रंग खिला
आया नीली पीली लौसे पुष्पों के चित्रित दीप जला।"

युगवाणी

युगवाणी में कवि ने 'मार्क्स' को अध्यात्मवाद से शोधित करने का प्रयास किया है—युग के गद्य को वाणी देने का प्रयास किया है। यहाँ आकर कवि का दृष्टिकोण ही बदल गया है। वह सूक्ष्म से स्थूल की ओर, कल्पना से सत्य की ओर बढ़ रहा है। वह समष्टि के सम्मुख व्यष्टि का कोई स्थान नहीं मानता—

"सर्व मुक्ति हो भव का बन्धन
सामूहिकता ही निजत्व अब"

'कल्पना लोक' के गीत गाने वालों से वह कह उठता है—

"ताक रहे हो गगन, मृत्यु—नीलिमा—गहन—गगन
देखो भू को, स्वर्गिक भू को, मानव पुण्य प्रसू को"

'मानवस्वरूप' के परिष्कार के लिये वह सुन्दर और असुन्दर दोनों को एक भूमि पर लाना चाहता है—

> हे कुरूप, हे कुत्सित प्राकृत
> हे सुन्दर, हे संस्कृत सस्मित,
> आओ जग जीवन परिणय में
> परिचित से मिल बाँह भरो।

युगवाणी में कवि ने 'साम्राज्यवाद की भर्त्सना की है—

> "भूतियों के, कुलपति-सामन्त-महन्तों के वैभव क्षण
> विला गये यह राज तंत्र-सागर में ज्यों बुद्बुद कण।
> रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का नयनों में दे शोभन
> पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन"

पन्त जी की विचारधारा प्रगतिवादी होते हुए भी साम्यवादियों से भिन्न है। आध्यात्म पक्ष पर वे गांधी, अरविन्द, विवेकानन्द और रवीन्द्र से प्रभावित हैं तथा भौतिक पक्ष पर मार्क्स के आधारभूत सिद्धान्तों से।

युग वाणी में काव्यात्मकता का अभाव नहीं प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत और विचार-भावना प्रधान है। युगवाणी की भाषा में विश्लेषण का सौन्दर्य है।

ग्राम्या : (१६४०)

'युगवाणी' की चिन्तन भूमि पूर्णरूपेण नगर है। धनपति और श्रमजीवी दोनों नगर के जीव हैं। 'ग्राम्या में' गाँव की संस्कृति, सौन्दर्य एवं प्रेमी जीवन का सफल चित्रण हुआ है। किन्तु गाँवों की वर्तमान दशा पर कवि क्षुब्ध है।

> "यह तो मानवलोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
> यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित"

'ग्राम्या' में कवि नारी चिन्तन की ओर अधिक उन्मुख है—स्त्री, आधुनिका, नारी, मजदूरनी आदि अनेक कविताएँ 'ग्राम्या' में संग्रहीत हैं। कवि नारी की पूर्ण स्वतन्त्रता का पक्षपाती है—

> "मुक्त करो नारी को मानव, चिर वन्दिनी नारी को
> युगयुग की बर्बर कारा से, जननि सखी प्यारी को।"

ग्राम्या का कवि ग्रामीणों के लोक नृत्यों में रम गया है—

> "लो छन छन छन छन छन छन छन छन, नाच गुजरिया हरती मन,
> लहराता लँहगा लहर लहर, उड़ रही ओढ़नी फर फर फर"
>
> (धोबियों का नाच)

तथा

"मचा खूब हुल्लड़ हुड़दंग, धमक धमाधम रहा मृदंग यह चमार चौदस का ढंग"

'ग्राम्या' में स्वस्थ विचारधारा के राष्ट्रीय गीत भी हैं—

"भारत माता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल, धूलि भरा मैला सा आँचल
गंगा-जमुना में आँसू जल, मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी"

'युगवाणी' की अपेक्षा 'ग्राम्या' में कवित्व एवं संवेदन शीलता अधिक मात्रा में उपलब्ध है।

संस्कृति चिन्तन प्रवृत्ति की रचनाएँ

स्वर्ण किरण

अरविन्द विचार धारा से प्रभावित होने के पश्चात् 'स्वर्ण किरण' पन्त जी की प्रथम रचना है। 'ग्राम्या' के पश्चात् कवि काफ़ी समय तक चिन्तन और मनन में लीन रहा। 'स्वर्ण किरण' की समस्त रचनाओं में विचार प्रधान भविष्य की कल्पना है। कवि समाज का कटु आलोचक बन गया है।

चिन्तन के अतिरिक्त 'स्वर्ण किरण' की रचनाओं में शारीरिक सौन्दर्य और प्राकृतिक सुषमा सम्बन्धी कविताएँ भी हैं। 'स्वर्ण किरण' का शारीरिक सौन्दर्य आकर्षण, वासना तथा उपासना का क्रमिक विकास है। प्रकृति चिन्तन की रचनाओं में उपदेश-वृत्ति मिलती है। कुछ अंशों का अवलोकन कीजिये—

"रुद्ध द्वार कर मुक्त हृदय के, चिर तमसावृत्त,
अन्तर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित।"

(चिन्तनपरक, 'योगी अरविन्द के प्रति')

"मानदण्ड भू के अखंड, हे पुण्यधरा के स्वर्गारोहण,
बालचेतना मेरी तुममें जड़ीभूत आनन्द तरंगित।"

'नारीपथ', 'नोआखाली,' 'जवाहरलाल के प्रति' आदि कविताएँ भी 'स्वर्णकिरण' की ही रचनाएँ हैं। इस संग्रह में 'अशोक वाटिका' नामक एक प्रबन्ध रचना भी है, जो मूलरूप में एक रूपक है। 'सीता' पार्थिवता की प्रतिमूर्ति और 'राम' ईश्वरत्व के प्रतीक हैं।

स्वर्णधूलि

स्वर्णधूलि में विषय की एकता का अभाव है। इसकी कुछ कविताएँ अवसर परक हैं, कुछ प्रेमगीत हैं (जो लगभग १९४० में लिखे गये) कुछ भाग में वेदमंत्रों के अनुवाद हैं और शेष में, जैसा कि पंत जी ने स्वयं लिखा है— 'सामाजिक पृष्ठभूमि' है। इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'मानसी' रूपक

मानव के सम्यक् विकास के क्रम में केवल निम्न चेतना ही ऊपर नहीं उठती वरन् उर्ध्व चेतना भी नीचे उतरती है।

उक्त छः रूपक 'रजतशिखर' में संग्रहीत हैं।

७. शिल्पी : यह, कलाकार के अन्तः संघर्ष का रूपक है।

८. ध्वंस शेष : यह रूपक तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका से लिखा गया है।

९. अप्सरा : यह सौन्दर्य चेतना का रूपक है—

"प्रति युग में आती हो रंगिणी, रचस्वरूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि-ईप्सित अप्सरि !
त्रिभुवन भर में लीन।"

सितम्बर ५१-५२ में प्रस्तुत ये रूपक 'शिल्पी' में संग्रहीत हैं।

१०. स्वप्न और सत्य : इस रूपक में गत युग के अति आध्यात्मिक एवं वर्तमान युग के अतिभौतिक दृष्टिकोण को समन्वित करने की चेष्टा है।

११. सौवर्ण : सौवर्ण अर्थात् सोने का। पन्त जी का सौवर्ण श्री अरविन्द का 'डिवाइनमैन'—मानव-ईश्वर है। इस रूपक मे कवि ने यह बताने की चेष्टा की है कि आदर्श मानव, आदर्श समाज, आदर्श संसार—सर्वगत समन्वय पर ही आधारित है।

नवम्बर १९५२ से मार्च १९५४ तक प्रस्तुत उक्त दोनों रूपक 'सौवर्ण' में संग्रहीत हैं।

अतिमा : यह अप्रेल १९५४ से फरवरी १९५५ तक लिखी हुई ५५ कविताओं का संग्रह है। अतिमा का अर्थ पन्तजी ने इस प्रकार किया है—"वह मनःस्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सांस्कृतिक, परिवेश का अति-क्रम करके चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।" कवि के ही शब्दों मे 'अतिमा' मे ऐसी रचनाएँ संग्रहीत हैं, जिनकी प्रेरणा युग जीवन के अनेक स्तरों को स्पर्श करती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में मूर्त हुई हैं। 'प्रकाश-पतिंगे-छिपकलियाँ' में कवि कहता है—

"पर प्रकाश, प्रेमी पतंग या छिपकलियाँ केवल प्रतीक भर,
ये प्रवृत्तियाँ भू मानव की, इन्हें समझ लेना श्रेयस्कर"……

वाणी : 'वाणी' की कविताओं का मूल है—सृष्टि का वह विकास क्रम जो रुक नहीं सकता और जो अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही रहेगा।

कौवे (नव चेतन के जरिये दुर्धर) अग्निसंदेश (लज्जा तुम्हें नहीं आती निर्मम निज मन मे) विकास क्रम (मत रोको, निर्मम मत रोको—जड़ की फिर चेतन बनने की गहन पिपासा) बुद्ध के प्रति और आत्मीका इस संग्रह की ध्यान आकृष्ट करने वाली कविताएँ हैं।

'टूट गया तारा अन्तिम आभा को देकर
जीर्ण जाति मन के खंडहर का अंधकार हर।'

खादी के फूल (१९४८)

यह पन्त और बच्चन की सम्मिलित कृति है। पन्त जी की केवल पन्द्रह रचनाएँ हैं—जो बापू के स्मरण में लिखी गई हैं। प्राक्कथन में पंत जी कहते हैं—"महात्मा जी के अश्रांत उद्योग से जहाँ हमें स्वाधीनता प्राप्त हुई है, वहाँ उनके महान व्यक्तित्व से हमें गम्भीर सांस्कृतिक प्रेरणा भी मिली है। महात्मा जी ने राजनीति के कर्दम में अहिंसा के वृन्त पर जिस सत्य को जन्म दिया है, वह संस्कृति देवी का ही आसन है।" उक्त प्रतीकात्मक वाक्य में कितना तत्व और कवित्व भरा है, इसे मननशील व्यक्ति ही समझ सकेंगे।

१९५० से १९५७ तक पन्त जी 'ऑल इण्डिया रेडियो' के हिन्दी विभाग के 'चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य करते रहे। इस काल में अपने चिन्तन को कवि ने ग्यारह रूपकों में बाँधा।

१. **विद्युत वसना :** यह रूपक १५ अगस्त १९५० को प्रस्तुत किया गया। यह आज़ादी की देवी को दिया गया प्रतीकात्मक नाम है।

"यह विद्युत वसना का रूपक है सांकेतिक
नवयुग का संदेश भरा जिसमें ज्योतिर्मय।"

२. **शुभ्र पुरुष :** २ अक्टूबर १९५० को प्रस्तुत किया गया। 'शुभ्र पुरुष' महात्मा गांधी का प्रतीक है। इस कृति में पन्त जी ने 'बापू' के सांस्कृतिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धान्जलि अर्पित की है।

३. **उत्तरशती :** यह ३१ दिसम्बर १९५० को प्रस्तुत किया गया रूपक है, जो कि 'शती' के 'उत्तर' की सांस्कृतिक भूमि का प्रतीक है। कवि ने 'शती' के पूर्वार्द्ध के लौह-संघर्ष और उपलब्धियों पर विहगम दृष्टि डाल उसके उत्तरार्द्ध में आने वाले स्वर्णयुग की ओर आशामय संकेत किया है।

४. **फूलों का देश :** ५ मार्च १९५१ को प्रस्तुत यह रूपक सांस्कृतिक क्षेत्र का प्रतीक है। कवि ने बताया है कि संसार में फैले हुए विभिन्न वादों (अध्यात्मवाद, भौतिकवाद, आदर्शवाद, वस्तुवाद, आदि) में समन्वय कराने का कार्य कलाकार या कवि का है।

५. **रजत शिखर :** २५ जून १९५१ को प्रस्तुत इस रूपक में मानव के संचरण को सन्तुलित बनाने की आवश्यकता बताई गई है।

६. **शरदचेतना :** १ सितम्बर १९५१ को प्रस्तुत किये गये इस रूपक के अनुसार 'शरदचेतना' वह चन्द्रिका है, जो शरदचन्द्र से पृथ्वी पर उतरती है।

मानव के सम्यक् विकास के क्रम में केवल निम्न चेतना ही ऊपर नहीं उठती वरन् उर्ध्व चेतना भी नीचे उतरती है।

उक्त छः रूपक 'रजतशिखर' में संग्रहीत हैं।

७. शिल्पी : यह, कलाकार के अन्तः संघर्ष का रूपक है।

८. ध्वंस शेष : यह रूपक तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका से लिखा गया है।

९. अप्सरा : यह सौन्दर्य चेतना का रूपक है—

"प्रति युग में आती हो रंगिणी, रचस्वरूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि-ईप्सित अप्सरि !
त्रिभुवन भर में लीन।"

सितम्बर ५१–५२ में प्रस्तुत ये रूपक 'शिल्पी' में संग्रहीत हैं।

१०. स्वप्न और सत्य : इस रूपक मे गत युग के अति आध्यात्मिक एवं वर्तमान युग के अतिभौतिक दृष्टिकोण को समन्वित करने की चेष्टा है।

११. सौवर्ण : सौवर्ण अर्थात् सोने का। पन्त जी का सौवर्ण श्री अरविन्द का 'डिवाइनमैन'—मानव–ईश्वर है। इस रूपक मे कवि ने यह बताने की चेष्टा की है कि आदर्श मानव, आदर्श समाज, आदर्श संसार—सर्वगत समन्वय पर ही आधारित है।

नवम्बर १९५२ से मार्च १९५४ तक प्रस्तुत उक्त दोनो रूपक 'सौवर्ण' में संग्रहीत हैं।.

अतिमा : यह अप्रेल १९५४ से फरवरी १९५५ तक लिखी हुई ५५ कविताओं का संग्रह है। अतिमा का अर्थ पन्तजी ने इस प्रकार किया है—"वह मनःस्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सांस्कृतिक, परिवेश का अतिक्रम करके चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।" कवि के ही शब्दों में 'अतिमा' मे ऐसी रचनाएँ संग्रहीत हैं, जिनकी प्रेरणा युग जीवन के अनेक स्वरों को स्पर्श करती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीको मे मूर्त्त हुई हैं। 'प्रकाश-पतिंगे-छिपकलियाँ' मे कवि कहता है—

"पर प्रकाश, प्रेमी पतंग या छिपकलियाँ केवल प्रतीक भर,
ये प्रवृत्तियाँ भू मानव की, इन्हें समझ लेना श्रेयस्कर"·······

वाणी : 'वाणी' की कविताओं का मूल है—सृष्टि का वह विकास क्रम जो रुक नहीं सकता और जो अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही रहेगा।

कौवे (नव चेतन के अरि ये दुर्धर) अग्निसदेश (लज्जा तुम्हें नहीं आती निर्मम निज मन मे) विकास क्रम (मत रोको, निर्मम मत रोको—जड़ की फिर चेतन बनने की गहन पिपासा) बुद्ध के प्रति और आत्मीका इस संग्रह की ध्यान आकृष्ट करने वाली कविताएँ हैं।

कला और बूढ़ा चाँद : इस रचना में काव्याभिव्यक्ति के लिये कवि ने एक ऐसे माध्यम को चुना है।' जिसका उपयोग उसने पहले कभी नहीं किया। जैसा कि पन्तजी ने स्वयं कहा है कि उन्होंने छन्दों की पायल उतार दी है। इस कृति में विरोधाभासों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। भावों को अन्य माध्यम में प्रकट न कर पा सकने के कारण कवि ने प्रतीकों का सहारा ले लिया है।

"बोध के
सर्वोच्च शिखर से
बोल रहा हूँ

□

भाषा नहीं,
भाव नहीं—
ओ अव्यक्त
तुम में समा न जाऊँ,
खो न जाऊँ !
आगे मौन है
केवल
अतल मौन !

पन्तजी कहते हैं "मैं शब्दों की इकाइयों को रौंदकर संकेतों में, प्रतीकों में बोलूंगा, उनके पंखों को असीम के पार फैलाऊँगा।"

□

पन्तजी के नवीन काव्य ग्रन्थ हैं—'किरण-वीणा', 'पौ फटने से पहले', 'पुरुषोत्तम राम, पतझर; एक भाव क्रान्ति एवं 'चिदंबरा'। 'पतझर : एक भाव क्रान्ति' के विषय में पन्तजी कहते हैं—"इसमें विचार प्रधान, युग बोध से प्रेरित तथा कुछ प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ हैं। प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ उस समय लिखी गईं जब मैं रानीगंज गया था। लगभग बीस कविताएँ विचार प्रधान हैं। शेष रचनाएँ औद्योगीकरण तथा युवकों की समस्याओं पर लिखी गई हैं।"

अपनी नवीन रचनाओं के विषय में कवि कहता है—"इस समय युगीन समस्याएँ इतनी हैं कि एक स्वस्थ दृष्टि देना मैंने अपना कर्तव्य माना है।" नवीन रचनाओं में कवि ने युगीन समस्याओं पर अपना मत प्रकट किया है।

नवीन-रचनाओं से कवि जीवन का चतुर्थ चरण स्पष्ट होता है। नरेन्द्र शर्मा के शब्दों में—"बाह्य मानवों की अपर्याप्तता के बोध से पन्त-काव्य के

चौथे चरण का आरम्भ होता है। काव्य संकलन 'चिदंबरा' (भारतीय ज्ञान पीठ का प्रथम पुरस्कार प्राप्त ग्रंथ) कवि के गत तृतीय चरण का समारोप और वर्तमान चतुर्थ चरण की विस्तृत भूमिका का केन्द्रीय आलोक बिंदु है। व्यक्ति और समाज का स्वरूपान्तर इसका हेतु है।"

"वास्तव में अपनी काव्य यात्रा के चतुर्थ चरण मे पन्तजी का मुख्य उद्देश्य प्रवृत्ति और निवृत्ति, व्यक्ति और समाज, दिव्य और पार्थिव जैसे अनेक मध्ययुगीन व्यवधानो को मिटाना और सर्वस्व देकर भी, सर्व और स्व को एक करने के लिए एक चैतन्य स्वर्णसेतु बनाना है।

••

श्रीमद्भगवद्गीता

• देवेन्द्र मिश्र

भारतीय शिक्षा, पश्चिमी देशों की 'भौतिक व्यवस्था' के प्रभाव में पड़कर अपनी संस्कृति एवं चिन्तन को धीरे-धीरे विस्मृत करती जा रही है। बाह्य रूप से देखने में यह पूर्ण विदेशी प्रतीत होने लगी है। इतना ही नहीं आज का नवयुवक भारतीय परम्पराओं की ओर दृष्टिपात तक करने में लज्जा का अनुभव करने लगा है। चिन्तन एवं व्यवहार की दृष्टि से इस समय अत्यावश्यक है कि आने वाले भयंकर प्रतिरोध को रोका जाय अन्यथा भारतीय शिक्षा जिस प्रकार फल की प्राप्ति की आशा करती आई है, उसमें सफल न हो सकेगी।

अतः इस समय शिक्षा-शास्त्रियों एवं विचारकों के समक्ष एक समस्या है कि वे 'ऐसी शिक्षा-व्यवस्था एवं ढाँचे को खोजें जो 'प्रकृति' एवं 'सामग्री' की दृष्टि से पूर्ण 'भारतीय जीवन आदर्शों' तथा 'भारतीय वातावरण' के अनुकूल हो। इस समस्या के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि एक ओर तात्कालिक दार्शनिक विचारों को लिया जाय तथा दूसरी ओर ऐसे प्रचलित प्रशंसनीय दर्शन को सम्मुख रखा जाय, जिसकी विचारधाराओं से जन साधारण व्यक्त हो सकता हो। उक्त विचारों की पुष्टि में श्रीमद्भगवद्गीता ही एक मात्र ऐसा उपयुक्त ग्रन्थ लगता है, जिसके पठन-पाठन से योग्य विचारकों, शिक्षा-शास्त्रियों एवं नूतन योजना के निर्माताओं को कुछ लाभ प्राप्त हो। शैक्षणिक दृष्टिकोण से विवेचन करने के पूर्व यह आवश्यक होगा कि गीता का दार्शनिक आधार नितांत सरलतम रूप में समझ लिया जाय।

सरलतम दार्शनिक चिंतन

महाभारत जैसे विशालकाय ग्रन्थ का श्रीमद्भगवद्गीता सार [illegible] है। इसके ज्ञान को [illegible] [illegible] सरल भाषा में [illegible] [illegible]

समझ सकते हैं। गीता दलबंदी के दल-दल से कोसों दूर है। अध्यात्म-तत्व के निरूपणार्थ जितने भिन्न-भिन्न मतों की उद्भावना हो चुकी थी, उन सबका उपयोग कर गीता एक परम रमणीय साधन-मार्ग की व्यवस्था करती है जो भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले प्राणियों के लिए भी नितांत सुखकर है।

"आत्मा की अपरोक्षानुभूति का प्रतिपादक था उपनिषद्; प्रकृति-पुरुष की विवेक-ख्याति से मोक्षलाभ का उपदेशक था सांख्य; समाज तथा धर्म के द्वारा प्रतिष्ठित विधि-विधानों के अनुष्ठान से परमसुखमय स्वर्ग की शिक्षा देने वाली थी कर्म मीमांसा; अष्टांग साधन के द्वारा प्रकृति के बन्धन से जीव को निर्मुक्त कर कैवल्य का प्रतिपादक था। योग तथा रागात्मिका भक्ति के द्वारा अखिल कर्मों का परमात्मा में समर्पण सिद्धान्त को बतलाने वाला था पाञ्चरात्र। इन समस्त दार्शनिक तत्वों का जैसा मनोरम सामञ्जस्य गीता में प्रदर्शित किया गया है वह परम रमणीय है, नितांत उपादेय है।" गीता, सभी के लिए प्रेम, विश्वास, प्रार्थना एवं भक्ति की स्थापना कराती है, सुचारित्रिक बनने की प्रेरक है तथा ईश्वर का ध्यान लगाते हुए अनासक्ति से कर्म किए जाने की प्रेरणा देती है। गीता का सर्व प्रतिष्ठित उपदेश है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते, सङ्गोऽस्त्व कर्मणि" (२/४७)

मानव का अधिकार कर्म करने में है, फल में कभी नहीं; फल की आकांक्षा से कभी कर्म मत करो तथा अकर्म में; कर्म के न करने में, कभी तुम्हारी इच्छा न होनी चाहिए। वर्तमान भौतिकवादी युग में मानव 'स्वयं' से इतना अधिक चिपक गया है कि उसका बस चले तो अमरत्व की गोली खाकर, अत्यधिक भोग लिप्सा की भावना में ही डूबता उतराता रहे, परन्तु ऐसा नहीं होता। शरीर का यह सक्रिय ढाँचा एक न एक दिन जड़ हो जायगा, ऐसा सोच कर वह मृत्यु से घबरा उठता है। उसे यह नहीं ज्ञात रहता कि मेरे इस शरीर में निवास करने वाली आत्मा न तो कभी मरती है और न ही कभी मारी जा सकती है। यह तो कुछ इस प्रकार होता है कि जैसे 'जीर्ण वस्त्रों का परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण करना' अतः जीव प्रारब्ध-भोग द्वारा जीर्ण शरीर को छोड़ नये शरीर को प्राप्त करता है। यह जीव नाना रूप न होकर, एक ही है। जीव परमेश्वर का सनातन अंश है (ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातन. १५/७)

गीता का अध्यात्म पक्ष जितना युक्ति-युक्त तथा समन्वयात्मक है उसका व्यवहार पक्ष भी उतना ही मनोरम तथा आदरणीय है। गीता के अध्ययन से

पता चलता है कि उस समय भारत में चार प्रकार के पृथक-पृथक मार्ग प्रचलित थे (१३/२४-२५) कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग, ध्यान मार्ग तथा भक्ति मार्ग। जो जिस मार्ग का पथिक था वह उसे ही सर्वोत्तम मानता था परन्तु गीता में इसे समन्वयात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। "जिस प्रकार प्रयाग में गंगा, यमुना तथा सरस्वती की धाराएँ भारत भूमि को पवित्र करती हुई त्रिवेणी के रूप में वह रही हैं, उसी प्रकार कर्म, ज्ञान तथा भक्ति की धारायें मिलकर तत्व-जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा मिटाती हुई भगवान की ओर अग्रसर हो रही हैं।" गीता के सार-रूप दो श्लोक विचारणीय हैं (९/३४ तथा १८/६५) जिनका आशय है—मन लगाना चाहिए भगवान में, भक्ति करनी चाहिए भगवान की, यज्ञ करना चाहिए भगवान के निमित्त तथा आश्रय लेना चाहिए भगवान का। ऐसा ही व्यक्ति ईश्वर को प्रिय है।

दार्शनिक दृष्टिकोण और शिक्षा के उद्देश्य

१. वर्तमान शैक्षणिक विचारकों के अनुरुप 'गीता' व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करते हुए, उसके व्यक्तित्व में तादात्म्य स्थापित कराना चाहती है परन्तु वह इसमें सहमति प्रकट नहीं करती कि व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि को शिक्षित करने में ही सर्वांगीण विकास होगा। ठीक भी है आज का शैक्षणिक क्षेत्र व्यक्ति के आत्म तत्व को भुला बैठा है। हम बालक को शिक्षा तो देना चाहते हैं परन्तु उसे अपने भीतर की ओर झाँक कर देखने नहीं देते। वह क्या करना चाहता है? गीता में प्रस्तुत संदर्भ 'क्षमता' 'कार्यान्विति योग्यता' तथा 'सामाजिक कार्यकौशल' के रूप में परिलक्षित है। व्यावसायिक शिक्षा दर्शन के भी प्रमुख तत्व ये ही हैं।

२. वर्ण-धर्म-व्यस्था का उल्लेख चौथे अध्याय के तेरहवें श्लोक में दिया गया है, जिसका तात्पर्य है "व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार ही कार्य को चुने और उसमें अधिकाधिक योग्यता प्रदर्शित करे।" सामाजिक व्यवस्था के अनुसार जहाँ एक ओर श्रम का विभाजन है तो दूसरी ओर व्यक्ति की रुचियों का। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति वह योग्यता पैदा कर सके कि अपने व्यवसाय को अपनी रुचि एवं आवश्यकता के अनुरूप चुनले। गीता वर्ण
था को जन्म के आधार पर नहीं मानती। उसका दृष्टिकोण है
" विभागश:।" प्लेटो के दार्शनिक विचार गीता से इस क्षेत्र में पूर्ण मञ्जस्य रखते हैं। अतः दोनों विचारों के समन्वय पर हम यह कह सकते हैं, "शिक्षा ऐसी हो जिसके द्वारा व्यक्ति केवल धन व्यय करके ही सम्मान प्राप्त करने का इच्छुक न बने।"

३. गीता समाज एवं व्यक्ति में एक दूसरे के प्रति विद्रोही स्थापित नहीं

रखते, वह समाज का उत्तरदायित्व व्यक्ति के ऊपर मानती है। व्यक्ति जैसे ही आत्मिक ज्ञान में पूर्णता प्राप्त कर लेता है और वह समाज से अलग हो जाता है। क्योंकि व्यक्ति समाज का सहारा अपने गुणों को प्रदर्शित करने के लिए ही तो लेता जाता है और समाज सुचारित्रिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों से पूर्ण व्यक्तियों के द्वारा ही तो बनता है। इसी संदर्भ में कुछ एक उद्देश्य प्रस्तुत हैं—

(अ) चूंकि व्यक्ति भौतिक जगत में जन्मा है। अतः इस बात का ध्यान रखते हुए कर्तव्यों का पालन करें।

(ब) कर्तव्य समाज के लिए न होकर व्यक्तियों के लिए हो।

(स) आध्यात्मिक विकास के लिए नैतिक क्रियाओं को करने में प्रोत्साहन दिया जाय।

(द) समस्त क्रियाएँ बिना किसी फल की इच्छा के हों।

ऐसी ही क्रियाएँ ईश्वर को भी मान्य होती हैं।

कार्य परिमिति

जो व्यक्ति ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक हों उनके लिए यह आवश्यक होगा कि प्रकृति को पहले सामान्य स्तर पर जाने, तदोपरांत उच्च स्तरीय ज्ञान की इच्छा प्रगट करें। ज्ञान प्राप्त करने वाले जिज्ञासुओं के लिए कुछ एक नियम स्थापित किए गये हैं—

१. ज्ञान किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देना चाहिए, जिसका वह इच्छुक न हो और तैयार न हो।

२. जिज्ञासुओं की रुचि एवं उनकी क्षमता का अंकन बहुत आवश्यक है।

३. कोई भी बात किसी भी समय किसी से बिना सोचे समझे नहीं कहनी चाहिए। यदि उपयुक्त व्यक्ति मिले तो अवश्य बतानी चाहिए। (गीता में प्रतिपादित उपर्युक्त नियम वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बहुचर्चित 'व्यक्तिगत विभेद' ही है)।

४. अधिकांश ऐसे व्यक्ति भी होंगे जो ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक नहीं होते। ऐसे समस्त व्यक्तियों के लिए गीता का संदेश है कि स्वयं को कार्य-कौशल द्वारा उन्नत करो ताकि एक ओर जीवन सुखी बने तथा दूसरी ओर समाज की भलाई।

५. समस्त कार्य ईश्वर को एक समान प्रिय होते हैं यदि उन्हें भक्ति एवं अलगाव से प्रस्तुत किया जाय।

उपर्युक्त नियमो की कार्य परिमिति व्यक्ति स्वयं करके देखे, उसे ज्ञात हो जायेगा कि वर्तमान युग मे संत्रस्तता क्लेष, वैमनस्य, क्रोध, दुःख एवं

ईर्ष्या आदि का कारण कोई और नहीं वह स्वयं ही है। गीता मनःस्तर को परिवर्तित कराने में कितना विलक्षण योग-दान देती है, यह शिक्षा जगत के विचारकों के लिये एक आदर्श होना चाहिए। वर्तमान-असंतोषी छात्र समुदाय एवं असमायोजित अध्यापकों के सुधारार्थ कितनी ही गोष्ठियाँ होती हैं, सुझाव दिये जाते हैं, परन्तु लागू एक नहीं होता। हम सब छात्र एवं अध्यापकों को ऊपर-ऊपर से तो ठीक करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु यह नहीं सोचते उनके अन्दर भी बहुत कुछ बिगड़ चुका है और उसे सुधारे विना यह ऊपरी उपचार इसीलिए लाभकारी नहीं होता।

गीता का छात्र-अध्यापक सम्बन्ध

हम बहुत समय से यह सुनते आये हैं कि छात्र एवं अध्यापक में घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए। परन्तु आज के शिक्षा जगत में एक दूसरे को उखाड़ने में सम्बन्ध की घनिष्ठता है। छात्र अध्यापक को श्रद्धा से नहीं देखता, अध्यापक छात्र को प्यार नहीं देता, अपने पुत्र के समान नहीं मानता। यह इस जगत का उपहास है। गीता इस सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने के लिये कुछ सुझाव देती है—

१. यदि अध्यापक प्रभावकारी ढंग से बालक को शिक्षित करना चाहे, वास्तविक रूप में उसे कुछ सिखाने की कल्पना करे तथा शिक्षार्थी के व्यक्तित्व को आदर से देखे तो ऐसा प्रतीत होगा कि सीखने एवं सिखाने की क्रियाएँ उपयुक्त चल रही हैं।

२. वास्तविक रूप में शिक्षा प्रक्रिया यदि चलती होगी तो छात्र में अपने अध्यापक के प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न होगी, उस पर पूर्ण विश्वास होगा, छात्र अपने अध्यापक के क्षणिक इशारे पर कठिन से कठिन कार्य करने के लिए सदैव तैयार रहेगा।

३. अध्यापक हो तो श्रीकृष्ण के समान। यह ठीक है कि सभी तो श्रीकृष्ण नहीं वन सकते परन्तु अध्यापक अपने "विषय का पूर्ण ज्ञाता, शिक्षार्थी की क्षमता को आंकने वाला, इतना ज्ञान देने वाला हो, जिसे चारित्रिक दृष्टि से अनुकरणीय शिक्षार्थी ग्राह्य कर सकें, शिक्षार्थी की कठिनाईयों को सहानुभूति ढंग से हल करने वाला हो, मार्ग से विहीन होने पर मार्ग दिखाने वाला हो। (२/११)

४. दूसरी ओर छात्र में भी ऐसी उत्कट इच्छा होनी चाहिए कि वह कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। उसे अपने अध्यापक की योग्यता एवं क्षमता पर विश्वास हो। अपनी कठिनाइयों को अध्यापक के समक्ष बिना झिझक रख सके। शंकाओं के समाधान हेतु अग्रसर रहे। अध्यापक को इस बात से

सन्तुष्ट करना चाहे कि उसे ज्ञान से प्रेम है। खोज एवं परिप्रश्नों का हल सेवा भाव से ढूँढे।

परन्तु इतने सब आदर्शों की चर्चा का परिणाम उस समय तक दृष्टिगत नहीं होगा जब तक कि अध्यापक जो अकस्मात् इस क्षेत्र में आ चुके हैं, उन्हे शिक्षा, शिक्षण एवं छात्र मे अनुराग पैदा न होगा। गीता मे मनोवैज्ञानिक ढंग की विभिन्न शिक्षण विधियों का उल्लेख कितने ही स्थलों पर आया है।

गीता की उत्कृष्ट शिक्षण विधियाँ।

श्री कृष्ण जैसे योग्य अध्यापक ने अर्जुन को उसकी आवश्यकता एवं योग्यता के अनुरूप शिक्षा देने में विभिन्न विधियो का प्रयोग किया था। इसमें प्रश्नोत्तर विधी प्रमुख थी, जिसे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली भी प्रमुख रूप से मान्यता देती है। अर्जुन के प्रश्न उसके अन्तः से स्पंदित हुए, उसकी आवश्यकता के अनुरूप निकलते थे। उनका निवारण श्री कृष्ण ने इस ढंग से सूझ-बूझ के साथ किया, जिसका उत्तर उस प्रश्न की पृष्ठभूमि मे ही मिल सके, जिससे यदि आगे कोई ऐसी ही उपस्थिति हो तो उसे सुलझाने की योग्यता उसमें आजाय। वर्तमान शिक्षण प्रणाली में 'व्यावसायिक निर्देशन' का प्रमुख उद्देश्य भी यही है। एक के बाद एक स्तर आगे ज्ञान के पथ की बढते जाना गीता मे दृष्टव्य है। अतः आज का अध्यापक निम्नांकित शिक्षण विधियों पर ध्यान दें—

१. प्रश्नोत्तर विधि।

२. अध्यापक द्वारा प्रश्नों का सूझ-बूझ के साथ निवारण ताकि आगे आने वाले प्रश्नों का हल छात्र स्वयं ढूढ़ें।

३. शनैः शनैः एक स्तर से दूसरे स्तर पर ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना।

४. सिद्धान्तों का गठन एवं प्रयोग, जीवन के वास्तविक अनुभवो से सारगर्भित उदाहरण एवं सत्य-स्थापन।

५. जो कुछ भी ज्ञान दिया गया है वह सब विश्वरूप है, ऐसी परिकल्पना को सिद्ध करने का प्रयास।

६. सुखद वातावरण की सृष्टि करते हुए जो कुछ भी अध्यापक छात्र को दे रहा है या छात्र ग्रहण कर रहा है, वह थोपे जाने वाला न होकर वास्तविक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता सब दृष्टिकोणो से व्यक्ति के आत्मज्ञान को अधिक मान्यता देती है। आत्मा को जानने वाले, परमात्मा के साथ एक्य स्थापित करने वाले ज्ञानी को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। वह स्थित प्रज्ञ हो सकता है, भक्त हो सकता है। भिन्न-भिन्न समाजों के व्यवहार

किये जाने पर भी बात एक ही है। ऐसे व्यक्ति की विशेषता यह होगी कि वह निःस्वार्थ प्रेमी, दयालु, अहंकार से रहित होगा, वह दुःख-सुख में समशांत चित्त व क्षमावान होगा। अतः क्यों न शिक्षा जगत ऐसे आदर्श व्यक्ति का चित्र अपने सन्मुख रखकर, बालक में परिवर्तन लाने का प्रयास करे। हम यदि यह भी मान लें कि प्रत्येक बालक इन समस्त आदर्शों के अनुरूप नहीं ढाला जा सकेगा तो भी क्या हानि, ध्येय तो ऊँचा ही रहना चाहिए, बहुत सम्भव है हमारी वे सब समस्याएँ सुलझ जायँ जिसके लिए शिक्षा योजनाएँ विविध उद्योग करके भी सफल नहीं हो पाती हैं।

गीता का ज्ञान पुण्य सलिला गंगा के जल के समान पावन-पवित्र तथा कलिकल्मनाशक है, जिसमें स्नान कर कौन मनुष्य विधूत पाप नहीं हो जाता? गीता-कल्पद्रुम की शीतल छाया का आश्रय लेने पर किसकी मनोवांछा सफल नहीं होती? गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः?

(गीता महात्म्य)

••

"घूला कीर बाबा"

• गोपालकृष्ण जिंदल

सैंतीस पोते—पोतियों, बाईस नाती—नातिने, छह बेटे और पाँच बेटियों के भरे-पूरे परिवार को वट-वृक्ष की नाईं शीतल छाया देने वाला घूला कीर बाबा नब्बासी बसंतों का पराग पीकर आज भी इतना कार्य करता है, जिसके करने में एक पच्चीस वर्ष के नौजवान के चोटी का पसीना पैरों में उतरने लग जाय। पाँच फुट ग्यारह इंच की ताम्रवर्ण छरहरी देह को लिए जब वह अपने घोड़े पर बैठकर नदी की ओर या खरबूजे मतीरे, ककड़ियां, प्याज लेकर शहर की ओर जाता है, तो कौन कह सकता है कि वह ७२ वर्ष की उम्र के बेटे का बाप है। घोड़े को प्यार से थपथपाकर जब वह तड़ित वेग से उस पर सवार होता है, तो वह दृश्य वस्तुतः अलौकिक होता है। बेटे—बहुओं के बीच हास्य की किलकारियां भरते हुए घूला कीर तब अपने घोड़े को (जिसे वह प्यार से 'चेतक' कहकर पुकारता है) कुछ संकेत करता है और देखते २ घोड़ा सरपट भागता हुआ नदी की तराई में खो जाता है।

घूला कीर निरक्षर भट्टाचार्य है। काला अक्षर उसके लिए भैंस बराबर है। यह आजतक कभी पाठशाला नहीं गया और तो और उसने रेलगाड़ी तक नहीं देखी, किंतु जीवन की पाठशाला में उसने बहुत कुछ पढ़ा और समझा है और यही कारण है कि न केवल वह एक लम्बे-चौड़े परिवार का भरण-पोषण ही कर सका है, अपितु कुटुम्ब के सदस्यों को प्यार की एक अनोखी रज्जु से बांधे भी हुए है जिसे चाहकर भी कोई सदस्य तोड़ने की हिमाकत नहीं कर सकता।

घूला कीर सदैव मुस्कराता है। गम की घटायें लोगों ने उसके आननाकाश पर कभी नहीं देखी। उस समय भी नहीं जब अपने एक जवान बेटे की अर्थी में उसे कंधा लगाना पड़ा था। 'जिन्दगी जिंदादिली का नाम है' इस

उक्ति के अनुसार वह जीवन में आगे बढ़ा है। हताशा और निराशा के गर्त में उसने अपने को कभी नहीं गिरने दिया और यही कारण है कि आज भी उसके मन-कुंज के आंगन में खुशियों के पौधे लहलहे हैं, जिन डालियों की कलियां चटकती और महकती रहती है।

शक्तिहीन हुई धमनियों में ही निराशा की बाढ़ उठा करती है, मौत की उदास काली छाया भी ऐसे इंसान में ही मंडराया करती है। निराशा के बवंडर में भी जो स्थिर रहा, वही जिन्दगी को सही जीता है। इस दृष्टि से देखें तो मानना पड़ेगा कि बूला कीर ने आपद-विपदाओं का सदैव डटकर सामना किया है, इनको एक चमत्कार और चेलेंज के रूप में उसने चुना है और उनका प्रत्युत्तर भी सीना ठोककर एक मर्द की तरह दिया है। निराशा के आगे उसने कभी घुटने नहीं टेके और जीवन-संग्राम में उसने कभी सफेद झण्डा दिखाकर आत्म-समर्पण नहीं किया। पुराणों में वर्णित जरा-जीर्ण च्यवन ऋषि ने अश्विनी कुमारों के घर से नवयौवन पाया था और बूला कीर के लिए आशा, उल्लास और उत्साह ही अक्षय यौवन के दाता अश्विनीकुमार है। बिना आशा के जिन्दगी की वीणा बिना तारों की है, बूला कीर ने जिंदगी के तारों को न केवल सजाया, बल्कि उन्हें छेड़कर एक ऐसी मीठी और मादक रागिनी उत्पन्न कर ली है, जिससे उसका सारा जीवन गमक उठा है। उसकी स्वर-लहरी से कुटुम्ब के सदस्य झूम उठे हैं, सच मानिये उसके परिवार के हर सदस्य का सजीव व्यक्तित्व आशा के मनोहर संगीत पर थिरक उठा है।

तारों की शीतल छाया में बूला कीर बिस्तर त्याग देता है और तब नदी-तीर जाकर शौच एवं स्नान से निवृत्त हो प्राची के पट पर ऊषा द्वारा अरुणिम चित्र के कढ़ने के पूर्व ही घर लौट आता है। व्यर्थ बैठना उसे नहीं आता। कुछ न कुछ करते रहने में उसे आनन्द आता है। वह कभी अनाज साफ करती अपनी पत्नी के पास बैठकर उसे मदद करने लगेगा, तो कभी झाडू लेकर मकान में एक हाथ मार देगा या फिर दालान के तिनके-पत्थरों को उठा-उठाकर एक तगारी में भर देगा या और कुछ नहीं तो घर के सामान को ही व्यवस्थित ढंग से रखना प्रारम्भ कर देगा। गरज यह है कि उसे आज तक किसी ने कभी चुप बैठे नहीं देखा। पृथ्वी, आकाश, वायु आदि पंच तत्वों की नाईं वह सदैव क्रियाशील रहा है और इसी में उसने जिन्दगी की बहार देखी है। अपने बेटों को भी वह कुछ न कुछ करते रहने के लिए प्रेरित करता रहता है। वह नियम से अपने खेतों और बाड़ियों की देखभाल करता है। इससे एक ओर जहाँ दुश्मनों का दाव नहीं लगता, वहाँ दूसरी ओर बेटे-पोतों को भी सदैव कार्य-व्यस्त एवं चौकन्ना रहना पड़ता है।

वह घुटनों ऊपर तक की धोती बांधता है, कुर्त्ता, बंडी या बख्तरी वह कभी नहीं पहनता। गांधीजी की तरह देश की दरिद्रता से द्रवित होकर उसने यह संकल्प नहीं लिया वरन् एक संस्कार, एक आदतवश वह ऐसा करता है। तीज-त्योंहार पर कीर-कौम में मद्यपान का सेवन निषेध नहीं, किन्तु धूला का घर अपवाद है। वह जिस गाँव मे रहता है, वहाँ सौ पीछे नब्बे घरों में गुड़ की शराब चुआई जाती है। इस काम को लोगों ने कमाई का एक शानदार जरिया बना रखा है, किंतु धूला कीर ऐसे हथकण्डों से कोसों दूर है। आडम्बर युक्त जीवन से उसे अरुचि है। ऋण लेकर घी पीने मे उसे विश्वास नहीं। अपनी गुदड़ी के मुताबिक ही पैर पसारने का वह आदी है।

वह न स्वयं धूम्रपान करता है और न धूम्रपान करने वालो के पास बैठता है। दरअसल बीड़ी-सिगरेट के धुंए से उसका जी मिचलाने लगता है। उसे यदि किसी चीज का शौक है तो वह है छाछ। वह सदैव छाछ के घूंटों के बीच जिया है। इससे एक ओर उसे गैया-मैया की सेवा करने का अवसर मिल जाता है, वहीं दूसरी ओर साग-भाजी, दाल-दफाल के झंझटों से मुक्ति भी। उसके आँगन से सदैव ऊषा वेला मे दहीबिलोने की घुमड़-घुमड़ की आवाज सुनी जा सकती है। हाथ की चक्की का आटा उसे इतना प्रिय है कि यदि कभी-कभार वह चुक जाय और घर की बहुएँ आलस्यवश चक्की के पिसे आटे की रोटी बनाने लग जाय तो धूला तत्काल पीसने बैठ जाता है। छाछ भी अधिकतर वह स्वयं ही बिलौता है। इन दोनो कामों में वह सदैव अपनी धर्मपत्नी की सहायता करता आया है। अब तो इन कामों को करने के लिए बेटे-बहुओं की पूरी बटालियन है किंतु जब ये नहीं थे, तब भी धूला इनके करने मे कभी हिचकिचाया, शर्माया नहीं। 'घर के कामों में कोई शर्म नहीं, शर्म तो चोरी, अन्याय, छल-कपट और किसी का जी जलाने मे आनी चाहिये'—उसकी दिली मान्यता है—

'अपने उर के घावों को
कभी न इस जग को दिखलाना
यहाँ सिसकना महापाप है,
गम को हँस कर पी जाना

ये पंक्तियाँ उसके जीवन मे रच-पच गयी है। हलाहल पीकर भी धूला सदैव निर्द्वंद्व रहा, रोनी, बिसूरती शक्लों को देखकर वह तत्काल हास्यात्मक लहजे मे पूछ बैठता है—'अरे कल्याण, धरती तो अपनी जगह पर ही है न बेटा ?

संसार की समस्त परिस्थितियाँ अपने अनुकूल बन जाय, जो हम चाहते हों वह प्राप्त हो जायं। घूला कीर ने इसकी कभी आकांक्षा नहीं की। उसे तो ईश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा मिलाकर, संसार को नाट्यशाला मानकर अपना अभिनय उत्साहपूर्वक करते रहने में ही प्रसन्नतानुभूति होती है। 'दुनिया के बिखरे हुए काँटे बीने नहीं जा सकते, किन्तु अपने पैरों में जूते पहनकर उनसे बचाव हो सकता है।' ऐसी मान्यता में आस्था रखने वाला बाबा कीर आज भी हमारे बीच विद्यमान है और दिन-रात हँसी-मज़ाक की फुलझड़ियों से जीवन की सब्जी को जिंदादिली के छौंक-बघार दे जायकेदार बनाये हुए है।

••

बिहारी की बहुज्ञता

• कञ्चन लता

कवि की बहुज्ञता से तात्पर्य उसके साहित्यज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों की जानकारी से भी है, इसलिये मम्मटाचार्य ने कवि की अभिज्ञता के लिये काव्यानुशीलन के साथ शास्त्र और लोक का अध्ययन एवम् निरीक्षण भी आवश्यक माना है—

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥"

काव्य प्रकाश—प्रथम उल्लास

सार यह है कि 'लोकाध्ययन' करने पर कवि लोक विरुद्ध उक्तियों के दोषों से तो बच ही जाता है, साथ ही साथ 'लोक' से अपने काव्य की सामग्री का भी चयन करता है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि कवि ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि का विशेष अध्ययन कर उन शास्त्रों की ऐसी बातों को काव्य का विषय बनावे जो साधारणतया सुबोध न हो। अनेक कवियों ने अपने ऐसे 'लोकज्ञान' का दुरुपयोग भी किया है। ऐसा करने से थोड़े पाण्डित्य का प्रदर्शन भले हो, काव्य की सरसता का लोप हो जाता है।

कविवर बिहारीलाल ने लोक का अध्ययन निकट से किया था। राजदरबार में रहने के कारण लोक अध्ययन की बातों की जानकारी के अनेक अवसर उन्हें मिलते थे। आयुर्वेद, ज्योतिष, दर्शन, आदि की अनेक बातों की साधारण जानकारी उन्हें उपलब्ध थी। काव्य के शास्त्रीय पक्ष एवम् लोकपक्ष दोनों का ज्ञान बिहारीलाल ने किया था। इस लौकिक ज्ञान की कुछ पूंजी तो उन्हें वंश परंपरा से प्राप्त हुई थी और शेष उनकी 'अपनी कमाई' थी।

सतसई के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बिहारीलाल मानवमन के कुशल पारखी थे। मानवीय क्रिया—व्यापारों का उन्होंने 'आँखो देखा' वर्णन

प्रस्तुत किया है। भाषा की 'सुघराई' और उनकी समास प्रधान शैली के अनुरूप छन्द—दोहे में उन्होंने वास्तव में 'दीरघ' अर्थों को वड़े ढंग से संजोकर रख दिया है। चारू चित्रोपमता वाग्वैचित्र्य के तो वे बेजोड़ कवि हैं।

विहारी की वहुज्ञता का निम्नलिखित शीर्षकों में अध्ययन करना अधिक समीचीन होगा—

१. काव्यों के शास्त्रीय पक्ष की अभिज्ञता—

(अ) अलंकार योजना और अप्रस्तुत विधान
(आ) रूप चित्रण और अनुभाव विधान
(इ) प्रेम का संयोग पक्ष
(ई) विप्रलंभ एवम् विरह वर्णन
(उ) भक्ति भावना
(ऊ) वाग्वैदग्ध्य और उक्ति वैचित्र्य

२. काव्य के लोकाध्ययन पक्ष की अभिज्ञता—

(i) गणित
(ii) वैद्यक
(iii) ज्योतिष
(iv) सम्प्रदायों का ज्ञान
(v) नीति और लोक व्यवहार का ज्ञान

विहारी अपने युग की परम्परा से पूर्णतः प्रभावित थे। रीतिकालीन विशिष्टताओं के वे 'आदर्श' रहे—

नखशिख, नायिकाभेद, ऋतुवर्णन, रस-अलंकार और श्रृंगार के संयोग और वियोग सभी क्षेत्रों में विहारी की धाक रही। काव्य के तत्कालीन शास्त्रीयपक्ष से वे पूर्णतः अभिज्ञ थे।

(अ) अलंकार योजना और अप्रस्तुत विधान—

महर्षि वेदव्यास के कथनानुसार—

"अर्थालंकार रहिता विधवेव सरस्वती"

अग्निपुराण

काव्य में अलंकारों का स्थान अनिवार्य है।

विहारीलाल ने अपने काव्य को अलंकारों से खूब सजाया है—यमक का जादू देखिये—

तो पर वारो उरवसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर वसी, ह्वै उर वसी समान॥

तथा

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैन ।
हरिनीके नैनान ते, हरिनी के ये नैन ।।

लगता है, जैसे अलंकारों का प्रयोग कवि के बांये हाथ का खेल है ।
प्रस्तुत दोहों में शब्दश्लेप का कैसा भव्य प्रयोग किया है, कवि श्रेष्ठ ने—

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर ।
को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ।।

तथा

अजौं तर्यो ना ही रह्यो, श्रुति सेवत इकरंग ।
नाक बास बेसरि लियो, बसि मुकुतन के संग ।

अलंकार विधान की स्वाभाविकता मे अनुप्रास के ये उद्धरण देखिये—

रस सिंगार मंजनु किये, कंजनु भंजन दैनु ।
अंजन रंजन हूं बिना, खंजनु गंजनु नैन ।।

तथा

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधुनीरु ।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर-कुंज समीर ।।

लगता है, जैसे घंठावली साफ सुनाई दे रही है । बिहारी का असंगति अलंकार वाला निम्न दोहा तो सर्वाधिक प्रचलित है —

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति ।।

इस प्रकार के अलंकार विधान से सम्पूर्ण सतसई सज्जित है ।

अब अप्रस्तुत विधान पर विचार कीजिये—किसी प्रस्तुत या उपमेय के लिये जो अप्रस्तुत या उपमान लाया जाता है, उसमे कभी-कभी केवल सादृश्य ही होता है, पर उत्तम अप्रस्तुत विधान में सादृश्य के साथ-साथ साधर्म्य भी होता है । स्वरूपोत्प्रेक्षा का निम्न उदाहरण बड़ा प्रचलित है—

सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलौने गात ।
मनो नील मनि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात ।।

तथा वस्तूत्प्रेक्षा के लिये देखियेः—

चमचमात चंचल नयन, बिच घूंघट पट झीन ।
मानहु सुर सरिता विमल, जल उछरत जुग मीन ।।

जहाँ रूप ग्रहण मे सादृश्य की प्रधानता रखी है, वहाँ बिहारी ने उपमा अलंकार का ही प्रयोग किया है यथा—

छिप्यौ छबीलो मुँह लसै, नीलै अंचर चीर ।
मनो कलानिधि झलमलै, कालिंदी के नीर ।।

विहारी ने उपमान पक्ष के लिये परंपरा से प्रसिद्ध एवम् प्रचलित उपमानों के अतिरिक्त समान जगत से भी उपमानों का विधान करने का प्रयत्न किया है। विरोधमूलक अलंकारों जैसे-विभावना, असंगीत, विशेषोक्ति आदि भी विहारी ने अपनाये हैं, और अन्योक्ति भी—

स्वारथ सुकृत न स्रम वृथा, देखु विहंग विचारि।
वाज पराये पानि पर, तू पंछीनु न मारि॥

तात्पर्य यह है कि विहारी ने अलंकार शास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था, वे प्रवीण थे। उनकी यह निपुणता उनके शास्त्रीय ज्ञान—अनुशीलन और अभ्यास का स्पष्ट प्रमाण है।

(अ) रूप चित्रण और अनुभाव विधान—

रस-सिद्ध कवि शब्दों का नाम न लेकर अनुभावों (आश्रय की चेष्टाओं) के विधान के द्वारा उन भावों को व्यक्त किया करते हैं। विहारी ने इस वात का पूरा ध्यान रखा है। शुद्ध काव्य में और विशेषतया मुक्तकों में विना चित्रण और अनुभावों की योजना के काम नहीं चल सकता।

अनुभाव सदाभाव प्रेरित होते हैं—साहित्य में इन्हें भाव कहा गया है।

कर समेटि कच भुज उलटि, खरो सीस-पटु डारि।
काको मन बाँधेन ये, जूरो बाँधनिहारि॥

यह नायिका की मुद्राओं का सहज धर्म है, किन्तु इसमें नायिका की ओर से आकर्षण का संकेत नहीं। कुछ सज्जन बाँधनिहारि को बाँध, निहारि करके पठान्तर करते हैं। ऐसी दशा में उक्त दोहा विलास भाव का अच्छा उदाहरण बन जाता है, इसी प्रकार—

रहौ, गुहीं वेनी लखे, गुहिवे के त्यौनार।
लागे नीर चुचान जे, नीठि सुखाए वार॥

नायिका की चोटी गूंथने में नायक के हाथ पसीज गये और केश पुनः गीले हो गये। नायिका गर्व पूर्ण कहती है कि—"लो फिर गीले कर दिये वाल।"

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत है, नैनन ही सव वात॥

उक्त दोहे में अभिलाषा, गर्व, हर्ष, अमर्ष, आदि कई भाव एक साथ प्रकट हो रहे हैं।

वतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे, भौंहनि हँसे, देन कहै—नट जाई॥

बिहारी ने विलास भाव का चित्रण खूब किया है। इस उद्धरण के अनुसार—

नासा मोरि, नचाइ जे करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकति हिये, गड़ी कँटीली भौंह॥

तथा

कंज नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच-अंगुरी बिच दीठि दै, चितवति नंद कुमार॥

अब अनुभावों की योजना का विचार कीजिये—अनुभावों की योजना भाव निरूपण और भाव की अवस्था का चित्र व्यक्त करने में सहायक होती है।

श्रीकृष्ण ने राधिका की गायों को झुंड में मिलने से रोका, किन्तु राधिका ने हँसकर उनको मिला दिया। दोनों पक्षों के प्रेम भाव को व्यक्त करने के लिये ये अनुभाव कैसे सुन्दर बन पड़े हैं—

उन हरकी हँसी कै इतै, इन सौंपी मुसुकाइ।
नैन मिले मन मिलि गये, दोऊ मिलवत गाइ॥

रूप वर्णन में भी बिहारी ने चतुराई दिखाई है। यहाँ वर्णन या तो उद्दीपन के रूप में है अथवा केवल शृंगार के वर्णन के निमित्त।

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल॥

तथा

कहलाने एकत बसत अहि मयूर—मृग—बाघ।
जगत तपोवन सौ कियो दीरघ—दाघ—निदाघ॥

बिहारी की कविता में जैसा सच्चा विधान भावो एवम् अनुभावों का दिखाई पड़ता है, वैसा हिन्दी के अन्य कवियो मे कम मिलता है।

(ड) प्रेम का संयोग पक्ष—

प्रेम का क्षेत्र बहुत विस्तृत माना गया है। शृंगार के दो पक्ष—संयोग और वियोग—हो जाने के कारण मानव हृदय की अधिकाधिक वृत्तियाँ इसमें संजोई जा सकती हैं।

प्रेम के संयोग पक्ष मे कविगण अधिकांश आलंबन के रूप का वर्णन और उसके प्रभाव का कथन ही करते रहे हैं। कुछ पारस्परिक कथन, कुछ हास्य-विनोद, कुछ क्रिड़ायें, सभी का चित्रण संयोग पक्ष मे आता है और बिहारी लाल ने सभी को अपनी लेखनी का पारस-स्पर्श दिया है।

प्रिय की सभी वस्तुएँ प्रिय होती हैं और प्रेम का आलंबन बन जाती है। इसका कैसा मार्मिक चित्रण है—

उड़ति गुड़ी लखि लालकी, अंगना अंगना मांहि।
बोरी सी दौरि फिरत, छुवति छबीली छांह ॥

प्रिय की पतंग ही नहीं उसकी छाया तक प्रेम का आलंबन बन गई है।

प्रेमी प्रिय के साथ के लिये कष्ट की भी परवाह नहीं करता। नायिका के पैर में कांटा गड़ गया—उसकी पीड़ा वह भूल गई क्योंकि नायक आ गया और उसका कांटा निकालने लगा।

इहि कांटै मो पाइ गड़ि लीनी मरति जिवाइ।
प्रीति जनावत भीति सौं, मीत जु काढ्यौ आइ ॥

सोने का बहाना करती नायिका का मुख प्रिय देख रहा है। नायक 'बहाना' समझकर अब रह न सका तो प्रिया के नैन भी खुल गये—

मुख उघारि पिउ लखि रहत, रह्यो न गो निसि-सैन।
फरके ओठ, उठे पुलक, गए उघरि जुरि नैन ॥

इस प्रकार की 'प्रेम लीलाओं' के न जाने कितने चित्रणों का साक्षात् वर्णन विहारी ने किया है।

शृंगार के संयोग पक्ष पर विहारी ने जम कर लिखा है। इसमें नायिका भेद, नायकों, दूती व सखी के वर्णनों के अतिरिक्त ऋतुओं का वर्णन भी आ जाता है। वसंत का कैसा सुन्दर चित्रण है—

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी गंध।
ठौर ठौर झौरत झंपत, भौंर भौंर मधुअंध ॥

ग्रीष्म का विकराल रूप देखिये—

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन मांह।
देखि दुपहरी जेठ की, छाहौ चाहति छांह ॥

पावस के इस 'अंधियार' का भी ठिकाना है कुछ—

पावस ऋतु अंधियार में, रह्यो भेद नहि आनु।
राति धौस जान्यो परतु, लखि चकई चकवानु ॥

सौन्दर्य, दीप्ति, कोमलता, नदी तट चन्द्रिका, पवन, आदि का विस्तृत वर्णन कर विहारी ने शृंगार के संयोग पक्ष को खूब सजाया है।

(ई) विप्रलम्भ एवम् विरह वर्णन—

वियोग में प्रेम के प्रसार के लिये क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। वियोग में प्रेम की प्रवृति यहाँ तक बढ़ती है कि जड़ वस्तुएें भी वार्तालाप के लिये उपयुक्त हो जाती हैं।

बिहारी का विरह वर्णन उद्दात्मक है, किन्तु कहीं-कहीं स्वाभाविक वर्णन भी मिलता है—

करके मीड़ें कुसुम लौं, गई विरह कुम्हिलाइ।
सदा समीपिनि सखिनु हूँ, नीठि पिछानी जाइ॥

स्वाभाविक बात है कि जब कोई बीमार पड़ जाता है तो आस-पास के लोग भी उसे ठीक से नहीं पहिचान पाते। निम्न उक्तियों का 'तमाशा' देखिये—

आड़े दै आलेवसन, जाड़े हू की राति।
साहस करकै नेह वस, सखी सबैढिग जाति।

तथा

औंधाई सीसी सुलखि, विरह जरी बिललात।
बिजहो सूखि गुलाब गौ, छीटो छुयौ न गात॥

एक विरह जरी की उक्ति देखिये—

विरह जरी लखि जीगननु, कह्यौ न उहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी, बरसत आजु अंगार॥

पत्रिका भी नायिका के प्रेम का कितना बड़ा आलंबन बन जाती है, यह निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

करलै, चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुजभेंटि।
लहि पाति पिय की लखति, बाँचति धरतिसमेटि॥

इस प्रकार बिहारी ने प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करने में अपनी व्यापक अनुभूति और निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है।

(ड) भक्तिभावना—

कविता और भक्ति दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध हृदय से है-इसलिये भक्त कवियों की कविता अधिक लोगों के हृदय का रंजन कर सकने में समर्थ हुई है। ये भक्त कवि सभी प्रकार के मतवाद से अलग रहे हैं। बिहारी लाल के सम्बन्ध में भी उक्त कथन सत्य विदित होता है। वे निर्गुण-सगुण दोनों पर ही लेखनी उठाते हैं—इसी प्रकार राम व कृष्ण दोनों ही उनके इष्ट हैं—निम्न उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है—

निर्गुणः—

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तार न काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग-रंग भूपाल॥

सगुणः—

मोहू दीजे मोष, ज्यौं अनेक अधमनु दियो।
जो बाँधे ही तोषु, तो बाँधो अपने गुननु॥

कृष्णभक्ति:—

कोऊ कोरिक संग्रहो कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा, विपति विदारनहार ।।

रामभक्ति:—

वंधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराइ ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे विरद कहाइ ।।

प्रात: स्मरणीय भक्त कवि सूर और तुलसी ने जिस प्रकार अपने आपको पातकी, पतितन को टीकों दीन और पापी कहा है, वैसे ही बिहारीलाल के मनोभाव भी देखिये:—

कीजै, चित सोई तरे, जिहि पतितन के साथ ।
मेरे गुन-औगुन-गनन, गनौ न गोपी नाथ ।।

तथा

ज्यौं ह्वै हों त्यौ होऊगो, हौं हरि अपनी चाल ।
हठु न करौ अति कठिन है, मो तरिवो गुपाल ।।

विहारी ने कहीं-कहीं प्रसिद्ध दार्शनिक दृष्टांतों का भी प्रयोग किया है । देखिये :—

मैं समुझयो निरधार, यह जग काचौ काँच सौ ।
एकै रूप अपार, प्रतिविम्बित लखियतु जहाँ ।।

तथा

या भव पारावार कौ, उलंघिपार को जाइ ।
तिय छवि छाया ग्राहिनी, ग्रहै बीच ही आइ ।।

शुद्ध भक्त की भाँति विहारी की भी भगवान से यही प्रार्थना है कि:—

हरि कीजति बिनती यहै, तुमसौं बार हजार ।
जिहि तिह भाँति डरयौ रह्यौ, पर्‍यौ रहो दरबार ।।

कविवर विहारी लाल के भक्ति संबंधी उक्त विश्लेपण से स्पष्ट है कि उनकी कविता में सभी प्रकार की भावनायें मिलती हैं । शुष्क भक्ति की उक्तियाँ विहारी ने नहीं लिखी, वे उनके कवित्व से बराबर सरस होकर सामने आई हैं ।

(अ) वाग्वैदग्ध्य और उक्ति वैचित्र्य :—

कहा जाता है कि किसी कवि में वाग्वैदग्ध्य की जितनी अधिक शक्ति होगी, वह अपने कवित्व का निर्वाह उतना ही अधिक कर सकेगा । वाग्वैदग्ध्य से तात्पर्य है, वाणी की अभिव्यंजन-शक्ति से । इसी गुण के कारण लोग कह पड़ते हैं 'इसे फिर सुनाइये' ।

बिहारी में 'हृदयपक्ष' व 'कलापक्ष' दोनों प्रबल हैं। बिहारी में कलापक्ष के अन्तर्गत वाग्वैदग्ध्य बहुत अच्छा पाया जाता है—इसलिये उनकी कविता दोनों को मस्त कर देती है।

देखिये बिहारी का वाग्वैदग्ध्य कैसे अर्थयोजन और रचना की कसावट का काम एक साथ करता है—

सतसई का प्रथम दोहा ही लीजिये—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परें, स्याम हरित दुति होइ॥

'स्याम' और 'हरित दुति' किस प्रकार रंगों के अतिरिक्त 'प्रफुल्लता' और चमक को प्रदर्शित कर रहे हैं। दूसरा उदाहरण लीजिये—

ज्यौं ज्यौं प्यासोई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलौने रूप की, जु न चख-तृषा बुझाइ॥

रूप के पान से नेत्रों की तृषा शान्त नहीं होती—पीते जाते हैं और प्यास बढ़ती जाती है। सलोने शब्द का चमत्कार देखिये—स+लोना अर्थात् लवण-युक्त। सचमुच लवणयुक्त पदार्थों के सेवन से प्यास अधिक लगती है। और देखिये—

ललन सलौने अरु रहे, अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाइ देत दुःख, सूरन लौं मुँह लागि॥

यहाँ सूरन और नायक के लिये दुहरे अर्थ वाले शब्द सलौने, सनेह, कचाइ और मुँह लागि, मुँह लगना का प्रयोग कितना चामत्कारिक है। बिहारी के बहुत थोड़े दोहे ऐसे मिलेंगे, जहाँ यह व्यंजकता और संकेत न हो। इसी से बिहारी की काव्य-चातुरी और वचन-भंगिमा के सामर्थ्य का अनुभव किया जा सकता है।

अब उक्ति-वैचित्र्य की ओर आइये। उक्ति-वैचित्र्य से तात्पर्य दूर की कौड़ी लाने या आसमान की उड़ान से नहीं है। उक्ति-वैचित्र्य का अभिप्राय है, किसी बात को स्पष्ट करने की युक्ति से या किसी मुद्रा, रूप आदि को अपनी निरीक्षण शक्ति से निरूपित करने की सामर्थ्य से।

'वय सधि' को स्पष्ट करने के लिये बिहारीलाल ने कैसा मौजूं और उप-युक्त उपमान चुना है—'ताफता'—धूप छाँह नामका कपड़ा।

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग॥

इसी प्रकार मनमोहन के रूप में मन ऐसे मिल गया है, जैसे 'पानी में को लोनु' जिसे अब दूर करना असंभव है—

कीन्हे हू कोटिक जतन, अब कहि काढ़े कौनु ।
मो मन मोहन रूपु मिली, पानी में को लोनु ।।

उक्तियों की विदग्धता, वचनभंगिमा और वैचित्र्य ही विहारी का विहारीत्व है ।

२. काव्य के लोकाध्ययन पक्ष की अभिज्ञता—

विहारी के जीवन क्रम से स्पष्ट है कि उन्हें घूमने, सतसंग करने, और विद्वानों के वीच रहने के पर्याप्त अवसर मिले थे । अपनी 'मस्त' प्रकृति के कारण वे जीवन के सभी दृश्यों पर रूचि रखते थे । अत: लोक-व्यवहार, नीति और विभिन्न लोकाचार की वातों से उनका अनायास ही परिचय हो गया था । लोक व्यवहार के अन्यान्य विषयों से सम्वन्धित जानकारी उनके काव्य में विखरी पड़ी है । इसका यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिये कि वे हर विषय के पारंगत थे, पर इतना तो मानना ही होगा कि लोक-व्यवहार और लोक-विषयों पर भी कवि की दृष्टि पैनी थी, और अवसर मिलते ही अपने लोक-अध्ययन से उन्होंने अपनी उक्तियों को सज्जित किया है ।

ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान को ही लीजिये—प्रस्तुत दोहा यह स्पष्ट करता है कि इस विषय का उन्हें अच्छा ज्ञान था—

सनि कज्जल चख-झख-लगन उपज्यो सु दिन सनेहु ।
क्यों न नृपति ह्वै भोग वै, लहि सुदेसु सबु देहु ।।

इस दोहे में फलित ज्योतिष के इस फल का आधार लिया गया है कि तुला-धनु और मीन का शनि यदि लग्न स्थान में पड़े तो ऐसी कुंडली वाला राजा होता है अथवा राजा के वंश में जन्म लेता है । इसी प्रकार निम्न दोहा भी दर्शनीय है—

मंगल विन्दु सुरंगु, मुख ससि, केसरि-आड़ गुरु ।
इक नारि लहि संगु, रसमय किय लोचन जगत ।।

ज्योतिप का मत है कि चन्द्रमा, मंगल और साथ ही वृहस्पति यदि एक नाड़ी (वर्षा की) में स्थित हों तो वर्षा से पृथ्वी समुद्र वन जाय । अन्य उद्धरण हैं—

तिय तिथि तरुन किसोर वय, पुन्य काल सम दोनु ।
काहू पुन्यनु पाइयतु, वैस-संधि-संक्रोनु ।।

तथा

भाल लाल वेंदी ललन, आखत रहे विराजि ।
इन्दु कला कुज में वसी, मनो राहु भय भाजु ।।

गणित की अत्यन्त सामान्य बातें जो छोटा बच्चा भी जानता है–बिहारी के दोहों की सामग्री बनी है—

कहत सबै बेंदि दिये, आंक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदि दिये, अगनित बढ़त उदोत॥

तथा

कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़गो इतो उदोत।
बंक विकारी देत ज्यों, दाम रूपैया होत॥

उक्त दोहों के आधार पर यह कहना कि बिहारी गणितज्ञ थे, हास्यास्पद होगा, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि लोक-व्यवहार के ज्ञान का उन्होंने अपने काव्य में उपयोग किया है।

आयुर्वेदिक ज्ञान के विषय को भी बिहारी ने अपने दोहों मे छुआ है—

बहु धनु लै अहसानु कै, पारो देत सराहि।
बैद-वधू, हँसि भेद सों, रहो नाह मुँह चाहि॥

बिहारी को लोक-व्यवहार और लोक की रीति-नीति का भी बड़ा अच्छा ज्ञान था। निम्न दोहो को उक्त कथन की पुष्टि के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है—

जो चाहो चटक न घटे, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकनो चित्त॥
नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोई।
जेतो नीचो ह्वै चले, ते तो ऊँचो होई॥
बढ़त बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटे, बरु समूल कुम्हिलाइ॥
तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अन बूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग॥
इक भीजे चहलै परे, बूड़े बहे हजार।
कितो न औगुन जग करे, बै ने चढ़ती बार॥

इस प्रकार के उद्धरण सतसई मे खूब मिलेंगे।

सारांश यह है कि लोक-व्यवहार और लोक नीति-रीति सम्बन्धी बिहारी की अभिज्ञता को भी स्वीकार करना पड़ेगा।

बिहारी ने संस्कृत शास्त्र का अध्ययन किया था। रीति-शास्त्रों के वे पंडित थे। भाषा उनके भावों की चेरी बन गई है। अपनी विशद् जानकारी और योग्यता को जिस प्रकार कवि ने दोहों की गागर मे सागर के समान रस भर दिया है।

नये धर्म का प्रवर्त्तक

• भगवतीलाल व्यास

"एक सवाल है, सीधा सा मगर बहुत टेढ़ा भी। हम अपने पेशे (व्यवसाय) को क्या दें ? आप भी कहेंगे—वाह ! यह भी कोई सवाल हुआ ? हम अपने पेशे को क्या दें ? भई, कह तो दिया—हम अपने पेशे को रोज़ाना आठ घण्टे देते हैं। दबी जबान में सुनाई देता है—'मगर उसके बदले आप कुछ लेते भी तो हैं।' मेरे ये सवाल-दर-सवाल आपको पसन्द नहीं आयेंगे और आप मुँह फेर कर एक ओर चलने लगेंगे। मगर ऐसे कितने दिन चलेगा। वक्त आ गया है जब आपको मेरे सवाल पर सोचना चाहिये। आइये, क्यों न हम इस मसले पर अभी से सोचना आरंभ कर दें।"

यह है दो मित्रों की बातचीत का एक अंश। इसके बाद दोनों बातें करते-करते पार्क की एक कोलाहल शून्य बेंच पर आ बैठते हैं। अब दूसरा व्यक्ति, पहले व्यक्ति से जो किसी विभाग में सरकारी कर्मचारी है खुल कर बात कर सकता है।

दूसरा—हाँ तो भई 'अ' ! मेरा प्रश्न था कि क्या आप अपने पेशे को ऐसा कुछ दे रहे हैं, जिससे आपकी तथा आपके पेशे की उभय उन्नति की संभावनाएँ प्रकट होती हों ?

पहला—देखो यार, तुम जब देखो तब 'बोर' करने की बातें किया करते हो। कभी मौसम देखकर भी बात किया करो। देखो, आज मौसम कितना सुहावना है और जिस स्थान पर हम बैठे हैं, वह स्थान इस मौसम की पृष्ठभूमि में कितना मोहक दिखाई दे रहा है। यह सुन्दर कटी-छँटी दूब, ये क्यारियों में सजे तरह-तरह के फूल और देखो, वे संगमरमर में तराशी गई मूर्तियाँ कितनी ख़ूबसूरत लग रही हैं, जैसे किसी सभा में बिछाये गये हरे क़ालीन पर रखे गुलदस्तों को ज्यादा तरतीब से रखने आकाश मार्ग से परियाँ उतर रही हों।

दूसरा—वाह भई 'अ', मुझे आज ही मालूम हुआ कि तुम इतने जबर्दस्त प्रकृति प्रेमी भी हो। खैर चलो, तुम्हारी इस बात से मुझे अपनी चर्चा आगे बढ़ाने का एक शानदार मोड़ तो हाथ लगा।

पहला—(अपना वार खाली जाते देखकर हतप्रभ सा दूसरे व्यक्ति की ओर देखकर)—तो क्या ?

दूसरा—अभी-अभी जो कुछ तुमने कहा उसी संदर्भ मे मैं तुमसे पूछना चाहूँगा कि क्या यह ग़लीचे जैसी दूब, फूलदानो जैसी क्यारियाँ और सगमरमर के निर्जीव आवरण से झाँकते जीवन्त भाव उन्ही लोगों की देन है, जिन्होंने अपने व्यवसाय को गिनती के घन्टे दिये हैं और गिनती के सिक्के लिये हैं ?

पहला—नहीं, कभी नहीं जनाव……! यह कैसे हो सकता है। इसके पीछे तो शिल्पकारों की, वागवानों की और न जाने किन-किन की अथक साधना है। रात को रात, दिन को दिन, सर्दी को सर्दी, गर्मी को गर्मी और मूसलाधार वर्षा को कुछ भी नहीं मानने की प्रवृत्ति है।

दूसरा—(मूंछों में मुस्कराता हुआ) हाँ तो भाईजान—! अब आप मान गये हैं कि व्यवसाय को ऊँचा उठाने के लिये गिनती के घन्टे देना पर्याप्त नहीं होता। उसे सँवारने और उसे इस योग्य बनाने के लिये कि वह मौसम को याने वातावरण को अधिक सुन्दर बना सके, आवश्यकता होती है अथक परिश्रम की, मौन साधना, त्याग और निष्ठा की।

पहला—यह लो, फिर पीटने लगे तुम अपने आदर्शों का ढोल। भई, माफ करो ये आदर्शवादी बातें अब मुझे कोरी बकवास लगने लगी हैं क्योकि यथार्थ इससे कहीं अधिक तीखा और बदसूरत हो चला है। हाँ तो और कुछ या बस ! मैंने आज एक मित्र के साथ सिनेमा जाने का वादा कर रखा है।

दूसरा—(घड़ी देखता हुआ) घबराओ मत भाई 'अ', आज तुम इतने सस्ते नही छूटोगे। अभी तो सिनेमा मे काफ़ी देर है।

तुम्हें तो मालूम ही है कि आज हमारा देश अनेक समस्याओ से घिरा हुआ है और सामान्य स्थिति मे हो तब भी हमें चाहिये कि अपने व्यवसाय की उन्नति के लिये वह सब कुछ करें, जिससे सामान्य से सामान्य व्यवसाय भी समाज की दृष्टि में आदरास्पद बन जाय। द्वितीय महायुद्ध की लपटों मे जिन देशों का सर्वस्व स्वाहा हो गया था आज हम उनकी प्रगति को देखें तो हमें दाँतो तले अंगुलि दबानी पड़ेगी। क्या तुमने कभी सोचा है कि ऐसी कौनसी शक्ति थी, जिसने उन नष्ट-

प्राय देशों को, उस ध्वस्त समाज को न केवल पुनर्जीवित किया बल्कि उन्हें आधुनिक सभ्यता की घुड़दौड़ में आगे लाकर खड़ा किया ? मुझसे पूछो तो मैं यही कहूंगा कि यह केवल वहाँ के कर्मचारियों की अपने-अपने कर्म के प्रति अटूट निष्ठा थी।

पहला—मगर क्या सारे देश का ठेका हमने ले रखा है ? हम तो वेतन भोगी कर्मचारी हैं, काम कितना भी करें, दाम तो उतने ही मिलेंगे जितने मिलने हैं।

दूसरा—फिर वही बात। दरअसल यह हमारी सबसे बड़ी भूल है। हम यह भूल जाते हैं कि हमारा अपने मालिक या 'बॉस' के अलावा देश की मिट्टी के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व है। युद्ध के दिनों में हम सुनते हैं कि अनेक लोग अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश की लाज बचा लेते हैं। प्राणों की बाजी लगाने वालों में बड़ी तन्ख्वाह पाने वाले अधिकारी ही नहीं होते। तुमसे भी कम वेतन पाने वाले साधारण सिपाही भी होते हैं। क्या उन्हें अपनी जान की क़ीमत उन गिने-चुने करेन्सी नोटों में मिल जाती है, जो वे प्रतिमाह वेतन के रूप में लेते हैं ? कदापि नहीं।

पहला—तुम्हारी तो अक्ल सठिया गई है। हर समय देश की बात, युद्ध की बात, आदर्श की बात। जैसे बात करने को इन तीन चीज़ों से हट कर कुछ रह ही नहीं गया है। अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो मुझे भय है कि कुछ दिनों में तुम्हें किसी पागलखाने की शरण लेनी पड़ेगी।

दूसरा—ठीक है, मेरे दोस्त ! ठीक है। इस प्रकार की बातें करने वालों को हर युग में 'सठियाई अक्ल वालों' के विशेषण से विभूषित किया गया है। विश्व की किसी भी भूमि का उदाहरण लो, वहाँ के शीर्षस्थ वैज्ञानिक कलाकार, साहित्यकार और विद्वान सदैव इस बात के लिये प्रयत्नशील रहे हैं कि उनके कामों से उनके देश का नाम ऊँचा उठे।

पहला—लेकिन हम उस श्रेणी में नहीं आते। उस प्रकार के लोग अधिक काम करते हैं तो एवज़ में उन्हें अधिक मिलता भी है।

दूसरा—मित्र ! अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि साधना का कोई मूल्य नहीं होता। एक कलाकार अपनी कृति को पूर्णता देने के लिए आराम, भोजन और शरीर की सुध-बुध तक बिसरा देता है, तब कहीं जाकर वह एक कृति का पिता कहलाने का अधिकारी होता है। वैज्ञानिक अपने आविष्कारों की सफलता के लिए ऐसा दीवाना हो जाता है कि लोग उससे नफ़रत करने लगते हैं। फिर एक दिन उसकी यही दीवा-

नयी रंग लाती है और यही नफ़रत करने वाले लोग उसे सर-आँखों पर बिठाये फिरते हैं। यह तो यहाँ का आम दस्तूर है।

पहला—तो क्या हम भी कलाकारों और वैज्ञानिकों वाला पागलपन अपने सर पर लाद लें? हमें कौनसी कृति का निर्माण करना है? हमें कौनसा आविष्कार इस दुनियाँ को सौंपना बाकी रह गया है?

दूसरा—बेशक हम भी कलाकार हैं। हमें अपने देश का रूप तराशना है। बेशक हम वैज्ञानिक हैं, हमें यह आविष्कार करके दिखाना है कि संकटों और समस्याओं की घड़ियों में भी हम सनातन मानव मूल्यों को नहीं भूल जाते। हम अपनी जन्मभूमि की हर साध को पूरा करने के लिये कृतसंकल्प हैं। इस सबके लिए हमें अपने-अपने व्यवसायों के प्रति ईमानदार होना पड़ेगा। जहाँ हम काम करते हैं, वह पद छोटा है या बड़ा, बिना इसकी परवाह किये अपना सर्वश्रेष्ठ अपने व्यवसाय को देना है ताकि देश की अनगिनत समस्याओं को सुलझाने में हम भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें।

पहला—हाँ भई, बात तो कुछ-कुछ जमने जैसी है।

दूसरा—'कुछ-कुछ' नहीं। पूरी कहो। और वादा करो कि तुम खुद तो अपने व्यवसाय के प्रति भरसक उत्तरदायित्व निभाने के लिये कमर कसोगे ही साथ ही अपने अन्य मित्रों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करोगे।

पहला—लेकिन वे मेरी बात कैसे मानेंगे। कल तक मैं जो उनकी हाँ में हाँ मिलाया करता था और इस तरह की बातों की खिल्ली उड़ाया करता था।

दूसरा—क्यों नहीं। हार्दिक सचाई के साथ कही हुई बात सब मानते हैं। कोई उसकी अवज्ञा नहीं कर सकता।

पहला—इसका क्या सबूत है?

दूसरा—रहे तुम बुद्धू के बुद्धू। इसका जीता जागता सबूत तो तुम हो। अभी चन्द मिनटों पहले तुम्हारी धारणा कुछ और थी अब कुछ और है।

पहला—हाँ-हाँ, ठीक है। अब मेरी समझ में सारी बात बिल्कुल साफ़-साफ़ आ गई है। अब कल से मैं इस नये धर्म के प्रचार में लगूँगा।

दूसरा—धन्यवाद। अच्छा चलूँ। तुम्हारा काफ़ी समय ले लिया। क्षमा करना।

••

वह कभी नहीं आये ?

• सुश्री दीपाली सान्याल 'सुधी'

वह कभी नहीं आये, और लगता है कभी आयेंगे भी नहीं—उनकी सेवा करती-करती मैं थक गई हूँ। मेरी जागृति, मेरे स्वप्न, मेरी आशाएं तुम सब कितने कठोर हो, निर्मोही हो ! (मेरा हृदय फट क्यों नहीं जाता)—जो इतना कहते हुए भी नहीं आये, तुमने प्रथम दिवस के मधुर मिलन में कहा था कि मैं आऊँगा और तुम्हारे उदास मन-मन्दिर में ज्योति, प्रेम का अमर प्रदीप जलाऊँगा ?

तुम्हारे लिए मैंने रातें जागी, दिन नष्ट किये, स्वजनों की आशाओं के पुल बाँधे, परंतु निराशा ही मिली—

अस्थिरता के अथाह सागर में विश्वास की नाव डालकर उसी दिन से तुम्हें खोजना आरंभ किया—जिस दिन मेरे जीवन की भेंट तुम्हारे साथ हुई। परंतु तुम न जाने कहाँ विलुप्त हो गये ।

मीरां को कृष्ण से लगन थी ।

मुझे न जाने कितनी आशाओं के साथ तुम्हारी साधना की प्राप्ति हुई—और केवल निराशा, असफलता ही हाथ लगी—

मैंने तुम्हारी आशा से इधर-उधर बिखरी हुई इच्छाओं को बटोर कर आशा का नूतन दीप जलाया था—जिसमें कल्पनाओं का कंपन था—अविश्वास की एक क्षीण वत्ती—जो मैं कहीं देख—पाई ।

इतनी प्रतीक्षा करने पर मैंने क्या पाया ! एक निराशा की झलक ही तो । अंधेरी सांय-सांय करती रातों में भटकी—दिन में इधर-उधर चक्कर लगाए—खाने-पीने, की ओर ध्यान नहीं दिया ! फिर भी तुमने साथ नहीं दिया !

हाय दुर्भाग्य ! नाव को भी तो पतवार का सहारा मिलता है—परंतु मुझे सहारे का सौभाग्य प्राप्त हुआ ही नहीं । तारे टूट कर गिरने से अंधेरा नहीं

हो जाता, आकाश में बादल सर्वदा नहीं छाये रहते, नदी का जल केवल वर्षा में ही गंदा होता है। काजल डालने से, नयनों का प्रकाश अधिक होता है। परंतु मेरे जीवन में प्रकाश हुआ ही नहीं।

यह भी खूब हुआ—तुम तो कहते थे कि मैं आऊँगा—आज नहीं दो दिन बाद, दिन में नहीं रात को। अपने प्रण पर स्थिर नहीं रहे। मैंने कितनी बार तुम्हारी राह देखी, परंतु हाय रे निष्ठुर तुम नहीं आये।

जिसके लिए मैंने सारी तरफ से बुद्धि को एकत्र करके तुम्हें अर्पित किया—जिसकी प्रतीक्षा में मैंने दिन काटे और परिणाम के लिए व्याकुल, बेसुध और भयातुर हो उठी—परंतु मेरे प्रिय, प्रियतम—इंगलिश व जनरल साइन्स—जो कभी नहीं आये, न आयेंगे।

• •

सीमाएं समझिए

• सावित्रीदेवी रांका

बालक देश की कोमल पौध है। एक नन्हा पौधा देखने वालों की आँखों में बस जाता है, राहगीरों का मन मोह लेता है और अपने माली को तो प्रसन्नता से सराबोर ही कर डालता है। कुछ ऐसी ही स्थिति बालक की है। जिन बालकों का निर्माण अभिभावकों के स्वस्थ निरीक्षण में होता है, एक परिश्रमी माली की ही भाँति जिनके विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाया जाता है, वे बड़े होकर महान् बनते हैं। अपनी सुवास से देश को सुवासित करते हैं।

बालक को महान् बनाने के लिए भगीरथ प्रयत्नों की आवश्यकता है। उसकी रूचियाँ, स्वभाव, सीमाएँ समझकर तदनुसार कार्य करके ही बालक के मन को जीता जा सकता है। आज के अधिकतर माता-पिता बच्चों को खिलाने-पिलाने, उनके लिए सुख-सुविधाएँ जुटाने में ही अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं। यत्न से संवारे हुए माली के पौधे की तरह वह अधिक आकर्षक और व्यवस्थित कैसे बन सकता है, यह सब सोचने का उनके पास समय ही नहीं होता। जैसे-तैसे पोषण प्राप्त करके पनपने वाले पौधे की तरह उनके बालक बिना किसी प्रकार की विशेषताओं के बड़े हो जाते हैं। दूसरी ओर कुछ माता-पिता आवश्यकता से अधिक समझदार बनने का प्रयत्न करते हैं। वे मुर्गी के पेट से सोने के अण्डे एकबारगी ही निकाल लेना चाहते हैं। अर्थात् अपनी जल्दबाजी में वे दुनिया भर की विद्याएँ और आदर्श अपने बालक के नन्हे से मस्तिष्क में ठूंस देना चाहते हैं। दोनों ही ओर अज्ञानता है। अभिभावक वे ही सफल हो पाते हैं। जो बालक की सीमाएँ समझकर उनके जीवन-निर्माण का पुनीत कार्य करते हैं। आपको यह बात बड़ी अटपटी लगेगी कि कुछ भी कहने और करने में पहले बालक की प्रतिक्रिया का ध्यान रखें। फिर आज के अति व्यस्त युग में इतना समय ही किसके पास है? किन्तु

ही जीवन कुम्हार के चाक की भाँति अविराम गति से चलने लगता है। क्या दिन-रात साथ रहने वाले बच्चे इस स्थिति को नहीं जानते कि उनके माता-पिता कठिन संघर्ष में जुटे हुए हैं! घर के कामों में व्यस्त माँ चाहती है कि उसका मुन्ना जल्दी उठकर अन्दर-बाहर के काम निपटाने में उसकी सहायता कर दे, वह बार-बार पुकारती है डाँटती है, पर सब निरर्थक। मुन्नाजी अपनी जीत की खुशी में मुस्कराते हुए करवटें बदल रहे हैं। अब क्या 'नहीं उठना' बालक की सीमा समझकर सन्तोष कर लिया जाए? नहीं, ऐसा करने को कौन कहता है? पर स्थिति में यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि अपनी बात का बालक के मन पर कोई प्रभाव नहीं होता। आप समझा-बुझाकर अपनी बात मनवाने का प्रयत्न कीजिए। यह उपचार बहुत कठिन है, पर निदान अचूक है। एक उपचार के साथ सभी रोगों का निदान हो जाएगा। बच्चे की सीमाएँ समझते हुए सहानुभूतिपूर्ण ढंग से वातावरण को सुखद बनाने का प्रयत्न कीजिए। यह बात हमेशा ध्यान में रखिए कि बच्चा बड़े के बराबर समझदारी से काम नहीं कर सकता क्योंकि उसकी अपनी सीमा है। आप डरा-धमका कर कोई बात समझाना चाहेंगे तो वह एक बुराई छोड़कर दूसरी बुराई अपना लेगा। उसका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाएगा। परिणामस्वरूप आपकी परेशानियाँ बढ़ेंगी।

बालक जहाँ है। उसे उन्हीं सीमाओं में बँधा हुआ समझ लेना भी भारी भूल है। अपनी कुशलता से बच्चे को मानसिक एवं बौद्धिक प्रगति में सहायता करके, उसके विकास की सीमाओं को आप बढ़ा सकते हैं। कई बार झूठे, आधारहीन कारणों से बालक कुण्ठाओं में बँध जाता है और वह उन्नति नहीं कर पाता। एक कुशल माली की तरह खोद-खोद कर इन कुण्ठाओं को बड़ी ही सावधानी से छाँट दीजिए; बालक की सीमाओं का विस्तार होगा। विकास का अवरुद्ध पथ खुल जाएगा।

सीमाएँ समझने के साथ-साथ उसकी समस्याओं से परिचित होना भी आवश्यक है। आप उसकी बातें ध्यान से सुनिए, शंकाएँ दूर कीजिए। उसकी रुचि, योग्यता और मान्यताओं का पता लगाइये। बालक की सामयिक प्रगति का ध्यान रखिए। यदि आपके पास पर्याप्त समय है तो एक चार्ट बना लीजिए, जिसमें बालक के सम्बन्ध की महत्वपूर्ण बातें लिखते जाइये।

किसी भी बच्चे को पूरी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके स्वभाव का मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जाए। यह परीक्षण बातचीत और सम्पर्क द्वारा किया जा सकता है। फुर्सत के समय में बच्चे को कहानियाँ सुनाइये, कुछ छोटे-छोटे प्रश्न करके उसकी प्रतिक्रियाएँ जानिए। आप उसकी

ममता

• नाथूलाल गुप्ता

पहली बार ही कक्षा में पहुँचा था, नई उमंग लिये, नई आशा से बच्चों को कुछ देने और उनसे बहुत कुछ लेने।

विद्यार्थियों से परिचय लिया और वाणिज्य विषय में प्राप्तांक पूँछे क्योंकि अर्द्धवार्षिक परीक्षा हो चुकी थी। कुछ छात्रों को बहुत अच्छे अंक प्राप्त हुए थे, कुछ को बहुत कम। स्वभावतः मैंने इन छात्रों से असफलता का कारण पूछा। एक छात्र—नरेन्द्र, रो पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। प्यार करने एवं पुचकारने पर भी उसकी सिसकियाँ बंद नहीं हुई। अन्त में जब उसका रोना कम हुआ तब एक अन्य छात्र ने बताया कि उसकी माँ का स्वर्गवास हो चुका है, इसलिये इसे घर का सब काम करना पड़ता है। पिताजी पटवारी हैं अतः उन्हें अधिकतर बाहर रहना पड़ता है। छोटे भाइयों के कपड़े वगैरह भी धोने पड़ते हैं। इसलिये उसे पढ़ाई के लिये समय नहीं मिलता। उत्सुकता वश मैंने उससे पूछा कि तब तो वह सब विषयों में ही कमजोर होगा। परन्तु ऐसी बात नहीं थी। वह केवल वाणिज्य में ही कमजोर था; क्योंकि आठवीं कक्षा से पूर्व उसने वाणिज्य विषय पढ़ा ही न था। अतः स्वाभाविक रुचि न होने के कारण वह कमजोर था।

पूरी पारिवारिक एवं व्यक्तिगत पृष्ठभूमि जान लेने के उपरान्त मैंने नरेन्द्र में रुचि लेना प्रारम्भ किया। किसी भी छात्र को किसी भी समय कोई समस्या निवारण हेतु खुला निमंत्रण दे रखा था। नरेन्द्र को भी उसके फालतू समय में घर आने के लिये कहा। वह आया, परन्तु केवल तीन दिन तक। इन दिनों में मैंने उसे उत्साहित अधिक किया, पढ़ाया कम। उससे कहा कि तुम्हें प्रथम श्रेणी में आया देखकर तुम्हारी माताजी स्वर्ग में बहुत प्रसन्न होंगी; तुम्हें आशीष देंगी। अतः तुम मन लगाकर दूसरे विषयों की तरह वाणिज्य भी

सीमाओं के बारे में बहुत कुछ समझ जाएंगे। यहाँ यह कहना भी उचित लगता है कि यदि कोई बालक छोटी सी ग़लती कर देता है तो उसे उसके स्वभाव की सीमा नहीं मान बैठना चाहिए।

हम अपने बालक से जैसी अपेक्षा करें, उसके मानसिक धरातल को वैसा ही बनाने का प्रयत्न भी करें। यह तथ्य है कि घर में उसे जिस शिष्टाचार की शिक्षा मिलेगी, दूसरों के साथ वह वैसा ही बर्ताव करेगा। आप चाहते हैं कि आपके किसी मित्र के आने पर आपका मुन्ना भी वैसा ही बर्ताव करे जैसा आपके पड़ौसी का बच्चा करता है। यहाँ आप समझने में भूल करते हैं। एक तो प्रत्येक बालक का स्वभाव दूसरे से भिन्न होता है, फिर सिखाने-पढ़ाने का भी बहुत असर पड़ता है। आपके पड़ौसी ने समय और शक्ति लगाकर बालक के विशिष्ट स्वभाव का निर्माण किया है और आपने इन विशेषताओं के पनपाने की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। तनिक सोचिए, निर्दोष बालक से आप ऐसी अपेक्षा कैसे कर सकते हैं ?

कतिपय बालक अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि होते हैं। बहुत छोटी आयु में बहुत ज्यादा सीख लेते हैं। पर दूसरी ओर मन्द बुद्धि बालक भगीरथ प्रयत्न करने पर भी पिछड़े हुए रह जाते हैं। यदि हम दोनों की सीमाएँ समझलें तो दुःख और असन्तोष का कोई कारण नहीं रहेगा। बालक के विकास में पारिवारिक पृष्ठभूमि संस्कार, वातावरण, स्वास्थ्य, बुद्धि सभी तथ्य देखे जाते हैं।

शिक्षा के सम्बन्ध में भी बालक की मनःस्थिति का अध्ययन सूक्ष्मता से करना चाहिए। संसार के विकसित देशों में इस बात को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है और इस अध्ययन को परमावश्यक समझा जाता है; पर अपने देश में इस प्रकार की व्यवस्था साधारण लोगों के बालकों के लिए नहीं है। फिर भी बालक के विशेष सम्मान को देखकर हम कोई निर्णय ले सकते हैं। मन चाहे ढंग से बालक पर अपनी रुचि थोपना हितकर नहीं होगा। बालक की सीमा समझकर परिस्थिति से समझौता कर लेना चाहिए। आपके सोचे हुए क्षेत्र में ही बालक चमक सकता है, यह धारणा सरासर ग़लत है। दक्ष होने पर वह कहीं भी अपना विशिष्ट स्थान बना सकता है। यह तथ्य है। जिधर झुकाव, रुचि होगी, उधर सफलता भी जल्दी मिलेगी। बालक को रुचियों के विकास की छूट देने के साथ-साथ हमें इस बात के लिए सदैव सतर्क रहना पड़ेगा कि कहीं वह भटक तो नहीं रहा है। उसे आपके सुलझे हुए पथ-प्रदर्शन की सदैव आवश्यकता रहेगी।

ममता

• नाथूलाल गुप्ता

पहली बार ही कक्षा में पहुँचा था, नई उमंग लिये, नई आशा से बच्चों को कुछ देने और उनसे बहुत कुछ लेने।

विद्यार्थियों से परिचय लिया और वाणिज्य विषय में प्राप्तांक पूछे क्योंकि अर्द्धवार्षिक परीक्षा हो चुकी थी। कुछ छात्रों को बहुत अच्छे अंक प्राप्त हुए थे, कुछ को बहुत कम। स्वभावतः मैंने इन छात्रों से असफलता का कारण पूछा। एक छात्र—नरेन्द्र, रो पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। प्यार करने एव पुचकारने पर भी उसकी सिसकियाँ बद नही हुई। अन्त मे जब उसका रोना कम हुआ तब एक अन्य छात्र ने बताया कि उसकी माँ का स्वर्गवास हो चुका है, इसलिये इसे घर का सब काम करना पड़ता है। पिताजी पटवारी हैं अतः उन्हें अधिकतर बाहर रहना पड़ता है। छोटे भाइयो के कपड़े वगैरह भी धोने पड़ते हैं। इसलिये उसे पढ़ाई के लिये समय नही मिलता। उत्सुकता वश मैंने उससे पूछा कि तब तो वह सब विषयों में ही कमजोर होगा। परन्तु ऐसी बात नही थी। वह केवल वाणिज्य मे ही कमजोर था; क्योंकि आठवीं कक्षा से पूर्व उसने वाणिज्य विषय पढ़ा ही न था। अतः स्वाभाविक रुचि न होने के कारण वह कमजोर था।

पूरी पारिवारिक एव व्यक्तिगत पृष्ठभूमि जान लेने के उपरान्त मैंने नरेन्द्र मे रुचि लेना प्रारंभ किया। किसी भी छात्र को किसी भी समय कोई समस्या निवारण हेतु खुला निमत्रण दे रखा था। नरेन्द्र को भी उसके फालतू समय मे घर आने के लिये कहा। वह आया, परन्तु केवल तीन दिन तक। इन दिनों मे मैंने उसे उत्साहित अधिक किया, पढ़ाया कम। उससे कहा कि तुम्हे प्रथम श्रेणी मे आया देखकर तुम्हारी माताजी स्वर्ग मे बहुत प्रसन्न होंगी; तुम्हे आशीष देंगी। अतः तुम मन लगाकर दूसरे विषयो की तरह वाणिज्य भी

पढ़ो। तीन दिन के वाद नरेन्द्र घर पर नहीं आया। परन्तु मैंने देखा कि वह कक्षा में वहुत तेज़ चलने लगा है। सारा गृहकार्य नियमित रूप से करता है। उससे कारण पूछने पर वताया कि जव वह कार्य करने वैठता है, उसकी माताजी सामने आकर आशीप देती हैं और वह और द्रुत गति से एकाग्रचित्त होकर कार्य करता है।

अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि नरेन्द्र वार्षिक परीक्षा में कक्षा में सर्व प्रथम रहा।

••

बोलना ही होगा

• ओमदत्त जोशी

घटना उस समय की है जबकि मैं प्राथमिक शाला रायपुर जिला भीलवाड़ा मे अध्यापक था। उस वर्ष प्रशिक्षण प्राप्त करके आया ही था। प्रधानाध्यापक जी ने मुझे बड़ी कक्षा का कक्षाध्यापक बनाना चाहा लेकिन मैंने अपनी इच्छानुसार कक्षा प्रथम का कक्षा अध्यापक बनना स्वीकार किया क्योंकि प्रारम्भ से ही छोटे-छोटे नन्हे-नन्हे बालको से वार्तालाप करने को बहुत इच्छुक था। उनके भाषा एव व्यवहार मे स्वाभाविक सुन्दरता होती है। इसलिए।

छोटी कक्षाओं मे, छात्र प्रायः अध्यापक जी को अपनी-अ . ` लेटो पर लिख-लिख कर बताते रहते हैं क्योंकि उनकी जिज्ञासा प्रवृत्ति का विकास उसी अवस्था में होता है। लिखना भले ही दूसरो के दृष्टिकोण से सही नही हो। अध्यापक महानुभाव छात्र के इतने परिश्रम से इतनी एकाग्रचित्तता से किये गये स्वच्छ एवं सुन्दर कार्य को बिना देखे ही मात्र अपनी गर्दन हिला देते हैं, जिससे न तो छात्र का मूल्यांकन ही हो पाता है और न उसे अशुद्धियों के लिए सावधान ही किया जा सकता है। मैं भी इसी मर्ज का मरीज था। छात्रों के गलत उत्तरो को भी बिना देखे गर्दन हिलाते हुए स्वीकार कर बिठा देता था। बिचारे छात्र अध्यापक जी के भय से कुछ भी नही बोल पाते और बैठ जाते।

एक दिन ऐसा ही अवसर था। गर्दन हिलाते हुऐ मैने छात्र को बैठा जाने का सकेत किया। लेकिन मुझे आश्चर्य हुआ यह देखकर कि छात्र बैठा नही। नाम शायद शान्तिलाल था उसका, उसने अपनी तुतलाती भाषा मे मुझे कहा "भाल साब बोलो, माले गलती है कि छही"। मुझे क्रोध आना स्वाभाविक था, एक छोरे की यह हिम्मत कि बोल जाय। मैंने क्रोध से अपनी गर्दन हिला दी लेकिन छात्र? छात्र अपने पथ से कब डिगने वाला था। उसने अपना वाक्य फिर दुहराया। उसकी तुतलाती एवं क्रमहीन भाषा ने मेरे क्रोध पर पानी

डाल दिया। मैंने उस छात्र की स्लेट अपने हाथ में ली और पूछा कि मैंने दो बार गर्दन हिला दी फिर तुम अपने स्थान पर क्यों नहीं गये ? छात्र भयभीत सा बोला "आप ही तो केवो के गुरु जी की आज्ञा मानो, आप बोल्या कोनी जद मैं क्यान जाऊँ" ? छात्र के आज्ञाकारिता एवं कर्तव्य परायणता से पूर्ण उत्तर से मैं बहुत खुश हुआ। मैंने मुग्ध कंठ से छात्र को जाने की आज्ञा दी। तभी वह छात्र अपने स्थान पर गया।

इसे कहते हैं आज्ञाकारिता एवं कर्तव्य परायणता, जिससे मुझे सन्मार्ग मिला। मैंने अनुभव किया कि छोटे से हृदय में आज्ञाकारिता जैसे गुण की जड़ कितनी गहराई तक पहुँच जाती है, जिसका अनुमान लगाना असम्भव हो जाता है, इस प्रकार की अनेक प्रवृत्तियाँ नन्हें-मुन्नों में पायी जाती हैं लेकिन इसके लिए सुअवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। सुअवसर तभी प्राप्त हो सकता है जबकि अध्यापक बालकों में रुचि लें और उनकी गति-विधि की ओर पर्याप्त ध्यान दें।

••

समय रहै चित चेत

• कुमारी सुमन तारे

वार्षिकोत्सव सम्पन्न होने के दूसरे ही दिन की बात है। मैं बड़ी खुश, प्रसन्न, इस अभिमान में मस्त थी कि कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा—शायद नगर की सभी संस्थाओं से अच्छा, कि तभी एक आघात लगा।

संसद परामर्शदात्री अध्यापिका ने आकर कहा—"बहनजी, कहना तो नहीं चाहिये पर क्या करूँ, प्रधानमंत्री ने आज बड़ी बदतमीजी की और कहा—'मैं कोई मशीन हूँ कि रोज ही किसी न किसी कागज पर हस्ताक्षर करती रहूँ। मेरी इच्छा से होता ही क्या है! मैं कौन होती हूँ।"

मैं अवाक् निस्तब्ध! प्रधानमंत्री? इतनी अच्छी छात्रा ने यह कहा—आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?

इसके बाद मुझे उसी कक्षा में पढ़ाने जाना था। गई, पढ़ाया भी, स्वभाविक मुद्रा बनाये रखने का प्रयास भी किया, किन्तु बार-बार जैसे मैं कुछ भूल रही थी।

कालांश समाप्त हुआ। छात्रा को बुलाया। कहा—कौनसी बात तुम्हारी इच्छा से नहीं हुई? तुम्हें किस बात का इतना ग़ुस्सा आया कि बहनजी से ऐसे बोल पड़ी।

छात्रा चुप! हाथ बुरी तरह काँप रहे थे। निगाह नीची।

फिर कहा! "बोलो, बोलती क्यों नहीं? क्या फ़िजूल खर्ची की मैंने! कौनसा काम तुम्हें बिना बताये किया?

................।

"...जानती हो तुमने ये शब्द उनसे नहीं, मुझसे कहे हैं। मैं तो प्यार से तुम्हें पुकारते तृप्त नहीं होती और तुम्हारे ये काम! जाते-जाते तुमने मेरा प्यार और विश्वास खो दिया। बड़ा दुःख है मुझे।"

अब तो छात्रा सिर पटक-पटक कर रो पड़ी। "नहीं बहनजी, मैंने कुछ नहीं कहा। मैं पागल हूँ, दोषी हूँ, मुझे माफ़ कर दें बहनजी ? मुझसे नहीं रहा गया। कल सब लोगों ने मुझ से कहा—"कहिये प्रेसीडेंट साहब, क्या इनाम मिला ? बहिनजी तो तुमसे इतना प्यार करती थीं, क्या दिया तुमको ?"

"मैं क्या कहती बहनजी, क्या जवाब देती। मैंने सालभर दौड़-दौड़ कर काम किया, आपके कहने से हाट में जाकर अकाल सहायता कोष के लिये पैसे माँगे, लेकिन मेरा समय आया तो आप मुझे भूल गईं। आपने एक शब्द भी मेरे लिये नहीं कहा—बस बहनजी, यही बात थी, आप एक बार मुझे याद कर लेतीं बहनजी। कल मुझे लोगों को जवाब देना नहीं आया कि आपने मुझे याद क्यों नहीं किया। आपके मुख से प्रशंसा का एक भी शब्द क्यों नहीं निकला ! बस बहिनजी ! इतनी सी बात थी। आप मुझे माफ़ कर दें, कुछ भी लिखवालें, मैंने आपके लिये तो कभी कुछ कहा ही नहीं,.......'
और एक बार फिर वह मेरी मेज़ पर सिर पटक कर रोने लगी।

और कार्यक्रम की सफलता का मेरा अभिमान खंड-खंड हो गया। क्या यही कार्यक्रम की सफलता है कि बेचारा प्रधानमंत्री फूट २ कर रोता रहे। उसे उठाया, सिर पर हाथ फेरा, रुँधे कंठ से इतना ही कह पाई—'अच्छा, कोई बात नहीं, जाओ उन बहनजी से माफ़ी माँगो, तुमने उनके प्रति उद्दंडता दिखाई है।'

अपनी भूल के लिये दो बूंद आँसू बहाकर मैंने अनुभव किया कि प्रोत्साहन के एक शब्द, कार्य की सर्व-साधारण में स्वीकृति के अभाव में छात्रा के मन को कितनी ठेस पहुँची है। अध्ययन, अनुशासन, सेवाभाव, वाद-विवाद आदि अनेक बातों में सर्वश्रेष्ठ होने पर भी खेलों में रुचि न होने के कारण वह सर्वश्रेष्ठ छात्रा का पुरस्कार न पा सकी, वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई ही नहीं और सर्वोत्तम कार्यकर्त्ता का पुरस्कार रक्खा ही न गया, फलतः कक्षा में प्रथम पुरस्कार पाने के अतिरिक्त उसे कुछ न मिला।

अपनी अखंड और अनवरत सेवाओं के बदले [अनेक कामों में उसने लड़कों से भी अधिक आत्मविश्वास और साहस का परिचय दिया था] उसे मिली केवल गांव वालों की लांछना और व्यंग्योक्तियाँ।

लेकिन समय निकल गया था। अब अकेले में अच्छे से अच्छा पुरस्कार देकर भी उसका परिष्कार नहीं हो सकता था। बालिका के क्षणिक विद्रोह ने मेरे अहं को झकझोरकर मुझे मेरी भूल का भान कराया था। मेरी वह भूल मेरे मनः पटल पर अमिट अंकित होकर मुझे सदैव सचेत करती रहेगी और कहेगी—'समय रहे चित चेत।'

मंद करत सो करत भलाई

• गोपालकृष्ण जिवल

लगभग दो-तीन वर्ष पूर्व की यह घटना है। घटना क्या है मानव-मनकी छिपी अन्धकारमयी गुफाओं की एक भयानक झाँकी है। भयानक विस्फोट जिस प्रकार कभी-कभी पृथ्वी के गर्भ में छिपी वस्तुओं को निकालकर बाहर फेंक देता है, उसी प्रकार घटनाएँ भी कभी-कभी मानव के अन्तः प्रदेश को उलीचकर बाहर कर देती हैं और तब हम सोचने लगते हैं कि वैदिक ऋषियों और प्राणाचार्यों ने मानव-मनके बारे में जितने भी सूत्र गढ़े हैं, उनमें कितनी सत्यता है। एक ओर जहाँ इस मनकी विशालता के आगे समुद्रों की गहराई और गिरिशृङ्गों की उत्तुङ्गता तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगती है, वहीं दूसरी ओर यह कितना संकीर्ण, तंग और कृतघ्न होता है कि अपने उपकारी का रक्त-पान करने में भी आगा-पीछा नहीं सोचता है।

बात यों हुई कि एक अध्यापक महोदय मानसिक रूग्णतावश जब-तब 'मेडिकल लीव' पर रहते थे। उस समय भी वे छुट्टी पर थे, किंतु जब उन्हें किन्हीं सूत्रों से पता चला कि दफ्तर से उनका वेतन लगकर आया है तो वेतन-वितरण के दिन अपने प्रधानाध्यापक महोदय के पास पहुँचे और वहाँ अपनी विपन्नावस्था का वर्णन कर वेतन दिलाने की प्रार्थना की। सरकारी नियमानुसार मेडिकल लीव पर रहते व्यक्ति को वेतन उसी समय मिलता है, जब वह स्वस्थ होकर रोग-मुक्ति का प्रमाण पत्र के साथ काम पर लग जाता है; किंतु कुछ तो उसकी करुण कहानी सुनकर और कुछ आर्थिक संकटामार से ग्रसित उसकी दीनदशा को निहार कर प्रधानाध्यापक जी ने वह वेतन उसे दे दिया; किन्तु वेतन प्राप्त करने की आफिस-कापी पर उसके हस्ताक्षर लेना भूल गये। बाद में जब उन्हें इस चीज का ज्ञान हुआ तो उन अध्यापकजी को ढुँढ़वाया गया किंतु वे तो तब तक जा चुके थे। कागज दफ्तर पहुँचा दिये गये। बात आयी-गयी हो गयी। समय काले-धौले पंखों पर सवार हो उड़ता रहा।

और तब एक दिन उन्ही अध्यापकजी ने उच्चाधिकारियों के पास प्रार्थना पत्र भेजा कि उन्हें अमुक मास का वेतन दिलवाया जाय; क्योंकि उस अवधि में वे मेडिकल लीव पर रहे थे। प्रधानाध्यापक जी ने उससे कहा—'भैया, तुम्हें वेतन मैंने दिया है और तुम्हारे हस्ताक्षर भी ओरिजिनल कापी में मौजूद हैं। हाँ दूसरी कापी में तुम उस समय शीघ्रतावश हस्ताक्षर न कर सके थे, सो अब कर दो। विश्वास न हो तो दफ्तर जाकर देख आओ' यों कहकर उन्होंने वह दूसरी कापी उनके सामने हस्ताक्षर के लिए सरका दी।

'मैं दस्तखत-वस्तखत कुछ नहीं करूँगा और न मैं वेतन के विषय में ही कुछ जानता हूँ। आपको जो कुछ कहना है अधिकारियों से कहिये। मैंने भी तो उन्हीं से कहा है, आपसे तो नहीं कहा।' उन अध्यापकजी ने आँखें तरेरते हुए कहा।

ओरिजिनल कापी देखी गयी लेकिन वह तो नदारद। अधिकारियों ने कहा कि 'दूसरी कापी के हस्ताक्षरों को देख कर इस बात के सत्यासत्य का निर्णय देंगे।' किंतु दूसरी कापी पर तो हस्ताक्षर ही नहीं थे। द्वेष रखने वालों का दाँव लग गया। किसी ने मामला 'एंटीकरप्शन' तक पहुँचा दिया। तहकीकातों का ताँता शुरू हो गया। वायु की लहरों-पर सवार खबर एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गयी।

अधिकारियों ने प्रधानाध्यापकजी से 'मेडिकल लीव' की अवधि में वेतन देने का जवाब तलब किया तो अध्यापक महोदय ने वेतन देने का प्रमाण माँगा।

ध्यापक जी से क्षमा माँगी और हितैषियों ने उन्हें प्रतिष्ठा पर आघात करने के अपराध में अध्यापक पर कानूनी कार्यवाही करने की सलाह दी ।

'अँधेरी रात तो तारागण को सुन्दर बनाती है। बेटे के साथ बाप भी बहक जाय तो गङ्गा का जल मीठा कैसे रहेगा ?' वे बोले ।

और एक दिन लोगों ने सुना उक्त अध्यापक महोदय का मस्तिष्क विकृत हो गया है । सिर मुँडवा लिया है । पागलों-सा प्रलाप करते हैं । घर के सामान को बाँटते फिरते हैं। बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट भी कर दिया है । प्रधानाध्यापक जी को पता लगा तो तुरन्त वहाँ पहुँचे और सारे बाँटे सामान को पुनः एकत्रित कर ताले में बन्द किया और अध्यापक महोदय को अपने खर्च से आगरा के मानसिक चिकित्सालय मे प्रवेश कराया। दो—तीन माह बाद वे महाशय जब वहाँ से स्वस्थ होकर घर पधारे तो अपने पूर्व-कर्मों पर अत्यधिक पश्चाताप किया और तत्पश्चात क्षमा मागी ।

'मेरे ही कर्मों का प्रतिफल होगा भैया, नही तो, कोई किसी को न दु.ख देता है न सुख । अपने ही पूर्वकृत कर्म अच्छी बुरी सृष्टि का निर्माण करते हैं—दूसरा तो कोई निमित्त बनता है ।' हलाहल पीकर भी शंकर निरुद्वेग थे । उमा संत की इहइ बडाई । मंद करत सो करत भलाई ॥

••

तीर्थ-स्थल हीराकुंड

• जी० वी० आज़ाद

वर्षा थम चुकी थी, आकाश निरभ्र तो नहीं था किन्तु सूर्य का प्रकाश पूर्ण रूप से चारों ओर फैला हुआ था। कालाहण्डी और बलांगीर ज़िलों की यात्रा कर पिछली रात ही मैं सम्बलपुर पहुँचा था। यहाँ मेरा प्रमुख कार्यक्रम हीराकुंड की यात्रा था। हीराकुण्ड देखने के लिये मेरा कोई साथी नहीं था यद्यपि साथ के स्थानीय लोगों ने हीराकुण्ड नहीं देखा था और न चाहते हुए भी उन्हें देखने की कोई जिज्ञासा ही थी, क्योंकि अवकाश नहीं था। घर की मुरगी दाल बराबर की लोकोक्ति चरितार्थ हो रही थी। लोग दूर-दूर से यहाँ देखने को आते थे किन्तु इन्हें कहाँ अवसर था। 'कभी देख लेंगे की भारतीय प्रवृत्ति से ये मुक्त नहीं थे। विवश हो, मैं अकेला ही उस सुहावनी सुबह को हीराकुण्ड यात्रा के लिये उद्यत हुआ। यहाँ सम्बलपुर शहर से हीराकुण्ड लगभग पाँच मील था। साथियों ने आने-जाने के लिए एक साइकिल रिक्शा पाँच रुपयों में निश्चय कर मंगवा लिया। मुझे लगा पाँच रुपया काफ़ी अधिक किराया है और मुझे जरूरतमन्द समझ कर यह माँगा गया है। मैं मारवाड़ी हूँ, परदेशी हूँ, इसे ये उड़िया रिक्शे वाले भी समझते हैं। लेकिन जब बात हो ही गई तो उससे मुकर जाना अच्छा नहीं लग रहा था। मैं रिक्शे में बैठ, रवाना हुआ।

सम्बलपुर शहर की पुरानी और नई बस्ती को पार करते हुए रिक्शे वाला मध्यमगति से भाग रहा था—सुन्दर, सुडोल मुख पर चेचक के भयंकर प्रकोप से और माता-पिता की असावधानी से जिस प्रकार मुख कुरूप और विकृत हो जाता है ये उड़ीसा के राजमार्ग ठीक उसी प्रकार विकृत पड़े थे। सारा राज मार्ग कहीं गहरे गड्ढों तो कहीं लम्बे गड्ढों से मंडित था। घिस-पिट कर सड़कों का आकार नायिकाओं के शरीर की भांति कहीं सिकुड़ा-कहीं

उभरा, कहीं समतल तो कहीं विस्तार प्राप्त किये था। अतः अत्यन्त सावधानी से चलने पर भी रिक्शे में मेरी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। मेरा जी होता था इससे तो पैदल ही चल लूं तो अच्छा है। कभी रिक्शे वाले से ऊँचे स्वर में तो कभी सधे स्वर में कहता "भाई जरा देखकर चलो ना" और रिक्शे वाला मौन बिना कोई उत्तर दिये निर्बाध बढ़ता जाता था। रांची रोड पार करने पर लगा सड़क का दम तोड़ कष्ट मिट गया है। यहीं से हीराकुण्ड कस्बे की विशाल बस्ती स्पष्ट होने लगी थी। इधर भारवाही व यात्री वाहन निषिद्ध हैं–अतः सड़क साफ-सुथरी और समतल थी।

जिस समय रिक्शा हीराकुण्ड कस्बे में प्रविष्ट हुआ 'योजना' शब्द मेरे मन में मुखर आया। सचमुच सभी योजनाबद्ध-काम कितने मोहक होते हैं। देश की प्रगति, हीराकुण्ड का निर्माण और भारतीयों का जीवन सभी तो योजनाबद्ध किये जाने का विचार है। सुनियोजित कार्यक्रम में एक सुन्दर कल्पना को आकार की प्राप्ति होती है, रेखाओं को वर्ण और अस्थियों को मांसलता उपलब्ध होती है। हीराकुण्ड क़स्बे का निर्माण अत्यन्त ही वैज्ञानिक और योजनाबद्ध था। चौड़ी और विशाल सड़कें। सड़कों के दोनों ओर बसी समाकार बस्तियाँ, जहाँ एक-मंजिले मकान हैं, उस क्षेत्र में दुमंजिला मकान कहीं नहीं मिलेगा, जहाँ दो-मंजिले मकान हैं उनके बीच एक मंजिल का कोई मकान दिखाई नहीं देगा। दो से अधिक मंजिल के मकान मुझे वहाँ नहीं मिले। खेल के मैदान, बाल-वाटिकाएँ, उद्यान, बस्ती में अनेक स्थानों पर बने हुए हैं। चिकित्सालय, डाकघर, टेलिफ़ोन के दफ़्तर और पुलिस स्टेशन सभी प्रमुख स्थानों पर बड़े सुन्दर भवनों में हैं। विद्यालय, महाविद्यालय, मेडिकल कॉलेज और टेकनिकल इन्स्टीटयूट के विशाल भवन उपयुक्त स्थानों पर निर्मित किये गये हैं। यहाँ के बाजार आधुनिक ढंग के हैं किन्तु स्थानीयता के ममत्व को त्यागने की क्षमता उनमें नहीं हैं—चहल-पहल के केन्द्र हैं।

जिस समय रिक्शा हीराकुण्ड की उस रमणीय बस्ती से गुजर रहा था सूर्य की किरणें प्रखर हो चुकी थीं। जून की गर्मी और वह भी उड़ीसा प्रान्त की—राजस्थान की बदनाम गर्मी से किसी प्रकार कम न थी। रिक्शा खींचने वाले उस उड़िया चालक के पक्के रंग वाले चमकते लम्बे मुख पर अब स्वेद कण क्रमशः धार का रूप ले चुके थे। किन्तु उसे पसीना पोंछने का अवकाश नहीं था। भूमि का चढ़ाव प्रारम्भ हो गया था। उसे क्षिप्र गति से रिक्शे के पैडिल पर अपनी टांगों की शक्ति का उपयोग करना पड़ रहा था। हिमालय और बद्रीनाथ की यात्रा में कुलियों के परिश्रम की बात सुन रखी थी अतः जी चाहते हुए भी मैं रिक्शे से उतर कर पैदल चलने को उद्यत नहीं हो पा रहा

था। मैंने पैसे दिये हैं। इन्हें इस प्रकार परिश्रम से चलने का अभ्यास है आदि स्वार्थपूर्ण भावों के कारण मैं बाँध की दानवी चढ़ाई पर तब तक रिक्शे से नहीं उतरा जब तक की मेरे अन्दर के कारुण्य और मानवीयता के आग्रह ने सशक्त रूप धारण नहीं कर लिया। रिक्शे वाला अब पेडिल के सहारे नहीं हाथों से हैन्डिल पकड़ कर पैदल चल रहा था। मैंने उसे रोका, और उतर कर उसके साथ-साथ चलने लगा। उसका स्वांस काफी चढ़ रहा था, खण्डित स्वरों में कहने लगा आगया (श्रीमानजी) चढ़ाव बहुत ऊँचा है। ठोड़ी को ऊपर उठाकर आँखों के चंचल संकेत से उसने बताया यही—बाँध है, आप इसे देखें, घूमें, मैं दरवाजे पर खड़ा आपकी प्रतीक्षा करूँगा।

बाँध के दाहिने द्वार पर मैं खड़ा था। विशाल श्वेत स्फटिक का तोरण द्वार, भारतीय परम्परा के अनुसार विजय का शुभ प्रतीक, बड़े गौरव और स्नेह से आगन्तुकों का स्वागत कर रहा था। पास ही एक विशाल शिला-लेख पर बाँध के प्रधान इन्जीनियर श्री आयंगर का नाम अंकित था। इसी शिला-लेख से मालूम होता है कि १२ जनवरी १९४८ को तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरु के हाथों इस विशाल जल बाँध की नींव डाली गई और १३ जनवरी, १९५७ को उन्हीं के कर कमलों द्वारा इस विशाल जल योजना का उद्घाटन किया गया। बस यही वह शिला-लेख है, जिससे इसका इतिहास प्रारम्भ होता है।

विशाल बाँध पर्वत-शृंखलाओं के अंक में प्रसिद्ध महानदी और ईब नदी के सम्पूर्ण जल को संग्रहीत कर उसके गुरुत्व को स्वीकार करने की एक अमिट निशानी है। सत्रह मील का यह क्षेत्र उमड़ती नदियों के पानी से लबा-लब भरा है। तीन मील के लगभग बना विशाल जल बाँध वैज्ञानिक सूझ-बूझ और कौशल का एक सुन्दर प्रमाण है। बाँध के ऊपर की सड़क से दो ट्रक गाड़ियाँ एक साथ पूरे वेग से बोझा लेकर दौड़ सकती हैं। बाँध पर खड़े हो कर जिस समय बँधे हुए पानी की ओर हम देखते हैं तो एक मोहक नहीं भयंकर दृश्य का दर्शन होता है। बाँध का पानी निकालने के लिये लगभग पाँच दर्जन दर्वाज़े हैं, जिन्हें आवश्यकता के अनुसार खोला और बन्द रखा जाता है। पावस में यौवनोन्मत्त सरिताओं का उमड़ता जल बाँध के प्रति भयंकर विद्रोह करता दिखाई देता है। वहाँ उसे इस बन्धन के प्रति उग्र संघर्ष करना पड़ रहा है। विद्रोह और संघर्ष की वह आस्था अत्यन्त ही भयावह और प्रलयकारी प्रतीत होती है। नियंत्रित मात्रा में बांध से निकलता पानी अपने साथी पानी को बांध में छोड़कर आगे बढ़ने को तत्पर नहीं है। क्षिप्र गति से निकलता हुआ पानी मानो वापस लौटकर अपने साथी पानी को छुड़ाने के लिये संघर्ष

करता दिखाई देता है। छूसते प्राणियों के मुख से आक्रोश और संघर्ष में जैसे फेन उछल-उछल कर गिरने लगते हैं, उसी प्रकार दर्वाजे से निकलता हुआ नियंत्रित पानी भी संघर्षरत वा सम्पूर्ण फेनिल था—जल की प्रबल फुहारें पचासों फीट ऊपर उछलतीं घनी और विरल होकर छाजातीं, चारों ओर गहरा धुंआ उठता हुआ दिखाई देने लगता है, लेकिन वस्तुतः यह धुंआ नही पानी की फुहारों का घनत्व मात्र है। रात्रि को सैंकड़ों ट्यूबलाइट की सुहावनी प्रकाश रश्मियों में यह दृश्य अत्यन्त आकर्षक हो जाता है।

बाँध से सिंचाई के लिये नहरों द्वारा पानी के वितरण का एक तकनिकी खण्ड अलग है जहाँ योजनानुसार जल वितरण किया जाता है। जल की नहरें स्वय इतनी विशाल हैं कि बाँध के गुरुत्व का अनुभव उन्ही के द्वारा हो जाता है। दाँए हाथ पर सात मील भ्रौर बाएं हाथ पर छः मील तक पर्वतो के सहारे बाँध का निर्माण अत्यन्त सुदृढ़ और वैज्ञानिक विधि से किया गया है। इस् विशाल और सुदृढ़ बाँध को तैयार करने मे कितना ककरीट, सीमेन्ट, इस्पात आदि लगा होगा इसका अनुमान तो हम नही लगा सकते, किन्तु इतना अवश्य है की इस विशाल योजना को कार्य रूप देने मे करोड़ो रुपयो और सहस्रों व्यक्तियों का श्रम ही नही अनेक व्यक्तियों के प्राणों का उत्सर्ग भी हुआ है। बाँध के दोनों ओर पर्वत श्रेणियाँ हैं। इन श्रेणियो पर दर्शनीय स्थल को मनोरम बनाने के लिये दो विशाल मीनारें खड़ी की गई हैं। एक का नाम गांधी मीनार और दूसरी का जवाहर मीनार है। जवाहर मीनार देखने के लिये एक ऊँची चढ़ाई चढनी पड़ती है। गर्मी की प्रचण्डता और विकट चढाई की लम्बाई से उस चक्करदार सड़क को छोड पहाड़ी मार्ग से बढ़ने की इच्छा होती है जिससे जल्दी ऊपर पहुँचा जा सके, परन्तु पहाड़ी की दुर्गमता से साहस नही होता। अतः सड़क-सड़क बाँध के उस मनोरम दृश्य को देखते हुए मैं जिस समय मीनार के चरणों मे बनी सुन्दर वाटिका की शीतल छाया मे पहुँचा तो प्रतीत हुआ मेरा समस्त श्रम मिट गया है। इतनी ऊँचाई पर ऐसी सुन्दर वाटिका सचमुच बडी सुहावनी लगती थी। यहाँ लगी दूब के सुकोमल स्पर्श ने पैरो की समस्त पीड़ा को स्वतः हर लिया। मौसमी फूलो के अतिरिक्त बेला और चमेली के फूल बड़े मनोहारी थे।

अस्सी हजार रुपये की लागत से उस पहाड़ी पर बनी ६४ फीट ऊँची मीनार श्वेत प्रस्तर से निर्मित है। अस्सी सीढ़िया चढकर जिस समय मीनार की सब से अंतिम छत्री-या गुम्बुद पर पहुँचते हैं विशाल हीराकुंड़ बाध, उसके योजना खण्ड, हीरा कुंड कस्बा और सम्बलपुर शहर एक दृष्टि में निहारे जा सकते हैं। इस गगनचुम्बी विशाल मीनार का निर्माण यहाँ सचमुच बड़ी सूझ-बूझ

का प्रतीक है। जिस प्रकार विशाल क्षेत्र का दर्शन समतल भूमि की अपेक्षा वायुयान से अधिक सही-सही किया जा सकता है 'उसी प्रकार यंत्रों की सहायता से घूमने वाली इस मीनार पर चढ़कर दर्शक इस आकर्षक स्थल से दूर-दूर फैले सम्पूर्ण क्षेत्र को भली-भाँति देख सकते हैं। मीनार के ऊपरी भाग पर बने गुम्बुद और बालकनी जिसमें खड़े रहकर सैलानी देखते हैं, उसका सम्बन्ध विद्युत यंत्रों से है। सैलानियों के इस गुम्बुद में खड़े हो जाने पर यांत्रिकों द्वारा वह शनैःशनै घुमाई जाती है और लगभग तीन मिनिट में प्रत्येक सैलानी अपनी जगह खड़े-खड़े ही समस्त क्षेत्र का दर्शन कर लेता है, और तभी गुम्बुद एक पूरा चक्कर समाप्त करती है। तत्कालीन उड़ीसा के मुख्यमंत्री डा० हरे कृष्ण मेहताब का नाम इस मीनार के शिला लेख पर अंकित है। इस सुन्दर मीनार पर सब से अधिक खटकने वाली बात है किसी सुन्दर से अल्पाहार-गृह का अभाव। श्रान्त यात्री को यदि यहाँ जलपान मिल जाये तो उसे बड़ा आनन्द अनुभव होता है किन्तु यहाँ ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

जवाहर मीनार को देखकर मैं पुनः उत्तर कर बांध पर आया जहाँ रिक्शे वाला उडिया मेरी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। बांध को पार करते समय जल की वेगवती धारा से प्रकट ध्वनि और बांध से टकराते पानी का नाद अज्ञात भय और सिहरन उतपन्न कर देता था। बांध पार कर जब दूसरे किनारे पर पहुँचा तो सामने की पहाड़ी पर गांधी मीनार खड़ी थी। एक तो सूर्य चढता हुआ सिर पर आ चुका था दूसरे जवाहर मीनार की चढ़ाई और थकान ने और अन्त में भूख की पीडा से उतपन्न शिथिलता ने मेरी हिम्मत तोड़ दी। रिक्शे वाले ने बताया इस मीनार में वैसी साज-सज्जा नहीं है' जैसी जवाहर मीनार में है। यह सचमुच गांधी मीनार है सरल गांधी मीनार। रिक्शेवाले की इस उक्ति में समाहित नेहरू-गांधी का अन्तर कितना सीधा और सच्चा था। मैंने निश्चय किया कि मैं इस मीनार को बिना देखे ही लौट जाऊँगा। अब रिक्शा बाँध से नीचे की ओर बढ़ा जहाँ विद्युत-प्रयोजना का विस्तृत खण्ड है। चारों ओर विद्युत तारों सम्बन्धित यंत्रों का एक विस्तृत जाल फैला हुआ था। इसे देखने के लिये जन सम्पर्क अधिकारी से आवश्यक आज्ञा पत्र प्राप्त करना होता है। मेरे लिये इसकी व्यवस्था एक स्पताह पूर्व ही हो चुकी थी। अतः उस विद्युत उत्पादन वितरण योजना को मैंने एक घंटे तक देखा। अधिक तो मैं नहीं समझ सका किन्तु मुझे इतना विश्वास हो गया कि इस प्रकार की उत्पादित विद्युत शक्ति देश के दीर्घकालीन और तत्कालीन में वरदान सिद्ध होगी।

...पुर नगर में जब दिन के १॥ बजे लौटकर मैंने रिक्शे वाले को

पांच रुपये का नोट दिया तो मुझे लगा जैसे मैं उसके परिश्रम का उपहास कर रहा हूँ। क्योंकि जाते समय अपने ठगाये जाने का जो भय मुझे था वह दूर हो चुका था। इतनी दूरी मार्ग की दुर्गम गर्मी की प्रचण्डता और चालक का धैर्य इन सभी के लिये पांच रुपये बहुत छोटे लग रहे थे—जी चाहता था उसे मैं कुछ और दूं किन्तु मैं जानता हूँ इस समाज में ऐसी भावुकता की लोग कद्र नहीं करते। कद्र करते तो क्यों नहीं मुझे भी इसी प्रकार श्रम करने पर निश्चित पारिश्रमिक से अधिक दिया जाता। मैं भी तो वैसा ही श्रमिक हूँ अन्तर यही है वह श्रमजीवी है मैं बुद्धिजीवी। छोटा-सा संघर्ष उठा और लोप हो गया। लोग दया को भावुकता कहते हैं और उपयोगिता को बुद्धि। भावुकता उपेक्षणीय है किन्तु उपयोगिता स्पृहणीय। बस यही आज के समाज की परिवर्तित मान्यताओं के पीछे एक दर्शन है। जो भी हो रिक्शा वाला पांच रुपया पाकर सन्तुष्ट होकर चला गया उसकी दृष्टि मे याचना नही सन्तोष था। मुझे अनुभव हुआ उस पाच रुपये की प्राप्ति से उसे पर्याप्त आनन्द था। लेकिन वह एक प्रश्न छोड़ गया।

उन्हीं दिनों उड़ीसा मे रहकर एवं आदिवासियो का जीवन देखकर मैंने अनुभव किया कि राजस्थान ही नही उड़ीसा भी उन अत्यन्त पिछड़े और दरिद्र प्रदेशों में से है जहाँ लोगो को, चाहे पुरुष हो या स्त्री केवल एक लुंगी लगाने को छोटा सा वस्त्र मिलता है। शेष सम्पूर्ण शरीर अपने प्रकृत रूप मे ही रहता है। दिन मे अधिकांश लोग एक बार मिट्टी की हाँडी मे पका भात खाकर सब्र करते हैं। क्लीन शेव्ड, पर्याप्त तेल का लम्बे बालो में प्रयोग कर कंघी करते रहने वाले ये शौकीन उड़िया भूखे रहकर भी ताड़ी पीने के परम आदी हैं। पुरुष दरिद्रता के शिकार होते हुए भी झगड़ा करने मे नही डरते और स्त्रियाँ भूखी रहकर भी विनोदप्रियता नही छोडती। कृष्णवर्णीय उड़िसा वासियो का जीवन सचमुच भारतीय दरिद्रता के अलबम का एक पृष्ठ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने इनके लिये कुछ करना चाहा है, राउरकेला और हीराकुंड इसके प्रमाण हैं। लेकिन सच यह है कि दरिद्रता की कोड़ में जो कुछ अब तक घने ऊँचे हरे-भरे जगलों और पर्वतीय कन्दराओं मे छिपा था, वह अब प्रशस्त राज-पथो और विद्युत प्रकाश मे स्पष्ट हो, उभर मात्र-आया है। इसके अतिरिक्त वहाँ के मूल जीवन मे कोई अन्तर नही हुआ।

आशा है हीराकुंड जैसी योजना एक दिन इनके जीवन को छूकर उसमें से उस तेज को खोज निकालेगी जिसकी देश को और देशवासियों को आवश्यकता है। इनका जीवन और देश का मानचित्र दोनों एक साथ बदलेंगे।

••

आग: पानी

• लक्ष्मीकान्त शर्मा 'ललित'

एक ओर आग, दूसरी ओर पानी। एक दिन पानी ने आग से कुछ कहा 'आग! क्या तुझे निगल जाऊँ?' आग ने उत्तर दिया 'मैं भी तुझे निगल जाऊँगी' दोनों लड़ बैठे। पानी ने आग को पीकर दर्द बढ़ा लिया। आग ने पानी को सुखाकर प्यास बढ़ाली। बचा क्या शेष इस संघर्ष से। केवल दर्द और प्यास जिसका नाम जिन्दगी पड़ गया है।

••

द्रौपदी का पुनर्जन्म

• [illegible] आर्य

[illegible] आसन [illegible], [illegible] पर [illegible] के पारायण में [illegible] आचार्य से एक जिज्ञासु ने कहा—"हे देव ! [illegible] [illegible] [illegible] भगवान कृष्ण ने उसे क्या [illegible] किया था ?"

श्री आचार्य बोले—"हे महाभाग ! तुमने निश्चय ही उत्तम प्रश्न किया है । जो प्रसंग दिव्य दृष्टि सम्पन्न संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को सुनाया था और जिसको स्वयं भगवान कृष्ण ने कृपा [illegible] कर वेदव्यास जी को कहा था वही आज मैं तुमको सुनाता हूँ । तुम मन लगाकर सुनो ।"

"हरे............।"

श्री आचार्योवाचः—श्री आचार्य बोले, हे जिज्ञासुओं ! देवी द्रौपदी नन्द-नन्दन कमलनयन केशव की परम भक्त थी । भगवान कृष्ण को वह भ्राता ही मानती थी । महाभारत में, जैसा आपने सुना—कृष्ण ने अपनी बहन के प्रत्येक अपमान का प्रतिकार लिया, उसके शील और सम्मान की रक्षा की और उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण की थीं । जब द्रौपदी का अन्तिम समय आया तो उसने अपने उपास्य देव का ध्यान किया । भगवान कृष्ण उसी समय प्रकट हुए और द्रौपदी से बोले—हे द्रौपदी, कहो आज क्यों याद किया है ?" द्रौपदी ने भगवान के चरणों में प्रणाम कर कहा—भैया ! अन्तिम समय में भाई का आशीर्वाद मिल जावे यही इच्छा है ।

"हरे" !

सो हे भक्त जनों ! द्रौपदी की यह बात सुनकर चक्रपाणि चाणूर-निकंदन कृष्ण चन्द्र ने कहा—बहन ! आशीर्वाद तो तुम्हें सदैव ही मिलता रहा है—आज अवश्य ही कोई विशिष्ट इच्छा होगी । अतः निःसंकोच मुझसे कहो ।

"हरे" !

द्रौपदी उवाचः—द्रौपदी बोली हे अशरण-शरण, कृपासिन्धु, दीनबन्धु यदि पूर्ण हो सके तो आज अपनी बहन की अन्तिम इच्छा और सुन लो। मैं राजपुत्री हूँ। सदैव मेरा लालन-पालन स्नेह और सम्मान के साथ हुआ है। सुशिक्षित और सयानी होने पर स्वयंवर हुआ। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार राज्यहीन अर्जुन के साथ मुझे विवाह-सूत्र में बंधना पड़ा। मैंने यह भी सहर्ष स्वीकार किया। ससुराल के जिन सुहावने सपनों को मैंने पलकों के परदे में संजोया था उन्हें आंसुओं के साथ मुझे पी जाना पड़ा। पति की पर्ण-कुटी के द्वार का दर्शन करते ही मुझे मातृ-भक्ति के प्रसाद से एक के स्थान पर पाँच पतियों को समर्पित होना पड़ा। मेरे वास्तविक पति ने यह व्यवस्था मूक बनकर नतमस्तक हो स्वीकार करली और मैंने उनके चरणों का शान्त अनुसरण किया।

मानसिक और सामाजिक इस विषम स्थिति में भी मैंने अपना पतिव्रत धर्म किस प्रकार निभाया—इसे मैं ही जानती हूँ। अपने घर की बात प्रकट करना पाप है, किन्तु मैं चाहती हूँ कि कभी न कभी संसार मेरी इस मूक मनोव्यथा को समझले। एक पति की आधीनता भी जब वस्तुतः अधीनता ही होती है तो पाँच पतियों की आधीनता कैसी कष्टकर होती है, इसे जगत जान तो ले, ताकि फिर एक से अधिक का स्वामित्व किसी को प्राप्त न हो। साथ ही अब मैं इस योनि से घबरा गई हूँ। अतः अब यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं पुरुष बनूं। यही मेरी अन्तिम इच्छा है"

"हरे !"

श्री आचार्य बोले–हे सज्जनो ! द्रौपदी के इस प्रकार की करुण-कथा सुनकर भक्त वत्सल भगवान का सदय-हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने एवमस्तु तो कह दिया किन्तु एक क्षण गम्भीर विचार में डूब-से गये। भगवान ने कहा बहन द्रौपदी ! तेरी यह इच्छा भी पूरी होगी, किन्तु मुझे एक बात स्पष्ट रूप से बताओ कि तुम्हारे पाँचों पतियों की प्रकृति और तुम्हारे प्रति व्यवहार गृहस्थ जीवन में कैसा था ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कर सको तो करो।

सो, हे भक्त लोगों ! भगवान ने यह प्रश्न रहस्य से किया था। द्रौपदी को इधर मृत्यु की यम-यातना पीड़ित कर रही थी उधर अतीत की दुखद स्मृति से उसका मन खिन्न हो उठा था। इसीलिए रसिक शिरोमणि ने उसके चित्त को सुख पहुँचाने हेतु यह पूछा था। भगवान का प्रश्न सुनते ही द्रौपदी को अपने पतियों के स्नेह आदि का स्मरण हो आया और वह पीड़ा को भूलगई।

"हरे !"

द्रौपदी कहने लगी—भैया ! महाराज युधिष्ठिर को आप जानते हो—सीधे और सरल हैं। किसी को कड़वी बात कभी कहते नहीं। उन्हें अपनी लोक-

द्रौपदी उवाच:—द्रौपदी बोली हे अशरण-शरण, कृपासिन्धु, दीनबन्धु यदि पूर्ण हो सके तो आज अपनी बहन की अन्तिम इच्छा और सुन लो। मैं राजपुत्री हूँ। सदैव मेरा लालन-पालन स्नेह और सम्मान के साथ हुआ है। युधिष्ठिर और सयानी होने पर स्वयंवर हुआ। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार राज्यहीन अर्जुन के साथ मुझे विवाह-सूत्र में बंधना पड़ा। मैंने यह भी सहर्ष स्वीकार किया। अनुराग के जिन सुहावने सपनों को मैंने पलकों के परदे में संजोया था उन्हें आँसुओं के साथ मुझे पी जाना पड़ा। पति की पर्ण-कुटी के द्वार पर दर्शन करते ही मुझे मातृ-भक्ति के प्रभाव से एक के स्थान पर पाँच पतियों को समर्पित होना पड़ा। मेरे वास्तविक पति ने यह व्यवस्था मूक बनकर नतमस्तक हो स्वीकार करली और मैंने उनके चरणों का शान्त अनुसरण किया।

मानसिक और सामाजिक इस विषम स्थिति में भी मैंने अपना पतिव्रत धर्म किस प्रकार निभाया—इसे मैं ही जानती हूँ। अपने घर की बात प्रकट करना पाप है, किन्तु मैं चाहती हूँ कि कभी न कभी संसार मेरी इस मूक मनोव्यथा को समझले। एक पति की आधीनता भी जब वस्तुतः अधीनता ही होती है तो पाँच पतियों की आधीनता कैसी कष्टकर होती है, इसे जगत जान तो ले, ताकि फिर एक से अधिक का स्वामित्व किसी को प्राप्त न हो। साथ ही अब मैं इस योनि से घबरा गई हूँ। अतः अब यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं पुरुष बनूँ। यही मेरी अन्तिम इच्छा है"

"हरे !"

श्री आचार्य बोले—हे सज्जनो ! द्रौपदी के इस प्रकार की करुण-कथा सुनकर भक्त वत्सल भगवान का सदय-हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने एवमस्तु तो कह दिया किन्तु एक क्षण गंभीर विचार में डूब-से गये। भगवान ने कहा बहन द्रौपदी ! तेरी यह इच्छा भी पूरी होगी, किन्तु मुझे एक बात स्पष्ट रूप से बताओ कि तुम्हारे पाँचों पतियों की प्रकृति और तुम्हारे प्रति व्यवहार गृहस्थ जीवन में कैसा था ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कर सको तो करो।

सो, हे भक्त लोगों ! भगवान ने यह प्रश्न रहस्य से किया था। द्रौपदी को इधर मृत्यु की यम-यातना पीड़ित कर रही थी उधर अतीत की दुखद स्मृति से उसका मन खिन्न हो उठा था। इसीलिए रसिक शिरोमणि ने उसके चित्त को सुख पहुँचाने हेतु यह पूछा था। भगवान का प्रश्न सुनते ही द्रौपदी को अपने पतियों के स्नेह आदि का स्मरण हो आया और वह पीड़ा को भूलगई।

"हरे !"

द्रौपदी कहने लगी—भैया ! महाराज युधिष्ठिर को आप जानते हो—सीधे और सरल हैं। किसी को कड़वी बात कभी कहते नहीं। उन्हें अपनी लोक-

पांचवें पति थे सहदेव ! यह शीतोष्ण प्रकृति के थे। इन्हें कृषि से बड़ी रुचि थी—फसलों के कीड़े मारना, खाद तैयार करना, बीजों की पहिचान बताना और खेतों में घूमना इनकी चर्चा का मुख्य विषय था। कृषि तो जनता का प्राण है। अतः जन-साधारण उनसे कई कृषि-विषयों पर विचार विनिमय करने आते और धर्मराज उनके माध्यम से जन-जन से अपनापन प्राप्त करते। यही कारण था कि सहदेव धर्मराज को अधिक प्रिय थे। सबसे बड़े भाई के पास सबसे छोटे भाई का इस प्रकार बैठना-उठना भीम को अखरता और वह सहदेव के कार्य में भी कभी-कभी बड़ी बाधा पहुंचा देते। सहदेव समझते थे कि कृषि के समक्ष सारे ही विषय नगण्य हैं। शिक्षा का कोई मूल्य नहीं है। इससे मेरे मन पर बड़ी कड़ी ठेस लगती। लेकिन क्या करती भीम तो वृकोदर थे। उनकी अतिरिक्त पूर्ति तो सहदेव से ही होती थी। अतः वह भी उनसे कुछ नहीं कहते थे। मेरे प्रति उनके अनापेक्षित व्यवहार को देखकर भी नहीं देखते थे।……आगे भी हो भैया, यह कथा तो बहुत लम्बी है। आप तो अन्तर्यामी हैं। आप से क्या छुपा हुआ है। श्री आचार्य बोले—हे पुण्यवान नर-नारियों ! द्रौपदी इस प्रकार अपनी कथा कहकर रोने लगी। आनन्द कन्द भगवान कृष्णचन्द्र ने अपना हाथ बहिन के मस्तक पर धर कर कहा—कृष्णे ! तू सती है। पांच पतियों की पत्नी बनकर भी तू ने अलौकिक रूप से पतिव्रता धर्म का पालन किया है। मैं समझता हूं तेरी पीड़ा जब तक लोगों पर प्रकट नहीं होगी तुझे शान्ति नहीं मिलेगी। दुःख प्रकट होकर स्वतः समाप्त हो जाता है। अस्तु, अब शान्त होकर सुनो। पतिव्रत धर्म के पालन के प्रसाद में शत-शताब्दियों तक स्वर्ग के सुखों का पहले उपभोग करो।

जब भारत-भूमि पर स्वतन्त्रता का समीर सपनों का सौरभ यत्र-तत्र वितरित करेगा, आकाश स्वयं धरित्री का आलिगन करने झुकेगा तब पंच-तंत्र का प्रादुर्भाव होगा। उसी पुण्य वेला में तेरा जन्म भारती की कोख से होगा। तेरे ज्येष्ठ पति तब "प्रधान" के शुभ नाम से सम्बोधित होंगे। तेरे वास्तविक पति पार्थ विद्यालय-निरीक्षक के रूप में अवतरित होंगे। मध्यम (भीम) विकास अधिकारी के पद को सुशोभित करेंगे। पशुपालन-प्रसार अधिकारी नकुल के प्रतीक होंगे और कृषि-प्रसार अधिकारी के रूप में तुझे सहदेव का सामीप्य प्राप्त होगा और तू नारी नहीं अधिकारी होगी—शिक्षा प्रसार अधिकारी। तेरी यह इच्छा भी पूर्ण होगी। 'एवमस्तु'

भगवान के इस प्रकार एवमस्तु कहते ही द्रौपदी का निर्जीव पार्थिव शरीर उनके चरणों पर लुढ़क गया। भगवान अन्तर्धान हो गये।

इतिश्री शिक्षणारण्ये पंच-पुराणे द्रौपदी-पुनर्जन्म नाम्नः व्यंग्योपाख्यान समाप्त

विचार और भावना

• विश्वेश्वर शर्मा

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने जिस प्रकार मन और आत्मा को एक ही मान लिया है—आधुनिक राजनीतिज्ञों ने जिस प्रकार धर्म और राजनीति को एक ही मान लिया है—उसी प्रकार आधुनिक बुद्धि जीवियों ने विचार और भावना को भी एक ही मान लिया है।

तनिक विवेक से काम लें, तो स्थिति स्पष्ट होने लगती है। विचार का उत्पत्ति स्थल मस्तिष्क है, भावना का उद्गम हृदयस्थ। विचार एक आवेश है, भावना उन्मेष। विचार की पहुँच शब्द तक है, भावना की पहुँच अक्षर तक।

मोटे रूप में हम अपने ही आन्तरिक अनुभवों पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट दीखने लगता है कि प्रत्येक चेष्टा का भाव—पक्ष जब उभरता है तभी चेतना बुद्धि को विचारों के माध्यम से कृत-कृत्य होने की ओर अग्रसर करती है। विचार भावना के सेवक है, उसके संदेश वाहक मात्र हैं। भावना का साम्राज्य असीम है, सामर्थ्य अनन्त है, स्वरूप अज्ञेय है, किन्तु विचारों की एक सीमा है, विचार सामर्थ्य का एक अंत भी है और विचारों का स्वरूप भी निश्चित है।

विचार भाषा तथा लौकिक ज्ञान के आधार पर उठता है। भावनाएँ संस्कार तथा आन्तरिक अनुभूतियों के बल पर स्फुरित होती हैं।

इसीलिए विचार और भावना में परोक्ष रूप से सदा ही एक विरोधी भाव रहा है। विचार का क्षेत्र चिन्तन और भावना का क्षेत्र मनन है। चिन्तन में चिन्ता का अंश अधिक, मनन में मनस्वीतत्व की प्रचुरता है। विचार विद्वानों का धन है, भावना प्रज्ञावान कवियों की निधि।

सुख-दुख, प्रेम, दया, ममता, वात्सल्य, आशा-निराशा, श्रद्धा-भक्ति, विश्वास कुछ भावना के स्वरूप हैं। क्रोध, क्लेश, चिन्ता, अहंकार पश्चाताप, महत्वाकांक्षा आदि कुछ विचार के स्वरूप हैं।

राजस्थानी लोक नृत्य : तेरह ताल

• विश्वेश्वर शर्मा

आनन्द तथा उल्लास की अभिव्यक्ति मनुष्य की सहज वृत्ति है। ऋतु,पर्व, त्यौहार तथा विविध उत्सवों के अवसर पर मनुष्य मन की यह सहज वृत्ति तदरूप होकर हूक उठती है–थिरक उठती है।

आकाश में मेघों को घुमड़ते देखकर जिस तरह मयूर अपने आप पंख फैला कर झूमना आरंभ कर देता है, उसी प्रकार बासंती बयार आरंभ होते ही जन-जीवन का उल्लासित मन डफ पर थाप देने को तड़प उठता है—होठों पर अपने आप फाग आ जाती है। फसल पकते ही ग्राम्य जन-जीवन अपने आप उल्लास को प्रकट करने हेतु मचल उठता है। ढोल बजते ही ग्रामवासियों के पांवों में अपने आप थिरकन पैदा होती है और वे बढ़ चलते हैं, नृत्य स्थली की ओर। मेले लगते हैं और स्त्री-पुरुषों की टोलियां रंगबिरंगी पोशाकें पहने निकल पड़ती है, घरों से। सच ही, श्रम से बंधे मनुष्य की आत्मतुष्टि लोक-गीतों तथा लोक नृत्यों में ही सन्निहित है।

लोक नृत्य चाहे सामुहिक हो, व्यक्ति परक हों, सामाजिक अथवा पेशेवर हों, उनका एक मात्र उद्देश्य जन-जीवन को आनन्द से परिपूर्ण करना ही है। कुछ समय के लिए मनुष्य को जीवन की जटिलताओं से विलग करके आत्मा-नन्द की भूमि में ले जाना ही इनका प्रधान गुण है।

राजस्थानी लोक-नृत्यों में घूमर, गौरी-नृत्य, भवाई, गेर, ख्याल, कच्छी घोड़ी और तेरह ताल सभी ग्राम्य जीवन तथा ग्राम्य संस्कृति की आन्तरिक आनन्दाभिव्यक्ति के प्रतिरूप हैं। आदिम परम्परा और संस्कृति के संरक्षक हैं–पोषक हैं, युगों-युगों से थके-उदास जीवन के एकमात्र विश्राम स्थल हैं। धार्मिक, सामाजिक तथा साहसिक भावों को एक साथ प्रदर्शित करने वाला

भावना और विचार के इस मौलिक भेद से प्राय: जीवन बहुत भटकता है। भावना मनुष्य को संस्कारजन्य वृत्ति की ओर प्रेरित करती है। विचार मनुष्य को परिस्थितियों के अनुकूल ढल जाने की सलाह देता है। भावना सत्य का साक्षात्कार करती है, विचार तर्क से निरुत्तर करा देता है। अधिक भावुक हो गये तो पागल, अधिक विचारक हुए तो झक्की।

सामान्य जीवन भावना और विचार के समुचित समन्वय का नाम है। असामान्य व्यक्ति के इन तत्वों में भिन्नता होती है, जिस मनुष्य में विचार तत्व प्रबल होता है, वह बुद्धि के सहारे तथ्यों की खोज करता है। जिस मनुष्य में भाव तत्व प्रबल होता है वह अपनी आन्तरिक अनुभूतियों के बल पर मौलिक तथ्यों का सृजन करता है—भावना राह बनाती है, तब विचार उस पर चल पाता है।

अब लगभग यह स्पष्ट हो जाता है कि भावना का जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान है। भावनाहीन कोरे विचारवान जगत की कल्पना अब अच्छी तरह की जा सकती है। कोई किसी का साथी नहीं, कोई किसी का सगा नहीं। कोई रस, कोई आनन्द नहीं। सब यंत्रवत्।

जीवन में भावपक्ष यदि प्रबल रहा तो रामराज्य की स्थिति अनायास ही उभर आती है।

भावना और विचार कुसंस्कार, विपरीत परिस्थिति तथा अवैज्ञानिक शिक्षा से दूषित हो जाते हैं। विचारों का दोष दूर करने के लिए सरल मार्ग हैं; लेकिन भावना के दोष निवारण के मार्ग बड़े कठिन हैं। चित्त निर्मल किये बिना भावनाएँ शुद्ध नहीं होतीं और चित्त शुद्ध करने के लिए सत्यारूढ़ होना पड़ता है, जो अत्यन्त कठिन है। इससे सरल उपासना मार्ग पड़ता है। श्रद्धा-विश्वास पूर्ण इष्ट साधना से चित्त निर्मल हो जाता है और इस प्रकार भावना स्वत: शुद्ध होती चली जाती है।

शुद्ध किये हुए विचार और शुद्ध की हुई भावना ही कल्याणकारी रचना है। जब तक मनुष्य अपने अन्तस्तल को टटोल कर प्रबल तत्व को विशुद्ध करने की ओर अग्रसर नहीं होता तब तक सिद्धि–लाभ आकाश दीप ही है।

विश्व के सभी धर्म ग्रंथों में अध्ययन तथा उपासना पर अधिक बल दिया गया है। स्पष्ट है, इन दोनों उपायों से विचार और भावना का शुद्धीकरण स्वत: ही हो जाता है और इस प्रकार अनजाने ही जीवन प्रगति के पथ पर द्रुतगति से अग्रसर हो जाता है।

••

राजस्थानी लोक नृत्य : तेरह ताल

• विश्वेश्वर शर्मा

आनन्द तथा उल्लास की अभिव्यक्ति मनुष्य की सहज वृत्ति है। ऋतु,पर्व, त्यौहार तथा विविध उत्सवों के अवसर पर मनुष्य मन की यह सहज वृत्ति अदम्य होकर हूक उठती है–थिरक उठती है।

आकाश में मेघों को घुमड़ते देखकर जिस तरह मयूर अपने आप पंख फैला कर झूमना आरंभ कर देता है, उसी प्रकार वासती बयार आरंभ होते ही जन-जीवन का उल्लासित मन डफ पर थाप देने को तड़प उठता है—होठों पर अपने आप फाग आ जाती है। फसल पकते ही ग्राम्य जन-जीवन अपने आप उल्लास को प्रकट करने हेतु मचल उठता है। ढोल बजते ही ग्रामवासियों के पांवों में अपने आप थिरकन पैदा होती है और वे बढ़ चलते हैं, नृत्य स्थली की ओर। मेले लगते हैं और स्त्री-पुरुषों की टोलियां रंगबिरंगी पोशाकें पहने निकल पड़ती है, घरों से। सच ही, श्रम से बंधे मनुष्य की आत्मतुष्टि लोक-गीतों तथा लोक नृत्यों में ही सन्निहित है।

लोक नृत्य चाहे सामूहिक हो, व्यक्ति परक हों, सामाजिक अथवा पेशेवर हों, उनका एक मात्र उद्देश्य जन-जीवन को आनन्द से परिपूर्ण करना ही है। कुछ समय के लिए मनुष्य को जीवन की जटिलताओं से विलग करके आत्मानन्द की भूमि में ले जाना ही इनका प्रधान गुण है।

राजस्थानी लोक-नृत्यों में घूमर, गौरी-नृत्य, भवाई, गेर, ख्याल, कच्छी घोड़ी और तेरह ताल सभी ग्राम्य जीवन तथा ग्राम्य संस्कृति की आन्तरिक आनन्दाभिव्यक्ति के प्रतिरूप हैं। आदिम परम्परा और संस्कृति के संरक्षक हैं–पोषक हैं, युगों-युगों से थके-उदास जीवन के एकमात्र विश्राम स्थल हैं। धार्मिक, सामाजिक तथा साहसिक भावों को एक साथ प्रदर्शित करने वाला

राजस्थानी लोक नृत्य तेरह-ताल मरुभूमि के निवासियों का प्रियतम लोक नृत्य है।

कामड़ नामक पेशेवर नृत्य जाति की स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला यह प्रभाव पूर्ण नृत्य अपनी विविध विशेषताओं तथा सूक्ष्म ध्वन्यात्मक भावाभिव्यक्तियों के कारण हर किसी के मन को बलात् अपनी ओर खींच लेता है। नर्तकी की तन्मयता के साथ दर्शक की तन्मयता इसका चमत्कार है।

मारवाड़ के किसी भी देवस्थान अथवा मेले में मजीरों की ध्वनि सुनाई दे तो समझ लीजिए तेरहताल जम रहा है।

देवस्थान के देवता के सम्मुख धूप जल रहा होगा। कामड़ पुरुष चौतारा हाथ में लिये किसी निर्गुणी भजन को गा रहा होगा। ढफली या चौतारे के तूम्बे पर ही ठेका लग रहा होगा और अपने शरीर के विभिन्न भागों पर तेरह विविध मजीरे बाँधकर, मस्तक पर जलते हुए दीपक का छेदों वाला कलश रख कर, लम्बे घूंघट के पल्लू से नंगी तलवार दांतों के बीच दबाए कामड़ स्त्रियाँ देह को मोड़ती हुई हाथों के मजीरे घुमा-घुमा कर शरीर पर बंधे अन्य मजीरों पर अनवरत तालें दिये जा रहीं होगीं। पाँवों में अंगूठा और उंगली के बीच, पिंडली के नीचे, कलाई पर बाहुओं पर दोनों कंधों पर और किसी किसी के मस्तक पर कुल तेरह मजीरे बँधे होंगे और चंचल हाथों की डोरियों में लगातार मजीरा-जोड़ियाँ घूमती हुई विविध ध्वनियाँ निकाल रही होंगीं। इतने अन्दाज़, इतने सन्तुलन और ऐसे सूक्ष्म झटके से ये मजीरे बजते हैं कि लगता है नर्तकी गीत को तथा अपने हृदयस्थ मनोभावों को उन ध्वनियों के माध्यम से साकार कर देना चाहती है। जैसे मजीरों को वाणी प्राप्त हो गई हो—वे गा रहे हों और उन्हीं के गीत पर नर्तकी का अंग-अंग झूम रहा हो।

घूंघट निकाल कर विशेष मुद्रा में बैठी हुई स्त्रियों की सारी मनोभावनाएँ इन मजीरों में समा जाती हैं। मजीरों के साथ नर्तकियों का कुछ ऐसा मानसिक समन्वय हो जाता है कि उनसे निकलती तेज़-कम ध्वनियाँ अनेक सूक्ष्म भावाभिव्यक्तियों को साकार करती प्रतीत होती हैं।

पुरुष तम्बूरा या चौतारे पर एक हाथ की उंगली झनझनाता है और दूसरे हाथ से चौतारे के तूम्बे पर ताल ठोकता हुआ गाता जाता है—'खम्मा-खम्मा-खम्मा रे कंवर अजमाल रा अथवा धन-धन भगती घना जाट की' या किसी सन्त का निर्गुणी भजन और स्त्रियाँ उस धुन पर मंजीरों की छटा बाँध देती हैं। लोग डूब जाते हैं अपने देवता की भक्ति में। गीत के साथ तो फिर भी एक भाव विशेष की लय में डूबे हुए मजीरे बजते हैं, लेकिन गीत के बाद

जब केवल चौतारा ही झनझनाता रहता है और नर्तकियाँ द्विगुण-तिगुण में आती हैं तो आंख नर्तकियों के हाथों के मजीरों की गति देख नहीं पाती, केवल टिन्-टिन्, छिन्-छिन् की ध्वनियाँ वायुमंडल को बाँध-सा देती है। उल्लास से भरा गायक बार-बार किलकारियाँ मारता है, हुंकारें भरता जाता है। देखने वाले झूम-झूम उठते है।

वैसे तेरह ताल एक आराधना प्रधान नृत्य है और खास तौर से शास्त्य आराधना इसके मूल मे है। लेकिन नृत्य के दौरान स्त्रियाँ विविध दैनिक जीवन के कर्मों का बड़ी कुशलता से प्रदर्शन करती जाती हैं और यह प्रदर्शन भी मजीरों की घुमावट और अन्य मजीरो से उनकी टकराहट के अन्तर्गत ही होता जाता है। कभी वे दही मथने का भाव दर्शाती हैं, कभी चरखा चलाने का, कभी पानी पीने का, पानी भरने का, आटा गूथने का और रोटी पकाने का अपने दैनिक कार्यक्रम के विविध रूपो का प्रदर्शन वे अपने नृत्य के दौरान दिखाती हैं। पुरुष अपनी भाषा मे इन भावो का अर्थ भी दर्शकों को समझाता है। पूरी-पूरी रात नृत्य चलता रहता है। तम्बूरा बजता रहता है, भजन होते रहते हैं और मजीरे टन्टनाते रहते हैं। तेरह ताल के लिये कहा है—

नो मण सुरमा सार के तेरा तालड़ी
के टूटेगी दूज के बणिया की पालड़ी।

नौ मन सुरमा सार कर भी सुन्दरियाँ तेरह ताल के सौन्दर्य की तुलना में फीकी ही लेगेंगी। तेरह ताली शुरू होगी तो उसके सौन्दर्य से लज्जित होकर द्वितिया चन्द्रमा को छवि दिखाने से पूर्व ही टूट जाएगी। मनों अनाज तोलने वाले बनिये की तराजू भी स्थिर हो जाएगी।

इतना चंचल, इतना सन्तुलित और ऐसा गतिमय यह ध्वनि प्रधान नृत्य होता है कि आँख झपकाना मुश्किल। विद्युत गति से चलते हैं हाथों के मजीरें। देखते ही बन आता है। आश्चर्य होता है, ऐसा कलात्मक नृत्य ये स्त्रियाँ कहाँ सीखी होंगी। लेकिन कामड़ स्त्रियों को यह नृत्य कहीं सीखना नहीं पड़ता, यह कला इन्हें परम्परागत प्राप्त होती रहती है। माँ को तेरहताल नाचते देख-देख कर बेटी भी स्वयं ही पारंगत हो जाती है। निश्चय ही किसी अन्य के लिए यह सीखना कठिन ही है।

अपनी चंचलता और मोहकता के कारण यह नृत्य शहरी जन-जीवन में भी बहुत लोक-प्रिय हुआ है। और मारवाड़ की सीमाएँ छोड़कर गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा दक्षिण तक भी फैलने लगा है। अन्य प्रान्तों के लोग इसे अत्यधिक आश्चर्य तथा कुतूहल से देखते हैं और भाव-विभोर हो

उठते हैं, लेकिन राजस्थान का तो यह प्राचीनतम धार्मिक नृत्य है और लोग यह मानते हैं कि नाचते-गाते समय कामड़ स्त्रियों और पुरुषों में देवी-देवता का अंश कार्यरत रहता है।

कुछ भी हो, यह सच है कि तेरहताल अपनी ताल-लय और चंचलता के कारण राजस्थानी लोक नृत्यों की शीर्षस्थ पंक्ति में अपना विशेष स्थान रखता है और एक सम्पन्न लोक संस्कृति का परिचायक है।

••

ऐसे भी लोग होते हैं

• मदनलाल शर्मा

मनुष्य के जीवन में, कुछ ऐसी घटनाएं भी घट जाती हैं, जिनसे सम्बन्ध रखने वाले प्रधान पात्रों का आकस्मिक स्मरण होते ही, मनुष्य को अपनी हंसी पर क़ाबू पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

यही कारण है कि कई बार मनुष्य, एकान्त में बैठा-बैठा ही, किसी ऐसी ही हास्य घटना के आकस्मिक याद आ जाने पर, खिल-खिला कर हसने लग जाता है। वास्तव में प्रत्येक हास्य घटना का किसी व्यक्ति विशेष से संबंध होता है। उसी व्यक्ति को उस घटना का मुख्य नायक कहा जा सकता है। जब कभी भी हास्य घटना के मुख्य नायक के चेहरे का वास्तविक या काल्पनिक प्रतिबिम्ब, मनुष्य के मस्तिष्क में बनता है, ठीक उसी समय हंसी का फूट पड़ना स्वभाविक होता है।

ऐसे ही, अपनी आकस्मिक हंसी के कुछ केन्द्र बिन्दु नायकों का परिचय मैं अपनी इस मूल रचना में प्रस्तुत कर रहा हूं।

मेरे एक परिचित अध्यापक किस्तूरीलाल जी अपनी ५८ वर्ष की लम्बी आयु तक सरकारी नौकरी के बाद अभी इसी वर्ष रिटायर हुए हैं। अध्यापक क्या हैं, वास्तव में दुर्भाग्यों और अपशुगनों की एक मात्र जीती-जागती प्रतिमा हैं! मैं कभी भी शुभ या अशुभ शकुनों पर विश्वास नहीं करता था, परन्तु उनके सम्पर्क में केवल एक वर्ष रहने के बाद, मैंने तो क्या उनके सभी परिचित लोगों ने अच्छी प्रकार से यह अनुभव कर लिया है, कि वास्तव में शुभ या अशुभ शकुनों का बहुत गहरा संबंध व्यक्ति विशेष से अवश्य होता है।

किस्तूरीलाल जी एक महान अपशकुनी तथा दुर्भाग्यशाली आदमी हैं। वास्तव में अपने अनुभव के आधार पर प्रत्येक आदमी इस निर्णय पर पहुँचता है, कि किस्तूरीलाल जी की केवल झलक मात्र ही बनते-बनते कार्य में बाधा

बनकर उपस्थित होती है। वह स्वयं भी अपने आपको दुर्भाग्यों का गट्ठर कहते हैं। प्रायः उनके मुंह से यही सुना जाता है "जहाँ-जहाँ चरण पड़े सन्तन के, हो जाए बंटा ढाल" हर आदमी को ग़लत सलाह देना और उल्टे मार्ग की ओर संकेत करना, उनका जन्म सिद्ध मन्त्र है। उन्होंने अपने जीवन में शायद ही किसी को ठीक सलाह दी हो! इसलिये प्रायः लोग उनका वास्तविक परिचय हो जाने के बाद, उनसे गज़ों दूर रहने का प्रयास करते हैं, क्योंकि कुछ समय उनके समीप रहने के बाद वे जान जाते हैं कि ऐसे आदमी की मित्रता और शत्रुता दोनों में ही सवालाख का घाटा है। परन्तु किस्तूरीलाल जी स्वयं दूसरों से परिचय स्थापित करने में उच्चकोटी के निपुण खिलाड़ी हैं। अपने काले कारनामों के लिये यदि उन्हें अपने किसी व्यस्त दिन में समय न मिले तो वह अपने चुने हुए सलाह पात्र का घर ढूंढनें हेतु तथा चीनी से बनी अपनी विष की गोली उसके गले के नीचे उतारने के लिये, पूरे दिन की 'कैंजुअललीव' भी ले लेना वह अपना कर्तव्य मानते हैं।

अपने घर से बाहर कदम रखते ही, उनका मस्तिष्क स्वार्थ के समुद्र में, गहरे गोते लगाने लगता है। "अमुक आदमी के पास जाऊँगा। वह मुझे अमुक वस्तु खिलाएगा। आती बार अमुक वस्तु उससे मागूंगा।" बस यही घर से बाहर आने पर उनके मस्तिष्क का विचार-चक्र रहता है। एक बार मेरे घर चले आए। मैं उस समय अपने घर के किचन गार्डन में पौधों को पानी दे रहा था। कुछ देर मेरे पास खड़े-खड़े इधर-उधर की फालतू बातें करते रहे। अचानक उनका ध्यान एक क्यारी में लगी बैंगन की पौध पर गया। तुरन्त १० पौधों की मांग कर बैठे। मैने उन्हें काफी समझाया कि पौधे अभी छोटे हैं और स्थानान्तरण करने योग्य नहीं हैं, परन्तु वह, यह बात कैसे मान सकते थे। उनके अधिक हट करने पर, मैंने १० की जगह १५ पौधे उन्हें, पौधों की जड़ों में गीली मिट्टी लगाकर दे दिये। और उन्हें तुरन्त घर जाकर निश्चित स्थान पर लगा देने की हिदायत की। उनको पहले तो कुछ दुःख हुआ, क्योंकि वह तो मेरे घर ही खाने-पीने का दृढ़ सकंल्प करके, अपने घर से बाहर निकले थे। परन्तु पौधों के लालच ने उनकी जीभ पर लगाम दे दी, और वह उसी समय वहाँ से अपने घर की ओर प्रस्थान कर गए। घर जाकर उन्होंने एक क्यारी में उन छोटे-छोटे पौधों को लगाकर सिंचाई कर दी। लगभग एक सप्ताह बाद, उस क्यारी में अनेक छोटे-छोटे खरपतवार भी निकल आए। किस्तूरीलाल जी को बैंगन और धतूरे के पौधों का ज्ञान नहीं था। इसलिए गुड़ाई करते समय उन्होंने बैंगन के सभी पौधों को तो उखाड़ दिया और धतूरे के पौधों का खूब अच्छी तरह पालन पोषण करने लगे। प्रतिदिन

कृषक की उदारता :

जब वह खेतों यज्ञ का संपादन करता है, उस समय उसके मुख पर अपूर्व प्रसन्न के दर्शन होते हैं। हृदय मे गंभीरता, वाणी में मृदुता और जीवन में अनोखे धैर्य के स्रोत अजस्र प्रवाह पाते हैं।

पक्षियों का आतंक :

उन मैदानो में छोटे-मोटे खलिहानों का दृश्य आकर्षक होता है। उस आकर्षण से न जाने कितनी ही परिस्थितियां खिची चली आती हैं। खलिहानों को देख कर असंख्य पक्षियों के मुँह में पानी भर आना स्वाभाविक है। वे खेतों खलिहानों के आस-पास मँडराते हुए अवसर पाकर अपना काम सीधा करते ही पुनः निकट के पेड़ों पर बैठकर दाना चुगने की प्रतीक्षा करते हैं।

पशुओं से हानि :

कदाचित् किसान की अल्प अनुपस्थिति में वहाँ बँधे रहने वाले गाय-बैल आदि भी खुल जाने पर हानि पहुँचा देते हैं।

भिखारियों का आगमन :

खलिहानों मे सदैव भिखारियों का ताँता लगा रहता है। कृषक उन सब को यथाशक्ति भरपूर दान देता है। वहाँ कृषक की दानशीलता दर्शनीय होती है। लेकिन हमें दुख होता है उसकी उदारता पर, उसके बहुमूल्य श्रम पर और धन का व्यर्थ ही दुरुपयोग होता देखकर। सहसा स्मरण हो आता है कि दानशील ऋषि अपने महत्वपूर्ण अंतिम यज्ञ को पूरा करते समय दानवों (राक्षसो) का हाहाकार मिटाने के लिए उन्हे यथोचित हवि प्रदान कर रहे हैं।

विभिन्न पारिश्रमिक :

कृषक के सहयोगी, समय-समय पर काम आने वाले लुहार, सुथार, चमार आदि को भी उनका पारिश्रमिक वहीं से दिया जाता है।

प्रकृति का प्रकोप :

कभी-कभी तो कृषकों को प्रकृति की विडम्बना का डट कर सामना करना पड़ता है। जब वे अपनी फसल के ढेर को बैलो आदि से कुचलवा कर माद (भूसा और अन्न का मिश्रित ढेर) तैयार कर लेते हैं, तब एकाएक हवा के बन्द हो जाने पर उन्हें सतर्क प्रहरी के रूप मे कई दिन यो के यो व्यतीत करने होते हैं। कभी-कभी आधी माद साफ कर लिए जाने पर भी हवा बन्द हो जाती है। तब अन्न और माद दोनों की रखवाली करना बड़ा कष्ट साध्य कार्य है। ये अवसर कभी-कभी भयंकर भी बन जाते हैं। जब आकाश में एकाएक बादल उमड़ कर ओले और वर्षा की झड़ी लगा देते हैं। वहाँ कृषकों की स्थिति देखी नही जा सकती। उनकी निरीह आँखें मर्मान्तिक करुणा से अपना विनाश देखती हैं और हृदय अवसादमग्न हो जाता है। मानो कृषक

ग्राम्य जीवन का मेरुदंड

• जगदीशचन्द्र शर्मा,

जब गाँवों के समीप खलिहान डाले जाते हैं, तो फसल की जिन्दगी का एक नया अध्याय आरम्भ होता है, जिसका महत्व प्राचीन ऋषि-मुनियों के द्वारा किए जाने वाले सौवें यज्ञ के समान है। जैसे ही निन्यानवे यज्ञ पूरे होते कि अंतिम यज्ञ 'अंतिम कसौटी' बन जाता था। उसी में विघ्नों का सर्वाधिक प्रकोप होता। फलतः यज्ञकर्ता अधिक सतर्क रहते थे, क्योंकि यही समय सफलता और भविष्य की उज्ज्वलता का प्रतीक था। इसी तरह खलिहान भी कृषकों के लिए फसल के प्रति अपने श्रम के द्वारा किए गए निन्यानवे यज्ञ पूरे किए जाने पर आशा और उल्लास का प्रतीक सौवाँ महत्वपूर्ण यज्ञ है।

फसल की यज्ञ-शृंखला :

फसल की शत-यज्ञ शृंखला का प्रथम यज्ञ खेत जोतना है। इसके बाद बीज बोना, पानी सिंचाना, निराई-गुड़ाई करना आदि अनेक यज्ञ क्रमशः चला करते हैं। इन यज्ञों में भी कृषक यज्ञकर्ता को विभिन्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है; जैसे, उचित समय पर बीज बोना, निश्चित समय पर पानी सिंचाना और ठीक समय पर निराई-गुड़ाई करना....... यदि इसमें कुछ विलंब हो जाए तो काफी हानि उठानी पड़ती है। अतएव कृषक को निरंतर सतर्क रहते हुए, कष्टों का सामना करते हुए [illegible] [illegible] पड़ता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बन जाता है।

कृषक की उदारता।

जब वह सौवें यज्ञ का संपादन करता है, उस समय उसके मुख पर अपूर्व पराक्रम के दर्शन होते हैं। हृदय में गंभीरता, वाणी में मृदुता और जीवन में अनोखे शौर्य के स्रोत अजस्र प्रवाह पाते हैं।

पक्षियों का आतंक :

उन मैदानों में छोटे-मोटे खलिहानों का दृश्य आकर्षक होता है। उस आकर्षण से न जाने कितनी ही परिस्थितियां खिची चली आती हैं। खलिहानों को देख कर असंख्य पक्षियों के मुंह में पानी भर आना स्वाभाविक है। वे खेतों खलिहानों के आस-पास मंडराते हुए अवसर पाकर अपना काम सीधा करते ही पुनः निकट के पेड़ों पर बैठकर दाना चुगने की प्रतीक्षा करते हैं।

पशुओं से हानि :

कदाचित् किसान की अल्प अनुपस्थिति में वहाँ बंधे रहने वाले गाय-बैल आदि भी खुल जाने पर हानि पहुँचा देते हैं।

भिखारियों का आगमन :

खलिहानों में सदैव भिखारियों का तांता लगा रहता है। कृषक उन सब को यथाशक्ति भरपूर दान देता है। वहाँ कृषक की दानशीलता दर्शनीय होती है। लेकिन हमें दुख होता है उसकी उदारता पर, उसके बहुमूल्य श्रम पर और धन का व्यर्थ ही दुरुपयोग होता देखकर। सहसा स्मरण हो आता है कि दानशील ऋषि अपने महत्वपूर्ण अंतिम यज्ञ को पूरा करते समय दानवों (राक्षसों) का हाहाकार मिटाने के लिए उन्हें यथोचित हवि प्रदान कर रहे हैं।

विभिन्न पारिश्रमिक :

कृषक के सहयोगी, समय-समय पर काम आने वाले लुहार, सुथार, चमार आदि को भी उनका पारिश्रमिक यहीं से दिया जाता है।

प्रकृति का प्रकोप :

कभी-कभी तो कृषकों को प्रकृति की विडम्बना का डट कर सामना करना पड़ता है। जब वे अपनी फसल के ढेर को बैलों आदि से कुचलवा कर माद (भूसा और अन्न का मिश्रित ढेर) तैयार कर लेते हैं, तब एकाएक हवा के बन्द हो जाने पर उन्हें सतर्क प्रहरी के रूप में कई दिन यों के यों व्यतीत करने होते हैं। कभी-कभी आधी माद साफ कर लिए जाने पर भी हवा बन्द हो जाती है। तब अन्न और माद दोनों की रखवाली करना बड़ा कष्ट साध्य कार्य है। ये अवसर कभी-कभी भयंकर भी बन जाते हैं। जब आकाश में एकाएक बादल उमड़ कर ओले और वर्षा की झड़ी लगा देते हैं। वहाँ कृषकों की स्थिति देखी नहीं जा सकती। उनकी निरीह आँखें मर्मान्तिक करुणा से अपना विनाश देखती हैं और हृदय अवसादमग्न हो जाता है। मानो कृषक

ग्राम्य जीवन का मेरुदंड

* जगदीशचन्द्र शर्मा,

जब गाँवों के समीप खलिहान डाले जाते हैं, तो फसल की जिन्दगी का एक नया अध्याय आरम्भ होता है, जिसका महत्व प्राचीन ऋषि-मुनियों के द्वारा किए जाने वाले सौवें यज्ञ के समान है। जैसे ही निन्यानवे यज्ञ पूरे होते कि अंतिम यज्ञ 'अंतिम कसौटी' बन जाता था। उसी में विघ्नों का सर्वाधिक प्रकोप होता। फलतः यज्ञकर्ता अधिक सतर्क रहते थे, क्योंकि यही समय सफलता और भविष्य की उज्ज्वलता का प्रतीक था। इसी तरह खलिहान भी कृषकों के लिए फसल के प्रति अपने श्रम के द्वारा किए गए निन्यानवे यज्ञ पूरे किए जाने पर आशा और उल्लास का प्रतीक सौवाँ महत्वपूर्ण यज्ञ है।

उज्ज्वलता का गौरव

• [illegible]

भाँति-भाँति के विविध, चित्र-विचित्र वर्णों के कुसुम आकर्षक सज्जा में विराजमान थे। चटक रंग के एकवर्णी पुष्प भी थे और बहुवर्णी भी। लघु-काय भी थे और दीर्घकाय भी। प्रदर्शिनी का समय बीत चुका था और वहाँ सुमन समूह ही रह गया था; अपनी शोभा आप निरखने-परखने के लिए। तब लगा कि वातावरण में एक हलकी गुरनि फैलने लगी। निशा का नीरव, निविड़ साम्राज्य छाने लगा। हठात् बहुवर्णी एक पुष्प ने चहुँ ओर निहारकर गर्व से मस्तक उन्नत किया। फिर नाक-भौं सिकोड़ कर बोला—

"ए वैधव्य वेशधारी, तू कौन है ?" एक ओर खिलती हुई चमेली के फूल अपने उज्ज्वल शुभ्र परिधान में झूल रहे थे। उनकी ओर इंगित कर पुनः वह रंगीन पुष्प बोला—

"इस रंगीन महफ़िल में इस विधवा सरीखे श्वेत वेशधारी को किसने आने दिया ?"

अन्य निर्गन्ध किन्तु चटक-मटक वाले पुष्पों ने समर्थन किया—"किसने आने दिया ?"

मोगरा मुसकुराया। 'बन्धु ! हम भी सुमन हैं।"

बहुवर्णी निर्गन्ध कुसुम गरजा। 'तेरी यह मजाल! छोटा मुँह बड़ी बात। इस विविध वर्णी विलायती पुष्पों में बेरंगों का क्या काम ?"

चमेली मृदु मुसकुरायी। 'बन्धु ! रंगीन परिधान मात्र ही तो सुन्दरता नहीं। हमारा चन्द्रिका-धवल वर्ण क्या वर्ण नहीं ?" रक्तपीत कृष्णाभ एक पुष्प विहँसा। "वाह ! श्वेत भी कोई वर्ण है ? वर्णसंकर कहीं का। चल भाग यहाँ से। इस रंगीन महफ़िल में तेरा क्या काम ?"

अन्य विविध वर्णाभरण धारी पुष्पों ने अनुमोदन किया। "श्वेत रंग भी कोई रंग है ? कोई शान नहीं। कोई मान नहीं। मानो चेहरे पर सफ़ेदी पोत

जीवन का हरा-भरा उपवन क्षण भर में मटियामेट हो चुका। पक्षियों का रुदन, पशुओं की चीत्कारें, वायुमंडल का हाहाकार और अपने लोगों का दुःख किसान के समक्ष भीमकाय निराशा खड़ी कर देते हैं। फिर भी वह इन सब दुःखों को दृढ़तापूर्वक सह लेता है।

अनुकूल प्रकृति के अनुसार कार्य :

अनुकूल हवा के चलने पर मादें खुशी-खुशी साफ़ कर ली जाती हैं। एक-एक माद को साफ करने में दो-दो व्यक्ति लगते हैं। एक व्यक्ति माद से टोकरी भर कर दूसरे को देता है, जो धरातल से कुछ ऊंचा, तिपाई पर खड़ा हुआ टोकरी को अपने हाथों में टेढ़ी लेकर धीरे-धीरे हिलाता-नचाता खाली कर देता है और क्रमशः दूसरी टोकरी लेता है। तिपाई के चरणों में टोकरी से गिरते हुए अन्न के दाने छन-छन करते हुए नाचते हैं। मानों तिपाई की पायल झनक रही हो। तिपाई के पास अन्न का स्वच्छ ढेर जमा होने लगता है और भूसा हवा के बहाव की ओर उसी से लगा रहकर अलग हो जाता है। मानो पूर्णिमा का चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा के इर्द-गिर्द चाँदनी छिटक रही हो।

चांदनी रात में खलिहान :

चांदनी रात में अधकचरे खलिहान चंदन के ढेर की तरह चमकते हैं। मादें स्वर्ण के ढेर की तरह दमकती हैं। जैसे जौ पीतल की तरह, ज्वार-बाजरा चाँदी की तरह एवं गेहूँ तांबे की तरह जगमगाते हैं। लेकिन चांदी, पीतल और तांबा महत्वपूर्ण हैं या खलिहान के ये विभिन्न रूप? हृदय में स्वाभाविक रूप से उठा हुआ प्रश्न समाधान चाहता है। इसके उत्तर में स्पष्ट है कि खलिहान जीवन युक्त है और धातुओं में इसका अभाव। अतः खलिहान का सर्व प्रिय महत्व इसे बहुत ऊँचा उठा देता है।

अंतिम खतरा :

अनेक उतार-चढ़ाव पार करने पर खलिहान-यज्ञ की पूर्णाहुति के समय एक विस्मयजनक घटना भी घट जाया करती है। जब रात को शुद्ध किए अन्न पर कृषक गहरी नींद सो जाता है, तो उसका बहुत-सा भाग चोर-डाकू उठा ले जाते हैं। मानों इन्द्र ने अंतिम यज्ञ का घोड़ा चुरा कर छिपा लिया हो।

सकुशल समापन :

खलिहान का सकुशल समापन होते ही कृषकजीवन में नई जाग्रति और नई उमंगें हर्ष का शंखनाद करने लगती हैं। परिणामस्वरूप ग्राम्य-जीवन तथा संबंधित लोक जीवन में समृद्धि का शुभागमन होता है, तभी तो खलिहान को ग्राम्यजीवन का एक प्रभावशाली पहलू कहा जाता है।

दार्जिलिंग की सैर

• राधाकृष्ण शास्त्री

असम यात्रा से लौटे सिर्फ पांच रोज ही हुये थे कि नवजीवन बीमा कम्पनी, जलपाईगुड़ी (बंगाल) के जनरल मैनेजर श्री बजरंगलालजी गुप्ता ने असम के राजस्थानी पर्यटक छात्रों के जत्थे का उत्साह व आतरिक लग्न देख दार्जिलिंग की सैर के लिए आमंत्रित कर लिया। हमारे स्कूल के अध्यक्ष श्री ....जी ने मुझे बुलाया और कहा, "पण्डितजी ! आपने असम में क्या जादू फैला दिया, जलपाईगुड़ी से आपको निमंत्रण आया है, घर बैठे गंगा आई है, स्नान करलो।" कम्पनी का खर्चा, सेठों का आग्रह, बच्चों का उत्साह व लग्न, दार्जिलिंग की सैर व मेरा पूर्ण मनोरथ सुन मैं आनन्द-विभोर हो, मन ही मन उस शक्ति को धन्यवाद दिया।

मैं सोलह बड़े-बड़े छात्रों को लेकर पलाशबाड़ी (कामरूप) से प्रस्थान कर पाण्डुघाट बस से उतरा, जहाँ पर्वत पर पाँचों पाण्डव, कुंती एवं श्रीकृष्ण की मूर्तियों के दर्शन किये।

पाण्डुघाट से अग्नि बोट द्वारा ब्रह्मपुत्र को पार कर अमीन गाँव पहुँचे। वहाँ से ट्रेन द्वारा बड़े स्टेशनों पर उतरते, खाते-पीते जलपाईगुड़ी पहुँचे, जहाँ जनरल मैनेजर साहब प्रतीक्षा कर रहे थे। वे छात्रों को देख बड़े खुश हुये तथा रसगुल्ले व समोसे खिलाने के बाद, पूर्व की गई असम यात्रा का हाल प्रत्येक छात्र से सुन कर प्रसन्न हुये। लम्बा सफ़र और रास्ते की थकावट के कारण हम लोग गहरी नींद सोये।

दूसरे रोज ११ बजे हम जलपाईगुड़ी से प्रस्थान कर ट्रेन द्वारा सिलीगुड़ी पहुँचे, मैनेजर साहब ने मनमस्त नौकर को ओढ़ने-बिछौने, खान-पान का सामान दे, साथ कर दिया। सिलीगुड़ी छोटा सा कसबा है। यहां से पहाड़ की चढ़ाई शुरू होती है। दार्जिलिंग के लिए दो रास्ते हैं। एक मोटर से, दूसरा ट्रेन से। हम लोग ट्रेन से चले। रेल के छोटे-छोटे डिब्बे जिनके ...

दो इंजिन लगे थे। गाड़ी धीरे-धीरे रेंगते हुए जानवर की तरह चलने लगी। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते गये, ठंड भी मालूम पड़ने लगी। रास्ते में पर्वत और वृक्षों का नैसर्गिक सौन्दर्य अति रमणीय था। चारों ओर हरियाली ही हरियाली नजर आती थी। एक ओर तो सैंकड़ों फीट ऊँची पर्वत श्रेणी खड़ी है तो दूसरी ओर उतनी ही नीची घाटी। छोटे-छोटे पहाड़ी खेतों की पंक्तियाँ और लम्बे-लम्बे वृक्षों की निराली ही शोभा दिखाई देती है। यों प्रकृति-सौन्दर्य-रस का नयनों द्वारा पान करते हुये चले। सड़क, पहाड़ काटकर बड़ी विकट, टेढ़ी-मेढ़ी बनाई गई है। रास्ते में जगह-जगह घुमाव आते हैं, जहाँ गाड़ियों के टकराने का बड़ा भय रहता है। इसलिए बार-बार सीटी व हार्न देना पड़ता है। अगर जरा भी चूक जांय तो गाड़ी और सवारियों का कहीं पता न चले।

ज्यों-ज्यों ऊपर चले सर्दी सताने लगी। मैं पास ही पड़ी गठुर में से कम्बल को निकालने लगा और दार्जिलिंग पहुँचते-पहुँचते करीब ९ बजे रात तक दो कम्बल निकाल कर चौतर्फ लपेट लीं। मोटरें रास्ते में टकरा गईं अतः गाड़ी एक घण्टा देर से पहुँची। देरी हो जाने के कारण स्टेशन के पास वाली धर्मशाला के नीचे की तह में जगह मिली। उधर तो भूखे-प्यासे, इधर सर्दी के मारे ठिठुर गये। छात्रों ने तो बाहर निकल भोजन कर लिया, मगर मैं सर्दी के मारे इतना ठिठुर गया कि बाहर जाकर भोजन करने की हिम्मत न रही, अतः मैंने तो नीचे के तह में ही एक सेर दूध मंगा अपनी भूख की तृप्ति की। सर्दी अधिक थी अतः दो छात्रों को एक साथ सोने की योजना बनाई। नौकर ने मेरे ऊपर पाँच कम्बल डाल दिये और स्वयं चार कम्बल डाल सो रहा। मेरी सर्दी इन कम्बलों से नहीं गई, तब याद आई (कहावत) "सी जाय रुई से या सी जाय दूई से," मगर इस समय दोनों का ही अभाव था। मुझे पूरी नींद भी नहीं आई थी कि एक छात्र भंवरलाल के पसली में दर्द हो गया। वह चिल्लाने लगा, "हे माँ! मरारे! हे मा! मरा रे!" मुझे याद आया कि असम यात्रा में रङ्मल चाय बगान में सर्प के भयंकर काल के गाल में फंस गया था, उसी तरह आज भंवरलाल भी सर्दी के कारण ठिठुर कर मर रहा है। मैंने मेरे चारों कम्बलों को उस पर डाल, हाथ जोड़, माँ-शक्ति की प्रार्थना करने लगा कि 'मेरे घुल मरे हीरे की रक्षा कर।'

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवी नारायणि नमोऽस्तुते ॥

शरण में आये हुये दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सबकी पीड़ा दूर करने वाली नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार है। कुछ ही क्षण

से एक चमचमाते हुये आंखोंवाली एक बुढ़िया आई, और भंवरलाल के शरीर पर हाथ फेरते हुये कहा "बच्चा ! तू तो फंद (बहाना) करता है, मत घबराओ।" बुझते दीपक में तेल की तरह भंवरलाल स्वस्थ हो गया। रात के तीन बज चुके थे, मुझे झंप आ गई और वह बुढ़िया माँ कहाँ गई, पता ही नहीं चला। रात ज्यों-त्यों बिताई। सुबह जब हम लोग दूध पी रहे थे कि बीमा कम्पनी के एजेन्ट हमें ढूंढते-ढूंढते आ पहुँचे और कहने लगे, "रात को हमने आपको खूब ढूंढा, मगर आप नहीं मिले।" भोजन पश्चात् हम लोग सैर को निकले।

चारों ओर जाने के लिए रास्ते बने हैं। जगह-जगह पानी के नल हैं। बड़े-बड़े पहाड़ काट कर समतल किये गये हैं। जगह-जगह भांति-भांति के वृक्ष लगाये गये हैं। यद्यपि सैर करने के लिए सवारियाँ सुलभ हैं तथापि पहाड़ों पर तो पैदल ही घूमने का आनन्द अपना निराला है। मीलों जाइये थकावट का नाम नहीं। यदि थकावट मालूम हो तो जरा बैठो और शीतल, मंद, सुगन्ध हवा खाने से बहुत जल्द दूर हो जाती है। छात्र हंसते, खेलते, उछलते, कूदते हंसमुख चेहरों से जा रहे थे कि मनोहरजी (कम्पनी के एजेन्ट) ने दार्जिलिंग में Sun set point (सूर्यास्त बिन्दु) एवं Sun rise point (उदयकाल बिन्दु) दृश्य की रमणीयता, सुन्दरता व विशेषता बतलाई। सुनकर छात्रों ने आज ही Sun set point देखने की इच्छा प्रकट की।

भंवरलाल ने कहा—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयगी, फिर करोगे कब॥

चम्पालाल ने कहा—

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीतेव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

मनमस्त नौकर ने कहा—"पहाड़ की चढ़ाई विकट है, अब चल कर चढ़ना असम्भव है।" आज आराम करो।
मूलचन्द (स्काउट) ने कहा—"बिना सन्ध्या के दृश्य देखे आराम हराम है।"
लक्ष्मीचन्द ने कहा—"छात्रों की यही अर्जी, आगे गुरुदेव की मर्जी।"

छात्रों के उत्साह, उमंग व लगन को देख एवं उनके मधुर, अटपटे वैन सुन मैंने भी Sun set point के दृश्य को देखने का निश्चय कर लिया। अतः सब प्रसन्नता पूर्वक अनेक नालों को पार करते, वृक्षों के झुरमुटों और कभी लताकुञ्जों में होकर ऊँची चढ़ाइयां पर चढ़ते २ पसीने से लथपथ हो

गये, दम फूल गया, पैर जवाब देने लगे। छात्रों की गति अति मंद पड़-गई। हम एक स्थान पर बैठ गये। वहाँ के बर्फीले ठंडे जल, शीतल पवन और मनोहर दृश्य ने हमारी सारी शिथिलता दूर की और मन में एक उल्लास और उत्साह का संचार हुआ। हम सब आनन्द में इतने विभोर हो गये कि मार्ग की विकटता, वन्य पशुओं की भयानकता और शरीर की थकावट को एक दम भूल गये। हमने आह्लाद पूर्वक चारों ओर देखा। इधर-उधर हरियाली छायी हुई थी। ऊँची २ पहाड़ियाँ बर्फ से ढकी थीं।

छात्रों का मन प्रकृति-सौन्दर्य को देख उछल रहा था, आशा, उत्साह निरन्तर बढ़ रहे थे क्योंकि यह प्रकृति की सुरम्य रंग स्थली है। यहाँ की पर्वत मालाओं ने बड़ी उदारता पूर्वक सौन्दर्य बिखेर रखा है। रुई के रेशे से भाप के बादल हमारे सिरों को छू-छू कर बेरोकटोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अंधियारी में रंग के कभी वे पीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा देर में अरुण पड़ जाते मानों वे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे। ज्येष्ठ मास की लू से झुलसे हुये प्राणी के लिये यह हवा बड़ी ही आनन्ददायिनी थी। यहाँ के रंगबिरंगे फूल पत्तों से लदी वनस्थली पर्यटकों के मन को लुभा देती है, यह प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न है तभी तो दार्जिलिंग दर्शन की उमंग दिल में गुदगुदी पैदा कर देती है। यद्यपि हमलोग गर्मियों में गये तथापि वहाँ पौष, माघ की सी सर्दी पड़ती थी। अब हम लोग Sun set point पर पहुँचे संध्या का समय और डूबते हुये सूर्य की किरणें गजब ढा रही थीं। सूर्य एक लटकती हुई गेंद सा प्रतीत होता था। सूर्यास्त का दृश्य देख सब के चेहरे खिल उठे। देखते-देखते सूर्य एकदम गायब हो गया। प्रभु की विचित्र लीला का स्मरण कर मैंने प्रार्थना की:—

यन्मंडलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्।
यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलञ्च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥

जो संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा आदि में प्रसिद्ध है, जो संसार की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करने में समर्थ हैं; और जिसमें समस्त जीव (जगत्) लीन हो जाता है; वह सूर्य भगवान् का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे।

असम की राजधानी शिलांग की तरह ही यहाँ बड़े-बड़े बंगले बने हुये हैं। आने वाले पर्यटकों के लिये रहने के पूरे साधन हैं। जहाँ पर्यटक, धनीलोग एवं पादरियों के सम्पर्क में आये हुये इसाई कीमती वस्त्र पहन गुल-छर्रे उड़ाते हैं, वहाँ पहाड़ी लोग निर्धन हैं, भूखे हैं, तन पर कपड़ा नहीं है, फिर भी संतोषी हैं, ईमानदार हैं और मजबूत हैं। वहाँ के निवासी सरल व सच्चे हैं।

लक्ष्मी और सरस्वती की अकृपा होते हुये भी ये सन्तुष्ट और प्रसन्न दीख पड़ते है। यहाँ के लोग श्रमिक हैं अतएव बलिष्ठ हैं। आधुनिक प्रकाश ने अभी उनका मार्ग प्रशस्त नहीं किया है। सफाई का उन्हें बहुत कम ध्यान है, किन्तु उन का मन साफ है, उसमें कुटिलता और आविलता नहीं।

रास्ते में छायी हरियाली सूर्य की किरणों सी चमकती पुष्पावली और ओस की बूंदें ऐसी शोभा देती थी मानो पृथ्वी ने सप्तरंगी विमल चुनरी पहनी हुई हो।

••

जहांआरा : अब्बाहुजूर

(शाहजहां पूर्ववत रहता है जहांआरा फिर पुकारती है । शाहजहां पीछे घूमता है। गालों पर अश्रु बह रहे हैं जिन्हें पोंछने का वह कोई प्रयास नहीं करता।)

जहांआरा : आप रो रहे हैं—अब्बाहुजूर—हमारा दिल आपकी हालत देख कर तड़फ उठता है ।

शाहजहां : (रूंधे गले से) बेटी हम तो तभी से रो रहे हैं जब से हमारी प्यारी बेगम जन्नत नशी हुईं । अब औरंगजेब हम पर जुल्म—सितम ढा रहा है । किस्मत न जाने अभी और क्या दिखाती है।

जहांआरा : खुदा इसका बदला अवश्य लेगा ।

शाहजहां : नहीं ! खुदा भी हम पर ही कहर ढा रहा है । दारा हमारा प्यारा बेटा........भी हम से छीन लिया गया । इतने बड़े हिन्दुस्तां के शहंशाह होकर हम आज मजबूर हैं ।

(लम्बी सांस भर कर बोलता है)

हम ही जानते हैं कि हम कैसे जी रहे हैं ।

जहांआरा : चलिए अन्दर चलें अब्बाहुजूर-ठंड बढ़ रही है ।

शाहजहां : चलो

दोनों अन्दर कमरे मे आ जाते हैं ।

जहांआरा : आप बैठिए मैं खाना मंगवाती हूँ ।

शाहजहां : नहीं ! हमें भूख नहीं, (पलग पर बैठते हुए)

जहांआरा : आपको हमारी कसम—अब्ब हुजूर आपको खाना ही होगा ।

शाहजहां : लाओ ! हम अपने जिगर के टुकड़े की बात रखेंगे ।

(जहांआरा चली जाती है। चन्द मिनटों में थाली में खाना लेकर आती है।)

जहांआरा : खाइए....अब्बाहुजूर ।

थाली पलग पर ही रख देती है—

(दो तीन कौर खाकर....उठ जाता है....फिर टहलने लगता है)

जहांआरा : हमने औरंगजेब से यहाँ कालीन बिछवाने के लिए कहा था और एक तख्त बिछवाने के लिए कहा था ।

शाहजहां : (धीमे हंसी हंस कर) तख्त ही यदि हमारी किस्मत मे होता तो तख्त-ताउस क्यों छिनता ?........अब इन सब के न होने से भी हमें कोई तकलीफ नहीं है ।

जहांआरा : हम कल ; औरंगजेब से हमेशा यहीं रहने के लिए बात करेंगे ।

प्राण की सांसें

• सत्य शकुन

पात्र—परिचय

शाहजहां : मुगल सम्राट और औरंगजेब का पिता
औरंगजेब : मुगल सम्राट [आलमगीर]
सैनकि अफसर, सैनिक, हकीम
जहांआरा : औरंगजेब की बड़ी बहन।
रोशनआरा : औरंगजेब की छोटी बहन।

अपने भाइयों को कत्ल करने के पश्चात आलमगीर सिंहासन पर बैठा, सिंहासन को निरापद बनाने के लिए उसने अपने पिता को क़ैद में डाल दिया। जहांआरा जिन्दगी भर कुंवारी रहने का निश्चय कर कारागार में शाहजहां की सेवा सुश्रुषा करने लगी। औरंगजेब ने शाहजहां को शीघ्र मारने की दृष्टि से सभी राजसी सुविधाएँ छीन कर उसे कैद में साधारण क़ैदी की तरह रखा, किन्तु वह यह न जान सका कि उसके प्राण की सांसे कहां अटकी हैं। बाद में रोशनआरा के कहने पर उसने शाहजहां के ताजमहल देखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया .... बस यहीं शाहजहां की सांसे अटकी हुई थी। वह इस आघात को न सह सका और उसका प्राणांत हो गया।

समय : मुगलकालीन कालानुसार वेश–भूषा होगी।

(स्थान : धूमिल संध्या का दृश्य........किले की छत पर शाहजहां गम्भीर मुख छवि लिए व्यग्रता से हाथ पीठ पीछे किए अकेला घूम रहा है। दूर ताजमहल दिख रहा है। वह खड़ा होकर एकटक उसे निहारने लगता है। पीछे से जहांआरा का प्रवेश)

जहांआरा : अब्बाहुज़ूर

(शाहजहां पूर्ववत रहता है जहांआरा फिर पुकारती है । शाहजहां पीछे घूमता है । गालों पर अश्रु बह रहे हैं जिन्हें पोंछने का वह कोई प्रयास नहीं करता ।)

जहांआरा : आप रो रहे हैं—अब्बाहुज़ूर-हमारा दिल आपकी हालत देख कर तड़फ उठता है ।

शाहजहां : (रूंधे गले से) बेटी हम तो तभी से रो रहे हैं जब से हमारी प्यारी बेगम जन्नत नशीं हुई । अब औरंगजेब हम पर जुल्म-सितम ढा रहा है । क़िस्मत न जाने अभी और क्या दिखाती है ।

जहांआरा : ख़ुदा इसका बदला अवश्य लेगा ।

शाहजहां : नहीं ! ख़ुदा भी हम पर ही कहर ढा रहा है । दारा हमारा प्यारा बेटा........भी हम से छीन लिया गया । इतने बड़े हिन्दुस्तां के शहशाह होकर हम आज मजबूर है ।

(लम्बी सांस भर कर बोलता है)

हम ही जानते हैं कि हम कैसे जी रहे हैं ।

जहांआरा : चलिए अन्दर चलें अब्बाहुज़ूर-ठंड बढ़ रही है ।

शाहजहां : चलो

दोनों अन्दर कमरे मे आ जाते हैं ।

जहांआरा : आप बैठिए मैं खाना मंगवाती हूँ ।

शाहजहां : नहीं ! हमे भूख नहीं, (पलग पर बैठते हुए)

जहांआरा : आपको हमारी कसम—अब्बा हुज़ूर आपको खाना हो होगा ।

शाहजहां : लाओ ! हम अपने जिगर के टुकड़े की बात रखेंगे ।

(जहांआरा चली जाती है । चन्द मिनटों मे थाली में खाना लेकर आती है ।)

जहांआरा : खाइए....अब्बाहुज़ूर ।

थाली पलग पर ही रख देती है—

(दो तीन कौर खाकर....उठ जाता है....फिर टहलने लगता है)

जहांआरा : हमने औरंगजेब से यहां कालीन बिछवाने के लिए कहा था और एक तख्त निकवाने के लिए कहा था ।

शाहजहां : (फीकी हंसी हंस कर) तख्त ही यदि हमारी क़िस्मत में होता तो तख्त-ताउस क्यों छिनता ?.......अब इन सब के न होने से भी हमें कोई तकलीफ़ नहीं है ।

जहांआरा : हम कल ; औरंगजेब से हमेशा यहीं रहने के लिए बात करेंगे ।

शाहजहां : हमारे लिए जहांआरा तुम तकलीफ़ में मत पड़ो। तुम्हारी तकलीफें देख कर हम और भी गमगीन हो उठते हैं। तुम हमारे दिल का टुकड़ा हो। ऐसा न हो औरंगजेब तुम पर भी ज़ुल्म करे।

जहांआरा : इस हालत में हम आपकी खिदमत नहीं करेंगे तो हमारा जीना बेकार है।

शाहजहां : आज हम पर जो ज़ुल्म हो रहे हैं यह हमारी ही लगाई हुई फ़सल है जिसे हम काट रहे हैं। हमने भी तो अपने अब्बाहुज़ूर को सताया था सो उनकी बददुआ हमें लगी।

जहांआरा : आप अपना दिल न दुखायें....हम जी जान से आपकी खिदमत करेंगे ताकि आप कुछ हद तक अपने दर्द को भूल सकें।

शाहजहां : अल्ला तुम्हारा भला करे....तुम हमेशा ख़ुश रहो। यही दुआ हम ख़ुदा से मांगते हैं।

जहांआरा : चलिए....आप लेट जाइए हकीम साहब ने अधिक खड़ा रहने के लिए मना किया है।

(शाहजहां लेट जाता है। सुनहरी चादर ओढ़ाकर शाहजहां का हाथ चूम कर जहांआरा जाने की आज्ञा मांगती है)

शाहजहां : जाओ–ख़ुश रहो।

(जहांआरा कमरे से निकल आती है)

दृश्य–दो

(प्रातःकाल का समय)

(औरंगजेब अपने निजी कक्ष में बैठा कुछ सोच रहा है कि प्रतिहार आकर जहांआरा के आने की खबर देता है)

औरंगजेब : आने दो।

(जहांआरा प्रवेश करती है)

जहांआरा : आलीजाह को जहांआरा का सलाम कबूल हो।

औरंगजेब : क्यों आप हमें शर्मिन्दा करती हैं....हम आलीजाह हिन्दुस्तां के लिए हैं। आपके तो हम छोटे भाई हैं।

जहांआरा : फिर भी शहंशाह तो शहंशाह होता ही है। तुम पहले शहंशाह हो.......तब हमारे भाई।

औरंगजेब : ख़ैर मान लिया। अब आप बताइए कि हम आपकी क्या खिदमत कर सकते हैं।

जहांआरा : हमें हमेशा के लिए अब्बाहुजूर की खिदमत करने का मौका दिया जावे यही इल्तजा है।

औरंगजेब : पर हम तो चाहते है कि जितनी जल्दी शहंशाह जन्नतनशी हों जाय उतना ही हमे फायदा हो, कही ऐसा न हो कि रियाया उनके लिए बगावत कर बैठे।

जहांआरा : खूब खिदमत कर रहे हो औरगजेब अपने अब्बाहुजूर की जिन्होने तुम्हे पाला पोषा और बड़ा किया। अपने लख्ते जिगर-दारा को खोकर भी जिन्होंने उफ तक न की।

औरंगजेब : मजबूर इन्सान और कर ही क्या सकता है? उन्होने भी तो अपने वालिद से बगावत की थी।

जहांआरा : किन्तु तुम्हारी तरह सताया नही।

औरंगजेब : सताने का मौका ही उन्हे कब मिला था।
और अब हम तो यही सोच रहे हैं कि जितनी जल्दी अब्बाहुजूर चल बसें....ठीक है। उनके दु ख दर्द सब खतम हो जावें।

जहांआरा : तो एक काम करो।

औरंगजेब : कौन सा?

जहांआरा : बादशाह को जहर दे दो। उनका भी भला और तुम्हारा भी भला होगा।

औरंगजेब : नही! हम कोई भी ऐसा कदम नही उठाना चाहते, जिससे कि रियाया भड़क उठे।
(इतने मे प्रतिहार फिर आकर सूचित करता है कि रोशनआरा तशरीफ़ ला रही हैं।)

रोशनआरा : शहंशाह और आपा को सलाम कबूल हो। (कोर्निश करती है)

औरंगजेब : आओ! रोशनआरा कैसे तशरीफ़ लाना हुआ।

रोशनआरा : हमनें सुना कि आपा आई हैं सो सोचा मिल आएँ।

जहांआरा : आज दरिया उल्टा क्यों बहने लग गया।

रोशनआरा : आपा आप हम पर हमेशा खफा रहती हैं। हमने आपका क्या बिगाडा है।

जहांआरा : रोशनआरा तुम हमारी बहन हो गुस्सा मत होना। आज अब्बाहुजूर की जो दशा हो रही है उसका कारण हम तुम्हे ही मानती हैं।

रोशनआरा : (भृकुटी तान कर) कैसे?

जहांआरा : औरगजेब तुम्हारे कहने से अब्बाहुजूर पर जुल्म ढा रहा

पहले उन्हें सभी बादशाहती सहुलियतें दी हुई थीं किन्तु तुम्हारे भड़काने से वे सारी सहुलियतें छीन कर उन्हें फकीर बना दिया गया है।

रोशनआरा : भारतीय दर्शन कहता है कि बुढ़ापे में फकीर हो ही जाना चाहिए।

जहांआरा : हिन्दुस्तां का दर्शन तो यह भी कहता है कि बुढ़ापे में औलाद को वालिदान की खिदमत करनी चाहिए।

रोशनआरा : आप क्या चाहती हैं ?

जहांआरा : हम तो आलमगीर से इतना ही चाहते हैं कि जो इन्सान अपनी जिन्दगी का एक अहम हिस्सा 'दीवानेखास और तख्त ताउस' जैसी बेशकीमती जगह पर बिता चुका है, जिसे पता नहीं कि तकलीफें क्या होती हैं। उस पर इतने जुल्म न किए जांय।

औरंगजेब : उनको वह सब सहुलियतें दी गई हैं जो एक इन्सान के लिए जरूरी हैं, हाँ! हम वह बादशाहती सहुलियतें उन्हें मुहैय्या नहीं करवा सकते।

रोशनआरा : ठीक तो है ! भाई जां ठीक ही फर्मा रहे हैं। एक इन्सान के लिए रोटी-पानी खास है और वह आपके प्यारे वालिद को दी जा रही हैं।

जहांआरा : खैर हम आलमगीर पर जोर जबरदस्ती नहीं कर सकती हैं, हम तो इतना ही चाहती हैं कि हमें अब्बाहुज़ूर के साथ रहने का हुक्म अता किया जाय ताकि उनकी खिदमत कम से कम हम तो कर सकें।

रोशनआरा : नहीं! यह कैसे हो सकता है। आपा आपकी खिदमत से उनकी आयु बढ़ेगी और यह हम चाहते नहीं हैं।

औरंगजेब : रोशनआरा ठीक कह रही है, हम अपको छोड़कर और जिसे आप हुक्म दें वहाँ भेज सकते हैं।

जहांआरा : और कोई भीख हमें शहंशांह से नहीं चाहिए। हमारी यही आरजू थी जिसे ठुकरा दिया गया।

औरंगजेब : आपा हम मज़बूर हैं।

जहांआरा : खुदा तुम्हें खुश रखे। तुम्हारा इक़बाल बुलन्द हो—हम तो तुम्हें बचाना चाहती हैं।

औरंगजेब : किससे ?

जहांआरा : उस बद्दुआ से जो अब्बाहुज़ूर की तड़फती रूहें तुम्हें देंगी, (थोड़ा रुक कर)

(औरंगजेब विचार में पड़ गया)

ा : हम तुम्हारा बुरा नहीं चाहतीं आलमगीर ! तुम हमारे

प्यारे भाई हो, रोशनआरा और हमारे लिए तुम बराबर हो।

औरंगजेब : आपा आपका हुक्म सिर आँखों पर।
(जहाँआरा प्रसन्नता से उठ खड़ी होती है)

जहाँआरा : आलमगीर यह हमारी दुआ है कि खुदा तुम्हें हमेशा खुश रखे।
(और वह शीघ्रता बाहर से चली जाती है)

रोशनआरा : भाई जां यह आपने क्या किया !

औरंगजेब : हमने अपनी नजर में ठीक ही किया है।

रोशनआरा : कैसे ? यह तो हमारी ग़लती है।

औरंगजेब : नहीं! आपा का कहना ठीक था। हम एक गोली से दो शिकार करेंगे। इधर हमने आपा की हमदर्दी भी पा ली और बादशाह की बद्दुआ से भी बच गए।

रोशनआर : भाई जां यह मत भूलिए कि जब तक अब्बाहुजूर जिन्दा हैं तब तक आपका तख्त कभी भी आग की लपटों में घिर सकता है।

औरंगजेब : जिस वक्त ऐसा हुआ तो हम हिन्दोस्तां को दोज़ख की आग में झोंक देंगे..........अपने रास्ते की हर परेशानी खत्म करने के लिए जो भी सख्त से सख्त क़दम लाज़िमी होगा उठायेंगे,

रोशनआरा : वह तो हम जानते हैं फिर भी हम अपनी राय दे देते हैं कि अब्बाहुजूर का अधिक जीना हमारे लिए ठीक नहीं है।

औरंगजेब : ठीक है, तुम हमारी हमशीरा (बहन) होने के नाते हमारा भला चाहती हो, हम तुम्हारे कहने के मुताबिक अब्बाहुजूर पर सख्ती और पाबन्दियां और बढ़ा देंगे,

रोशनआरा : आपका यह कदम ठीक है।

औरंगजेब : तुम हमें यह पता कर बताओ कि अब्बाहुजूर की सबसे प्यारी चीज क्या है, जिसके सहारे वे इतनी तकलीफें भुगत कर भी जिन्दा हैं।

रोशनआरा : आप जासूसों से पता करवाइए या स्वयं जाइए।

औरंगजेब : हमे उनकी आँखों से खौफ लगता है, ऐसा लगता है कि वे हमारी मजाक उड़ा रही हों कि इतनी तकलीफें देने के बावजूद भी हम जिन्दे हैं"""यह तुम्हारी हार है"""औरंगजेब तुम जीत कर भी हार गए।

रोशनआरा : हम आपकी हार नहीं होने देंगे भाई जां, हम पता करेंगे।

औरंगजेब : शाबाश ! हमारी दुआएँ तुम्हारे साथ है।
(रोशनआरा उठकर चली जाती है)

दृश्य–तीन

(सन्ध्या समय)

[शाहजहां उसी किले की छत पर से ताजमहल को निहार रहा है। लम्बी सांस भर कर वापस पलटता है कि जहांआरा प्रवेश करती है,) दूर से ही कोर्निश करती है]

शाहजहां : आओ जहांआरा..................देखो वह ताजमहल के ऊपर खड़ी मुमताज हमें पुकार रही है।
(इशारा करके बताता है और स्वयं ऐसे गौर से देखता है मानो वास्तव में मुमताज वहां खड़ी हो।)

जहांआरा : अब्बाहुजूर नीचे चलिए.......हकीम साहब ने आपको अधिक खड़ा रहने के लिए मना किया हुआ है।
(दोनों नीचे कमरे में आ जाते हैं।) पलंग पर बैठते हुए– जहांआरा खड़ी रहती है।

शाहजहां : हम तंग आ गए जहांआरा इस जिन्दगी से.......हम मरना चाहते हैं।

जहांआरा : अब्बाहुजूर आपको सुनकर खुशी होगी कि आलमगीर ने आपकी खिदमत में हमेशा रहने के लिए हमारी आरजू मंजूर कर ली है।

शाहजहां : अच्छा!! चलो दो दिन और जी लेंगे (रुक कर) हम काफ़ी अरसें से एक बात सोच रहे हैं आरा.......

जहांआरा : हम जानते हैं।

शाहजहां : तो बताओ।

जहांआरा : आप हमें अपने से अलग करना चाहते हैं.......आप चाहते हैं हम शादी कर लें।

शाहजहां : हां.......आरा हम नहीं चाहते कि हमारी वजह से तुम्हारी जिन्दगी खराब हो जावे।

जहांआरा : अब्बाहुजूर हम सच कहते हैं कि यदि हमें आपने जुदा करने की कोशिश की तो हम आपका हुक्म तो नहीं टालेंगे पर उस माहौल में अधिक नहीं जी सकेंगे। क्या आप चाहते हैं कि आपकी जहांआरा इस दुनिया से रुखसत हो जावे।

शाहजहां : (दर्दीली आवाज़ में)—आरा.......हमारी प्यारी बेटी....... हम कभी तुम्हारा बुरा नहीं चाहेंगे। यदि तुम्हें कुछ हो गया तो हम भी खुद-कुशी कर लेंगे।

सन्निवेश–दो

जहांआरा : (अश्रु भरे नेत्रों से)—अब्बाहुजूर !!

शाहजहां : आरा !! हमारी बेटी।

(दोनों भुजाओं को फैलाता है, जहांआरा शाहजहां की छाती से लग कर रोने लगती है। शाहजहां जहांआरा के सर पर प्यार से हाथ फेरता है।)

जहांआरा : आप लेट जाइए अब्बाहुजूर। हम खाना लाते हैं। (चली जाती है।)

शाहजहां : (बड़बड़ाता है)—हम अपनी बेटी की जिन्दगी खराब कर रहे हैं। हमारी जिन्दगी जहांआरा के लिए एक मुसीबत बन कर रह गई है। हमारे लिए वह अपनी जिन्दगी बरबाद कर रही है..... ....ऐ खुदा ! हमें मौत दे ! मौत दे !

(जहांआरा का थाली में खाना लेकर प्रवेश)

जहांआरा : अब्बाहुजूर लीजिए !

(शाहजहां उठता है। थाली पलंग पर ही रखकर स्वयं कौर खिलाती है, खाना खिलाकर थाली ले जाती है। चन्द मिनटों में फिर प्रवेश)

जहांआरा : लेट जाइए अब्बाहुजूर। (शाहजहां लेट जाता है। जहांआरा उसके धीरे-धीरे पैर दबाने लगती है। धीरे-धीरे शाहजहां नेत्र बन्द कर लेता है। जहांआरा उसे चादर ओढ़ा कर धीरे से बाहर निकल जाती है।)

परदा गिरता है।

दृश्य-चार

(औरंगजेब का निजी कक्ष.......बिल्कुल साधारण ढंग से सजा हुआ....रोशनआरा बैठी औरंगजेब का इन्तजार कर रही है। औरंगजेब का प्रवेश) कुछ कुर्सियाँ.......एक सिंहासन आदि)

रोशनआरा : (उठकर कोर्निश करती है)—आलीजाह को सलाम कबूल हो। (औरंगजेब आकर सिंहासन पर बैठ जाता है। उसके बैठने के बाद रोशनआरा पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ जाती है।)

औरंगजेब : हमें काफी अर्से से तुमसे मिलने का मौका नहीं मिला। दक्खन में बगावत होने के कारण हमें वहां जाना पड़ा। कहो.......क्या हमारा काम हुआ।

रोशनआरा : हम अपनी जिम्मेदारी खूब समझते हैं।

औरंगजेब : तो कहो ! हम अब्बाहुजूर की जिन्दगी से बड़े परेशान

रह-रह कर हमें यहाँ भाग कर आना पड़ता है, जिससे कि बागियों को शह मिलती है।

रोशनआरा : अब्बाहुज़ूर को यदि एक कमरे में नजरबन्द कर दिया जाये जिससे कि वे अपनी बेगम के मकबरे ताजमहल को न देख सकें तो अवश्य उनके दिल को ऐसी चोट लगेगी कि वे अधिक न जी सकेंगे।

औरंगजेब : इंशाअल्लाह ! बड़ी अच्छी चाल है। अब मौत बड़ी जल्दी हो जायेगी।

रोशनआरा : अब्बाहुज़ूर कि जिन्दगी ताजमहल है।

औरंगजेब : कहो हमारी प्यारी हमशीरा.......हम तुम्हें क्या इनाम दें ?

रोशनआरा : आलीजाह ख़ुश हो गए—हमें सब कुछ मिल गया। अब्बाहुज़ूर के प्राणों की साँसे कहाँ अटकी है, यह हमने बता दिया।

औरंगजेब : तुम हमारी सच्ची हमदर्द हो—रोशनआरा यदि तुम न होती तो शायद हमारा सितारा आज इस बुलन्दी पर न होता।

रोशनआरा : हुज़ूर के आगे इस नाचीज की क्या औक़ात है।

औरंगजेब : नहीं ! रोशनआरा यूँ न कहो हम तुम्हारे हमेशा अहसानमन्द हैं। तुम्हारा कर्जा हम नहीं दे सकेंगे। यदि तुम दारा और अब्बाहुज़ूर की बातें हम तक न पहुँचाती रहतीं तो शायद हम आज इस हिन्दुस्ताँ के तख़्त पर न होते।

रोशनआरा : यह इस नाचीज की ख़ुशकिस्मती है कि आलीजाह हम पर इस क़दर मेहरबान हैं।

औरंगजेब : अच्छा हम तुम्हारे कहने के मुताबिक इन्तज़ाम करवाने जाते हैं।
(बाहर निकल जाता है)—परदा गिरता है

परदा उठता है, शाहजहाँ के कमरे का दृश्य दिखाई पर [illegible] और सुराही रखी है।
(दृश्य—शाहजहाँ के कमरे में सैनिक प्रवेश करते हैं, एक सैनिक अदब से झुक कर कहता है।)

सैनिक : हुज़ूर आज से आप इस कमरे के बाहर नहीं जा सकते।

जहाँआरा : किसका हुक्म है ?

सैनिक : आलीजाह का हुक्म है।

शाहजहाँ : ठीक है—जाओ (एक सैनिक आगे बढ़ कर [illegible]

जहांआरा : हम अब्बाहुजूर अभी आलमगीर से मिल कर आते हैं, यह सितम हम न होने देंगे।

शाहजहां : जहांआरा नहीं रहने दो—हम बाकि जिन्दगी ऐसे ही काट लेंगे अब हम औरंगजेब के ज्यादा अहसान नहीं लेना चाहते।

जहांआरा : अब्बाहुजूर हम जानते हैं कि यह कौन दे रहा है, औरंगजेब ऐसा नहीं कर सकता।

शाहजहां : किसी का कोई दोष नहीं जब सितारे गर्दिश में होते हैं तो किस्मत भी रूठ जाती है।

जहांआरा : जुल्म की भी तो हद होती है, रोशनआरा और औरंगजेब क्या इन्सान नहीं हैं?

शाहजहां : इन्सान हैं..........पर पत्थर........खैर

(परदा गिरता है)

स्थान : संध्या समय.......शाहजहां बेचैनी से अपने कमरे में टहल रहा है, रह-रह कर उसकी दृष्टि उस दरवाजे पर जाती है, जहां से वह छत पर जाकर ताजमहल देखता था, आकर उसी दरवाजे के पास खड़ा होता है। दरवाजे पर खड़े सैनिक को इशारे से बुलाता है, सैनिक आकर अदब से झुकता है,)

शाहजहां : इस समय तुम सैनिक आलमगीर के खिदमतगार हो पर किसी जमाने में हमारे भी थे।

सैनिक : आलीजाह ठीक फर्मा रहे हैं।

शाहजहां : हमारी मदद करोगे?

सैनिक : कहिए?

शाहजहां : हम चन्द लमहों के वास्ते ताजमहल देखना चाहते हैं, इस दरवाजे को खोल दो।

सैनिक : मैं मजबूर हूं, आलीजाह के हुक्म टालने की सजा मौत है।

शाहजहां : हम तुम से भीख मांगते हैं—जब तक हम ताजमहल न देख लें हमारी रूह को चैन न मिलेगा।

सैनिक : आलीजाह मैं मजबूर हूं,

(शाहजहां बेचैनी से टहलने लगता है..........एकाएक उसकी दृष्टि खिड़की पर जाती है, तेजी से आगे बढ़ कर वह खिड़की को खोल देता है, दोनों पटों पर हाथ रखे.......हांफता हुआ सामने ही ताजमहल को निहारने लगता है, सैनिक अफसर का प्रवेश)

रह-रह कर हमें यहाँ भाग कर आना पड़ता है, जिससे कि बागियों को शह मिलती है।

रोशनआरा : अब्बाहुज़ूर को यदि एक कमरे में नज़रबन्द कर दिया जावे जिससे कि वे अपनी बेगम के मकबरे ताजमहल को न देख सकें तो अवश्य उनके दिल को ऐसी चोट लगेगी कि वे अधिक न जी सकेंगे।

औरंगजेब : इंशाअल्लाह ! बड़ी अच्छी चाल है। अब मौत बड़ी जल्दी हो जायेगी।

रोशनआरा : अब्बाहुज़ूर कि जिन्दगी ताजमहल है।

औरंगजेब : कहो हमारी प्यारी हमशीरा.......हम तुम्हें क्या इनाम दें ?

रोशनआरा : आलीजाह खुश हो गए—हमें सब कुछ मिल गया। अब्बाहुज़ूर के प्राणों की सांसे कहाँ अटकी है, यह हमने बता दिया।

औरंगजेब : तुम हमारी सच्ची हमदर्द हो—रोशनआरा यदि तुम न होती तो शायद हमारा सितारा आज इस बुलन्दी पर न होता।

रोशनआरा : हुज़ूर के आगे इस नाचीज़ की क्या औक़ात है।

औरंगजेब : नहीं ! रोशनआरा यूँ न कहो हम तुम्हारे हमेशा अहसानमन्द हैं। तुम्हारा कर्जा हम नहीं दे सकेंगे। यदि तुम दारा और अब्बा-हुज़ूर की बातें हम तक न पहुँचाती रहतीं तो शायद हम आज इस हिन्दुस्तां के तख्त पर न होते।

रोशनआरा : यह इस नाचीज की खुशकिस्मती है कि आलीजाह हम पर इस क़दर मेहरबान हैं।

औरंगजेब : अच्छा हम तुम्हारे कहने के मुताबिक इन्तजाम करवाने जाते हैं,
(बाहर निकल जाता है)—परदा गिरता है

परदा उठता है, शाहजहां के कमरे का दृश्य तिपाई पर गिलास और सुराही रखी है।

(स्थान—शाहजहां के कमरे में सैनिक प्रवेश करते हैं, एक सैनिक अदब से झुक कर कहता है,)

सैनिक : हुज़ूर आज से आप इस कमरे के बाहर नहीं जा सकते।

जहांआरा : किसका हुक्म है ?

सैनिक : आलीजाह का हुक्म है,

शाहजहां : ठीक है—जाओ (एक सैनिक आगे बढ़ कर केवल एक दरवाजे को छोड़कर बाकि सब पर ताले लगा देता है, और फिर बाहर निकल कर चला जाता है,)

जहांआरा : हम अब्बाहुजूर अभी आलमगीर से मिल कर आते हैं, यह सितम हम न होने देंगे।

शाहजहां : जहांआरा नहीं रहने दो—हम बाकि जिन्दगी ऐसे ही काट लेंगे अब हम औरंगजेब के ज्यादा अहसान नहीं लेना चाहते।

जहांआरा : अब्बाहुजूर हम जानते हैं कि यह कौन दे रहा है, औरंगजेब ऐसा नहीं कर सकता।

शाहजहां : किसी का कोई दोष नहीं जब सितारे गर्दिश में होते हैं तो किस्मत भी रुठ जाती है।

जहांआरा : जुल्म की भी तो हद होती है, रोशनआरा और औरंगजेब क्या इन्सान नहीं हैं?

शाहजहां : इन्सान हैं..........पर पत्थर......खैर

(परदा गिरता है)

स्थान : संध्या समय.......शाहजहां बेचैनी से अपने कमरे में टहल रहा है, रह-रह कर उसकी दृष्टि उस दरवाजे पर जाती है, जहां से वह छत पर जाकर ताजमहल देखता था, आकर उसी दरवाजे के पास खड़ा होता है। दरवाजे पर खड़े सैनिक को इशारे से बुलाता है, सैनिक आकर अदब से झुकता है,)

शाहजहां : इस समय तुम सैनिक आलमगीर के खिदमतगार हो पर किसी जमाने में हमारे भी थे।

सैनिक : आलीजाह ठीक फर्मा रहे हैं।

शाहजहां : हमारी मदद करोगे?

सैनिक : कहिए?

शाहजहां : हम चन्द लमहों के वास्ते ताजमहल देखना चाहते हैं, इस दरवाजे को खोल दो।

सैनिक : मैं मजबूर हूँ, आलीजाह के हुक्म टालने की सजा मौत है।

शाहजहां : हम तुम से भीख मांगते हैं—जब तक हम ताजमहल न देख लें हमारी रुह को चैन न मिलेगा।

सैनिक : आलीजाह मैं मजबूर हूँ,

(शाहजहां बेचैनी से टहलने लगता है..........एकाएक उसकी दृष्टि खिड़की पर जाती है, तेजी से आगे बढ़ कर वह खिड़की व खोल देता है, दोनों पटों पर हाथ रखे.......हांफता हुआ सामने ताजमहल को निहारने लगता है, सैनिक अफसर

हकीम का प्रवेश.........है।

शाहजहां को देखता है। और फिर गंभीर होकर नब्ज देखता है, पीछे पीछे जहांआरा भी आती है।

हकीम : हमने ताकीद की थी कि ऐसा कोई काम न किया जाए, जिससे कि हुजूर के दिल को चोट पहुंचे......बहुत दर्द बढ़ गया है। जीना मुश्किल है।

जहांआरा : (सिसकते हुए) कुछ करिए हकीम साहब आप तो अब्बाहुजूर के खास दोस्त हैं।

हकीम : अब इस रूह को तकलीफ देना बेकार है।

जहांआरा : (सिसकती रहती है)

शाहजहां : पानी ! जहांआरा ! पानी !!

(आकर पानी देती है)

औरंगजेब का प्रवेश.........(हकीम कोर्निश करता है।)

औरंगजेब : अब्बाहुजूर ! की कैसी तबियत है ! हकीम से पूछता है। (कैसी तबीयत है ?)

हकीम : चन्द लम्हों के मेहमान हैं—आलीजाह।

(शाहजहां नेत्र खोलता है, कराह कर कहता है)।

जहांआरा ! हम चलें !

जहांआरा रोने लगती है।

औरंगजेब : अब्बाहुजूर आपकी कोई आखिरी ख्वाहिश हो तो हम दिलों जा से उसे पूरी करेंगे।

(शाहजहां अश्रु भरे नेत्रों से बन्द खिड़की की तरफ देखता है। औरंगजेब समझ जाता है आगे बढ़कर खिड़की खोल देता है। सामने ही ताजमहल दिखता है। शाहजहां की आंखें उसी ओर निहारती रहती हैं !)

शाहजहां : हमें मुमताज के बगल में दफ्न करना ताकि हमारी रूह.........आंखें पथरा जाती हैं। जहांआरा रोकर उससे लिपट जाती है।

परदा गिरता है।

तुगलक को 'वाइज फूल' बुद्धिमान बेवकूफ के नाम से पुकारा जाता है। (पुस्तक अपने मस्तक पर मारते हुये झुंझलाकर) अजीब भेजा है, इन इतिहास वालों का भी कोई आदमी अकलमंद भी हो और मूर्ख भी, भला यह दोनों बातें एक साथ कैसे सम्भव हो सकती हैं। इन मुर्दों की बातें रटते-रटते तो जीता-जागता विद्यार्थी स्वयं को मुर्दा अनुभव करने लगता है। भगवान जाने इन ऊल-जलूल बातों को पाठ्यक्रम में क्यों रखा जाता है और तो और इगलैण्ड तक के मुर्दों को रोने के लिये हम भारतवासी ही रह गये है। अपने दादाजी कब जन्में और कब मरे इसका इतिहास पता नही और ये याद करते फिरो कि एलिजाबेथ कब गद्दी पर बैठी। (हूँ·········पुनः पुस्तक पढ़ने लगता है) जार्ज पंचम (दर्शकों को सम्बोधित करते हुये) तो साहब राजस्थान मे अनाज का अकाल पड़ता है और इंगलैंड मे नामों का भले आदमी एक ही नाम के आगे सप्तम और अष्टम लगाते चले गये। आठ हेनरी, आठ एडवर्ड, छ जार्ज और न जाने कितने चार्ल्स हो गये हैं इस डालडा के युग मे कोई याद रखे तो कहाँ तक रखे। मैं कहता हूँ उनके यहाँ नामो का अभाव था तो हमसे ही ले जाते। रामभरोसे, खेवरचंद, शेरसिंह, पोखरलाल, लालूमल, टीण्डामल, भीण्डीमल, आदि-आदि एक से एक सुन्दर नाम। अरे जब हम काले आदमियों को उधार मांगने में शर्म नहीं आती तो उन गोरों लोगों को ही क्यों आती है। (फिर पढ़ने लगता है) जार्ज पंचम (सामने वाले मकान से जोर से रेडियो की ध्वनि आती है) आकाशवाणी-"मेरे सामने वाली खिड़की मे एक चाँद का टुकड़ा रहता है" (किताब फेंककर सामने देखते हुये) चाँद का टुकड़ा तो गया चूल्हे मे, यहाँ चुडैल का टुकड़ा तक नही रहता। नाक मे दम आ गया है। कमबख्त इतनी जोर से रेडियो बजाते हैं, जैसे घर में न बजकर होटल में बज रहा हो। जरा सभ्यता पूर्वक बजाने को कह दो तो कहेगें पडोसी झगड़ालू हैं। सिविक्स सेन्स नही है; हो चुकी पढाई (दांई तरफ हाथ करके) इधर पिताजी मित्रो के साथ ताश खेल रहे हैं (बाँई तरफ) इस कमरे मे दीदी ताता थैय्या (थिरक कर) कत्था की कमर तोड़ रही है और यह बीच का बडा कमरा? (कुछ सोच कर) इसे कबूतरखाना कहना कठिन होगा या कबाड़ी की दुकान, रात भर खस-खस करती हुई बूढ़ी बीमार दादी, बरतन भांडे, डब्बे, पेटी,

छाता, जूते और कपड़ों की नुमाइश। बरामदे में पढ़ने लगो तो आकाशवाणी होने लगी (लय बिगाड़ कर गाता है) मेरे सामने वाली खिड़की में (भीतर से राजेश्वरी का स्वर सुनाई पड़ता है)

राजेश्वरी का स्वर—रज्जू ! ओ रज्जू !! काम के वक्त न जाने कहाँ गधे के सींग की तरह गायब हो जाता है अब मैं खाना पकाऊँ या मुन्ने को रखूं ?

राजेन्द्र—(चीख कर) क्या है मम्मी !

राजेश्वरी का स्वर—भाड़ में गई मम्मी। वहीं बैठा मम्मी-मम्मी कर रहा है, यह नहीं होता कि जरा मुन्ने को पकड़ ले।

राजेन्द्र—(झुंझलाकर) आ तो रहा हूँ (कितावें पटकता हुआ भीतर जाता है, भीतर से राजेश्वरी व राजेन्द्र के स्वर सुनाई पड़ते हैं)।

राजेश्वरी का स्वर—चार आवाज़ लगाने पर तो नवाव साहव तशरीफ़ लाये हैं। जरा-सा वच्चे को रखने को कह दिया तो मुँह तोप हो गया—मैं कहती हूँ इस घर में नौकरानी तो केवल मैं ही हूँ खाने को सब, पिलने को मैं।

राजेन्द्र—मैं पढ़ रहा था माँ। आवाज़ सुनते ही तो चला आया—

राजेश्वरी का स्वर—वड़ा आया पढ़ेसरी की दुम, अरे पढ़ाई तो हमने भी की थी पर तुम जैसे निखटटू तो कभी नहीं हुये (राजेन्द्र वच्चे को लेकर वाहर आता हुआ)

राजेन्द्र—अब माँ को कौन समझाये कि तुमने पांचवीं कक्षा तक पढ़ाई की है और मैं ग्यारहवीं में पढ़ता हूँ, उनके सारे विषयों की जितनी पुस्तकें नहीं होगी उतनी तो यहाँ एक-एक विषय में होती हैं। अजी ! अगर यही हालत रही तो थोड़े दिनों में किताबें थैले की जगह ठेले में ले जानी पडेंगी। ठेले में (वच्चे को थप थपाकर) आ………… आ…………(वच्चा जोर से रोता है, राजेन्द्र चीखते हुये) अब तू तो चुप हो मेरे गुरू, तेरे हाथ जोड़ता हूँ, कम से कम एक नक्शा वना लेने दे वरना वो भूगोल वाले मास्टर जी मेरा नक्शा विगाड़ देंगे (ज्योमेट्री वोक्स वजाकर देता है, बैठाते हुये) लीजिये ! आप इस भानुमति के पिटारे से अंग्रेजी वाजा वजाइये पर कहीं तोड़ मत देना उस्ताद वड़ी मुश्किल से दस वार कहने पर तो पिताजी ने दिलाया है (काम करने लगता है) (भीतर से मिस्टर अग्रवाल की आवाज़ आती है)

मि० अग्रवाल का स्वर—रज्जू ओ राजेन्द्र

राजेन्द्र—जी, पिताजी।

राजेन्द्र—कुछ नहीं दीदी, मैं जरा पिताजी को पान देने गया तब तक इसने हाथ में प्रकार चुभो लिया। मामूली सी लगी है।

रश्मि का स्वर—नालायक, शैतान, इतना बड़ा हो गया किसी काम का सलीका नहीं। अब मैं संगीत का ट्यूशन करूं या घर के काम—ला! इधर ला! मैं इसके गीली पट्टी बांध दूं। (राजेन्द्र मुन्ना को भीतर ले जाता है) (अन्दर से रश्मि का स्वर सुनाई पड़ता है)

रश्मि का स्वर—हाय राम कितना खून बहा है, लाट साहब कह रहे हैं मामूली लगी है—मैं पूछती हूँ तू हायर सेकेन्ड्री में कैसे आ गया? (राजेन्द्र बाहर आते हुये बड़बड़ाता है)

राजेन्द्र—हायर सेकेन्ड्री में कैसे आ गया, ये तो 'वही बता सकते हैं दीदी जिन्होंने परीक्षा ली है, पास किया है' (पूरी तरह बरामदे में आते हुये जोर से फाटक बन्द करता है) हरेक आदमी मुझ पर ही रोब छांटता है जरा सा प्रकार क्या गड़ गया आसमान सर पर उठा लिया—क्या मैंने चुभोया है मुन्ना के प्रकार?

रश्मि का स्वर—एक तो बच्चे को जख्मी कर दिया ऊपर से बड़बड़ा रहे हैं। जनाब! चोरी और सीना जोरी—मैंने कहा था जरा मेरी चुन्नी के आयरन कर देना कल 'सोशलवीक' के सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेना है—पर कौन सुनता है।

राजेन्द्र—(झुंझला कर) कह तो दिया दीदी अभी कर दूंगा, पहले थोड़ा स्कूल का काम कर लूं, बिना उस्तरी किये सोऊँगा नहीं कहो तो लिख-कर दूं।

रश्मि का स्वर—काम का नाम तो ऐसा लगता है जैसे कुनेन की गोली।

राजेन्द्र—(रंग समेटता हुआ उपेक्षा से) हूँ (कापी से पढ़ता है) 'ए प्लस बी होल रेज टू स्क्वायर' इजीकल्टू ए स्क्वायर प्लस बी स्क्वायर प्लस टू ए बी (दर्शकों से) अब इन बुद्धि के ठेकेदारों से पूछो कि व्यवहारिक जीवन से इस बीज गणित का क्या सम्बन्ध है। नालन्दा और कवीन्द्र, रवीन्द्र के शांति निकेतन जैसे आदर्श विद्यालयों के देश में आये दिन अमेरिका से एक्सपर्ट्स बुलाये जाते हैं, शिक्षा के क्षेत्र में उलटे-सीधे परिवर्तन करते हैं, कभी न्यू टाइप क्वश्चन तो कभी मौखिक परीक्षा, फिर भी वही दो दूनी चार—ये साला बीज-गणित आज तक बीज का बीज ही रहा वृक्ष गणित नहीं हो सका, क्या खाक तरक्क़ी हो रही है।

(रमेश का प्रवेश तंग मोरी की पतलून, दादा टाइप शर्ट, हिप्पी जैसे बाल उम्र अठारह-बीस वर्ष)

रमेश—अरे यार राजेन्द्र ! जब देखो तब पढ़ाई, तुम भी पूरे किताबी कीड़े हो कीड़े, सुभाष बाग मे पुष्प प्रदर्शनी लग रही है, रंगीन फव्वारों की छटा, बसंती फूलों की बहार, बिजली की चमचमाहट भला इस मस्त मौसम मे भी कोई पुस्तकों से सरफोड़ी करता है ?

राजेन्द्र—करूँ नही तो क्या करूँ ? कल जब कक्षा मे मास्टर दुर्गाशंकरजी दुर्गा के अवतार हो जायगें तब उनके त्रिशूल से कौन बचायेगा ? तू ?

रमेश—अरे मार गोली उस मुर्गा-शंकर को किस मनहूस का नाम ले लिया सारा मजा किरकिरा कर दिया, चल जल्दी चल, जनता रेस्टरां में अनिल, अशोक सब तेरी इन्तजार कर रहे हैं।

राजेन्द्र—ना बाबा ना ! न अपने पास पैसे न अपने पास समय।

रमेश—बेवकूफ ! वहाँ पुष्प प्रदर्शनी में तितलियाँ दिखलाऊँगा तुझे तितलियाँ (शैतानी से मुस्कराता है)

राजेन्द्र—तुम्हें ही मुबारक हो तुम्हारी तितलियाँ ! अपने राम की क़िस्मत मे तो किताबो में छपे अक्षरो के काले भौंरे ही देखना बदा है।

रमेश—अपने-अपने नसीब ! तो नही चलेगा तू ?

राजेन्द्र—क्या करूँ मित्र मजबूरी है।

रमेश—अच्छा तो मैं चला पर यार यह कहना ही पड़ेगा कि रहा तू गावदू का गावदू (सीटी बजाता हुआ चला जाता है)

राजेन्द्र—(मुँह बिगाड़कर) रईस बाप की बिगड़ी सन्तान ! दुष्ट ने पन्द्रह मिनट फोकट में खराब कर दिये। अपने इन्हीं लक्षणों से दो बार दसवीं मे फेल हुआ, एक बार ग्यारहवीं मे, इस बार भी खुदाहाफ़िज है। (पढ़ने लगता है) पाँच वर्ष पहले पिता पुत्र से सात गुणा बड़ा था, पाँच साल बाद कुल तीन गुना बड़ा रह जायेगा—दोनों की अभी क्या उम्र है ? (झुंझला कर) मुझे क्या पता, क्या उम्र है, उनकी जन्म-पत्री देखो, उनके बाप-दादों से पूछो।

(बीच वाले कमरे से वृद्धा दादी की रुक-रुक कर आवाज आती है)

दादी का स्वर—राजू ! ओ बेटा राजू, जरा मेरी सूंघनी तो ढूंढ कर पकड़ा जा। बेडा राम मारें दोनो नाक बन्द हो गये छींक ही नहीं आती।

राजेन्द्र—(सर पर हाथ मार कर) ओफ़ हो ! यह घर है या चिड़िया घर ! दादी तुम अपनी तमाखू की डिबिया भी सम्भाल कर नहीं सकती, अब मैं उसे कहाँ ढूंढने आऊँ ?

दादी का स्वर—यहीं-कहीं आले-दिवाले में रखी होगी बेटा—बड़े-बूढ़ों की सेवा करने से ही मेवा मिलता है।

राजेन्द्र—(उठते हुये) मेवा तो जाने मिलेगा या नहीं पर न ढूंढने पर गालियां जरूर मिलेगी (भीतर जाता है)

दादी का स्वर—क्या कहूँ बेटा बुढ़ापे का शरीर है नाक बन्द हो जाने से सांस लेना ही कठिन हो गया।

राजेन्द्र का स्वर—स्वांस लेना तो मेरा कठिन हो रहा है दादी।

दादी का स्वर—क्यों बेटा क्या जुकाम हो गया है।

राजेन्द्र का स्वर—हां ! ऐसा जुकाम है' जिसकी दवा किसी डॉक्टर के पास नहीं है, ये लो तुम्हारी डिबिया।

दादी का स्वर—जीते रहो बेटा जीते रहो—तेरे चांदनी बहू आये आंक छी-आंक छी।

(राजेन्द्र बाहर आते हुये)

राजेन्द्र—आंक छी-आंकछी चांद सी बहू आये। दादी को क्या पता कि अब वो पुराने जमाने वाला खूबसूरत चांद नहीं रहा, अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि चांद में ज्वालामुखी, गड्ढे और सलेटी रेत के सिवाय कुछ नहीं हैं।

(भीतर के कमरे से जहां ताश बाजी हो रही है आवाज आती है)

ताश के कमरे में स्वर—थेंक्यू मिस्टर अग्रवाल थेंक्यू।

मि० अग्रवाल के स्वर—गुड नाईट भाई लोगों।

सम्मलित स्वर—गुड नाईट।

राजेन्द्र—(मायने रटता है) बीः यूः एस आई, एन. ई. डबल एस बुसीनेस, बुसीनेस-मने-व्यापार-बीयू एस आई एन ई डबल एस बुसीनेस-बुनीनेस मने-व्यापार।

(मिस्टर अग्रवाल का प्रवेश, एक प्रौढ़ व्यक्तित्व धोती कुर्ता आँख पर चश्मा)

मि० अग्रवाल—बारा बरस पीछे तो कौवा बोला वह भी कांव-कांव। कभी मोहरत देखकर तो श्रीमान् पढ़ने बैठते हैं और पढ़ें सो गलत, इलेवन्थ क्लास का स्टूडेन्ट बुसीनेस बोलता है, हो गया इस देश का कल्याण अरे बुसीनेस नहीं बिजनेस है बिजनेस।

राजेन्द्र—पापा ! आप ही ने तो कहा था कि यू से 'ऊ' की और आई से 'ई' की मात्रा होती है।

मि० अग्रवाल—बेटा ये अंग्रेजी है अंग्रेजी, इसका पढ़ना हिन्दी जैसा आसान नहीं है। वरना गली-गली में अंग्रेजी के एम. ए. और डॉक्टर मिलते।

राजेन्द्र—पर हमारे हिन्दी वाले पण्डितजी तो कहते हैं कि हिन्दी जैसी वैज्ञानिक भाषा दूसरी नहीं है, जैसा बोलो वैसा लिखो।

मि० अग्रवाल—(व्यंग से हंस कर) वैज्ञानिक भाषा, जरा पूछना अपने पंडित जी से कि उनके पास कितने छात्र आते हैं हिन्दी की ट्यूशन पढ़ने और अंग्रेजी वाले? अंग्रेजी वालों के पास ट्यूशनों की लाइनें लगी रहती हैं।

राजेन्द्र—हिन्दी तो हमारी राष्ट्रभाषा है पिताजी!

मि० अग्रवाल—बेचारी राष्ट्रभाषा! यह सब राजनैतिक बातें हैं रज्जू। मेरी बात गाँठ बाँध ले, दो अक्षर अंग्रेजी के पढ़ लेगा तो आदमी बन जायेगा—वो जनरल साब के बटलर था न, क्या नाम (सोचकर) देवकिशन! जाब का मैवर—जो खानसामें का काम करते-करते कुछ अंग्रेजी सीख गया, अब साब के उतारे-पुतारे पतलून पहन कर, सर पर छतरी ओढ़ कर आज डिक्सन साब हो गया है!

राजेन्द्र—(आश्चर्य से) वही डिक्सन साब जिसके स्पोर्टस के सामान की बड़ी सी दूकान है।

मि० अग्रवाल—हाँ वही—अरे एक वो ही क्या अंग्रेजी के प्रताप से ऐसे-तैसे सैकड़ों बन गये हैं—मुझे ही लो—मैं क्या कभी कॉलिज में पढ़ा हूँ, केवल मिडिल पास हूँ, पर हमारे जमाने की पढ़ाई ही और थी, फर्राटे की अंग्रेजी लिखता हूँ और बोलता हूँ। तुम जैसे छप्पन सौ साठ हायर सेकेन्ड्री को पढ़ा दूँ।

(राजेश्वरी का रद्दी भरा एक बड़ा-सा टोकरा लिये प्रवेश। अधेड़ उम्र की संभ्रान्त महिला साधारण साड़ी पहिने है)

राजेश्वरी—कभी पढ़ाया भी है बच्चों को, बेचारा जब कभी कुछ पूछने लगता है तो वही जवाब "फुरसत नहीं है, फिर आना" कभी दफ्तर की फाइलें पीछे लगी रहती हैं, तो कभी दोस्त।

मि० अग्रवाल—तो क्या तुम चाहती हो कि मनुष्य मशीन बन जाये। दिन भर दफ्तर में कलम घिसो, अफ़सरों की सुनो, पर आकर भी दो घड़ी आराम न कर मित्रों से हँसें, बोलें नहीं तो हो गई छुट्टी।

(रश्मि का प्रवेश—बीस वर्ष के लगभग, सुन्दर युवती, सलवार, कुर्ता, चुन्नी पहिने हुए गोद में मुन्ना)

रश्मि—(हाथ में प्रोग्रेस रिपोर्ट) पिताजी रज्जू की प्रोग्रेस देखी आपने, इसने अपनी आलमारी में छुपा रखी थी।

मि० अग्रवाल—खराब नम्बर आये होंगे बेटी। इसीलिये दिखाने से डरता होगा, ला मुझे दिखा।

(राजेन्द्र रश्मि की ओर क्रोध से देखता है)

मि० अग्रवाल—(प्रोग्रेस देखते हुये राजेन्द्र के तमाचा मार कर) गधे ये अंक आये हैं सब विषय में मार्जिन पर, मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया तूने, एक हम थे जो कभी कक्षा में अव्वल से दूसरे नहीं आये। एक तू है जो राम-राम करके पास होता है।

राजेश्वरी—(सामने आकर) क्यों मारते हो बच्चे को अभी खेलने-कूदने के दिन हैं। सब पढ़ लेगा।

मि० अग्रवाल—तुम्हारे इस लाड़-प्यार ने ही तो इसे बिगाड़ा है, अब ये कोई दूध पीता बच्चा है ? इस महँगाई के ज़माने में मैं इसे कैसे पढ़ा रहा हूँ, तुम्हें क्या पता !

राजेश्वरी—सब पता है, पढ़ाई ! पढ़ाई ! पढ़ाई !! सारा पैसा पढ़ाई में ही खर्च कर देना इतनी बड़ी बेटी हो गई, इसके ब्याह की किसे परवाह है।

रश्मि—(लजा कर) ये कूड़ा क्या उठा लाई माँ !

राजेश्वरी—हर कमरे में कागज़ ही कागज़ हो रहे थे बेटी—आज सारा दिन खराब करके मैंने इन्हें बटोरा है, तुम्हारे पिताजी को दिखाने लाई हूँ, देख लो कोई काम का कागज-पत्तर न हो। कल जाकर रज्जू पंसारी को बेच आयेगा। आम के आम गुठलियों के दाम।

रश्मि—हाँ कूड़े का कूड़ा मिटेगा, पैसे के पैसे आयेंगे।

(मिस्टर अग्रवाल व रश्मि दोनों देखते हैं)

मि० अग्रवाल—देखें (एक कापी उठा कर) रज्जू की माँ ! तुम्हारी अक्ल तो जैसे भैंस चर गई। रश्मि की संगीत की कापी ही उठा लाई !

राजेश्वरी—अब मैं क्या जानूँ संगीत-वंगीत, हम तो कभी ब्याह-शादी में गीत गाती हैं या कभी काम-काज करते हुये मीराबाई के भजन ! भला गाना भी कोई धन्धा है, जिसके बही खाते कापियों में लिखे रहते हैं।

(राजेन्द्र के अतिरिक्त सब हँसते हैं)

रश्मि—(रद्दी में से एक प्रोग्रेस रिपोर्ट उठा कर) अरे यह क्या है ? यह प्रोग्रेस रिपोर्ट किसकी है ? (पढ़ कर) अरे यह तो पिताजी की आठवीं कक्षा की प्रोग्रेस है। (देखती है)

मि० अग्रवाल—देखो मज़े की बात जब ढूंढ़ी तब मिली नहीं अब मिली है। जब कुछ काम नहीं, अब तो यह कूड़ा ही है।

रश्मि—आप इंगलिश में प्रमोटेड हुये थे पिताजी।

राजेन्द्र—प्रमोटेड (आश्चर्य से) पिताजी इंगलिश में प्रमोटेड ?

पटाक्षेप

चाचा की याद में

• भगवतीलाल व्यास

पात्र-परिचय

प्रधानाध्यापक : एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक
सुरेश : एक छात्र
मोहन : नगर के एक व्यापारी का लड़का
महेश : नगर के एक डॉक्टर का लड़का
विजया : सुरेश की बहिन
भारती : महेश की बहिन
डॉ० घनश्याम : महेश के पिता
धर्मेन्द्र : सुरेश के पिता
वन्दना : महेश की माँ
सरला : मोहन की बहिन

दृश्य—एक

प्रार्थना-सभा की घण्टी बजती है। बच्चे मंच पर आ जाते हैं। उनमें हल्की आवाज में बातचीत हो रही है। (बातचीत का मिला-जुला स्वर) प्रधानाध्यापक का आगमन। निस्तब्धता छा जाती है। विद्यालय की प्रार्थना समवेत स्वर में:—

माँ, अपने पावन चरणों में,
वन्दन सो शत बार हमारा।
जग के विस्तृत नभ पर बरसे—
अविरल ज्योतिर्धारा ।।

जन प्रबुद्ध हो, मन विशुद्ध हो,
तव गरिमा हो प्राण हमारा।
घर-घर बहे प्रेम की गंगा—
खण्डित हो सीमा की कारा।।
मां, अपने पावन चरणों में,
वन्दन लो शत वार हमारा!

[प्रार्थना के पश्चात् कुछ मौन! केवल चिड़ियों की आवाज़। मौन समाप्त करने का संकेत—तबले पर एक थाप या हारमोनियम से हल्का स्वर।]

प्रधानाध्यापक जी का प्रवचन।

प्यारे बच्चो और साथियो,

अभी आपने मातृ-वंदना को अपनी दैनिक प्रार्थना के रूप में गाया। जो माता की सच्चे हृदय से वंदना करता है वह उसे गौरव की रक्षा के लिये जीवन धन्य करने का वरदान अवश्य देती है।

मां के ऐसे विरले सपूतों में पंडित जवाहरलाल नेहरु का स्थान सदैव आदर के साथ याद किया जायगा। हम आज से पांच वर्ष पूर्व की (२७ मई, ६४) उस दोपहरी को नहीं भूल सकते, जब भारत के हृदय-सम्राट् तथा बच्चों के प्यारे चाचा नेहरु के निधन का समाचार अंधेरे की तरह विश्व के कण-कण पर छा गया। देखते-देखते एक सूर्य आँखों से ओझल हो गया, जिसने अपनी तेज रोशनी द्वारा संसार को बहुत कुछ दिया।

बच्चों, आज जब हम अपने उन्हीं प्रिय चाचा का स्मृति-दिवस मना रहे हैं तो हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि कुछ इन्सान ऐसे होते हैं जिनसे काल भी डरता है; वह उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। ऐसे इन्सान अपने कामों से दुनियाँ में हमेशा जीते हैं। हमारे चाचा ऐसे ही इन्सानों में से थे। उनके काम उन्हें हमेशा अमर रखेगें। सूरज अपनी किरणों की प्रखरता से उनके व्यक्तित्व की याद दिलाता रहेगा; हवा अपने ठण्डे झोकों से उनके पवित्र स्नेह की याद दिलायेगी और देश की मिट्टी का कण-कण उनकी कीर्ति-कथा को सदियों तक दोहरायगा।

चाचा नेहरु ने देश के लिये क्या काम किया, आपमें से बहुत से बच्चे अपने माता-पिता या गुरुजनों के मुख से सुन चुके होंगे और निश्चय ही आपको उनके जीवन से प्रेरणा मिली होगी। महापुरुषों के स्मृति-दिवस मनाने की जिम्मेदारी हम तभी उचित रूप से निभा पाएँगे जब हम उनके बताये हुए मार्ग पर चलें। महापुरुषों के बताये हुए मार्ग तो अनेक होते हैं। बहुत सी

बार हम अपनी असमर्थताओं और कमियों के कारण उन सब गुणों को अपने अन्दर उतार पाना कठिन होता है। जिनसे कि हम उन मार्गों पर चल सकें। किन्तु आज के दिन हम अपने प्यारे चाचा की स्मृति में उनका कम से कम एक गुण ही अपने जीवन में उतारने की कोशिश करें तो हमारा जीवन सफल होगा तथा हमें अनुभव होगा कि उनकी याद हमेशा हमारे साथ है।

चाचा नेहरू अमर हैं। } समवेत स्वर
भारत माता की जय॥ }

दृश्य-दो

[स्थान : डॉ० घनश्याम का मकान। महेश टेबल पर ज्ञान-विनोद या कोई पुस्तक पढ़ रहा है। उसकी बहिन भारती दूसरे कोने में बच्चों की कोई पत्रिका पढ़ रही है। आस-पास पांच-दस दूसरी पत्रिकाएं पड़ी हैं। दोनों के पढ़ने की अस्पष्ट ध्वनि।]

महेश—(जम्हाई लेता हुआ)—भारती, माँ अभी तक नहीं आई।

भारती—(टेबल पर रखी घड़ी पर निगाह दौड़ाते हुए):
अरे, एक बज गया..........मैं तो चाचा के चित्रों में कुछ ऐसी खोई कि समय का पता ही न चला। अब तो पिताजी के भी आने का समय हो गया है।

महेश—(कुछ सोचते हुए).........न जाने क्या बात हुई..........

दरवाजे पर दस्तक

भारती—(चौंककर)—लो दादा, दरवाजा खोलो। शायद माँ आगई है।

महेश—(पुस्तक पेन्सिल टेबल पर रखकर दरवाजे तक जाता है।) दरवाजा खोलने की ध्वनि। मोहन का प्रवेश। अभिवादन करता हुआ—आओ मोहन। (दोनों साथ आते हैं।)

महेश—(भारती से) भारती, एक कुर्सी और ले आओ देखो, मोहन भैया आये हैं।
(भारती कुर्सी ले आती है। कुर्सी रखने की ध्वनि। मोहन बैठ जाता है। भारती फिर अपनी पत्रिका में खो जाती है और महेश अपनी पुस्तक पढ़ने लगता है।)

मोहन—जानते हैं यार! बड़े पढ़ने वाले हो। मैं तुम्हारे यहाँ इसलिये तो नहीं आया कि तुम लोग पढ़ा करो और मैं तुम्हें देखूं। हम लोगों ने आज पिकनिक का प्रोग्राम बनाया है।

महेश—नहीं, नहीं, मोहन ! हमें पाठशाला से छुट्टी इसलिये तो नहीं हुई कि हम पिकनिक मनायें ? जानते हो, गुरुजी ने क्या कहा था ? आज के दिन हमें चाचा की स्मृति में उनके बारे में साहित्य पढ़ना चाहिये। आपस में उनके गुणों तथा कामों के बारे में चर्चा करनी.........

मोहन—(गुस्से में—बात काट कर) देख महेश ! फिर मैं तुझसे साफ़-साफ़ कह देता हूँ कि ये उपदेश मेरे सामने मत बघारा कर। मैं सब जानता हूँ। उम्र में तेरे से बड़ा हूँ। (थोड़ी नरमी दिखाते हुए) तू तो यह बता कि तुझे पिकनिक में चलना है या नहीं।

महेश—मोहन भैया, मुझे तो यह पुस्तक आज ही पढ़ डालनी है। मैं नहीं आ सकूँगा। और फिर माता जी भी घर पर नहीं है। इजाज़त किससे लूँ

मोहन—अजीब बुद्धू हो गई तुम भी। अब तुम कोई दूध पीते बच्चे हो जो बात-बात में माँ की इजाज़त लोगे। अरे इजाज़त लेना ही है तो अपने मन से लो। मैंने तो आज तक कहीं भी जाने-आने की इजाज़त माँ या बाबूजी से नहीं ली।

महेश—तुम्हारी बात और है मोहन, मैं तो ऐसा नहीं कर सकता।

मोहन—(गुस्से से) नहीं कर सकते तो भाड़ में जाओ। फालतू ही मेरा इतना समय बर्बाद कर दिया। लेकिन याद रखना आगे से बच्चू जी········(मोहन रूठने की मुद्रा बनाकर बड़बड़ाता हुआ चला जाता है।)

(महेश के पिताजी तथा माताजी का प्रवेश)

डॉ० घनश्याम—(महेश तथा भारती को पढ़ते देख कर) अरे, तुम लोग कब आ गये ? आज स्कूल में छुट्टी हो गई थी क्या ?

वन्दना—(महेश की माँ) अच्छा, आप बच्चों से निबटिये। मैं खाना लगवाती हूँ।

महेश—हाँ पिताजी, आज चाचा नेहरु का स्मृति-दिवस था। प्रधानाध्यापक जी ने हमें प्रार्थना सभा में बहुत सी बातें बताई और फिर छुट्टी हो गई············

भारती—और पिताजी, हमारे अध्यापक जी ने यह भी कहा था कि सब अपने-अपने घरों पर पिताजी या माताजी से जानकारी प्राप्त करके चाचा नेहरु पर एक लेख लिख लावें।

डॉ० घनश्याम—(कोट तथा टाई उतारते हुए), हाँ, हाँ बच्चों, जरूर बतलाएंगे तुम्हें पंडित नेहरु के बारे में। पहले खाना तो खा लो। और

हाँ, याद आने की तुम्हें [illegible] लिखूँ पंडित नेहरू के जीवन की कई [illegible] ।

महेश तथा भारती कुर्सी से उठकर खड़े हैं।

वन्दना का प्रवेश।

वन्दना—(हँसते हुए) आज तो खूब [illegible] । अरे भाई खाना तो खा लिया होता। [illegible] है।

डॉक्टर—चलो महेश, भारती बच्चों, [illegible] । बाकी बातें बाद में करेंगे।

दृश्य-तीन

स्थान—सोहन का मकान। सादी साज-सज्जा।

सोहन पुराने अखबारों और पत्रिकाओं में से नेहरू जी से संबंधित सामग्री काट-काट कर एक एलबम में चिपका रहा है। विजया एक तरफ बैठी कुछ लिख रही है।

(सरला का प्रवेश)

सरला—(विजया से) नमस्ते विजया, कहो क्या हो रहा है?

विजया—गुरुजी ने चाचा नेहरू पर जो निबंध लिखने को दिया था वही लिख रही हूँ। वह तुमने लिख लिया क्या?

सरला—ऊँहूँऽऽऽ (अस्वीकृति सूचक सिर हिलाती है।)

विजया—तुम उदास क्यों हो सरला?

सरला—क्या करूँ विजया? मोहन से पूछती हूँ तो वह बताता नहीं। उसे तो बस खेल-कूद और पिकनिक से ही फुरसत नहीं मिलती। पिताजी दूकान के काम में उलझे रहते हैं। माँ बेचारी पढ़ी लिखी हैं नहीं जो कुछ बता पायें। मैंने लिखने की कोशिश जरूर की पर एक पेरेग्राफ लिखने के बाद आगे नहीं लिख सकी। तुम्हें तो सुरेश भैया ने बताया होगा और फिर बाबूजी से भी पूछ सकती हो।

विजया—नहीं बहिन, ऐसी बात नहीं है। मैं भी कुछ नहीं लिख पा रही हूँ (कॉपी आगे बढ़ाते हुए) यह देखो........आधा ही पृष्ठ लिख पाई हूँ। अब आगे गाड़ी रुकी पड़ी है।

दरवाजा बजता है। सुरेश उठ कर किवाड़ खोलता है।

(धर्मेन्द्र का प्रवेश)

विजया—यह लो बाबूजी आ गये, अब सब इनसे पूछ लूंगी। सरला, बैठो।

सुरेश—बाबूजी, ये लड़कियाँ खुद तो मेहनत करना नहीं चाहतीं। जब दे
दूसरों को परेशान किया करती हैं। अब तक मेरा सिर खा र
थीं, अब आपका नम्बर है।

धर्मेन्द्र—(हँसते हुए) कहो बेटी, क्या बात है?

विजया—पिताजी, आज हमारे स्कूल में चाचा नेहरु का स्मृति-दिवस मनाय
गया था। प्रधानाध्यापक जी ने हम सबको लेख लिख कर लाने को
कहा है।

सरला—और..........हाँ ताऊजी, जिसका लेख अच्छा होगा उसे इनाम भी
मिलेगा।

(इनाम की बात सुन कर सुरेश भी अपना काम छोड़ कर आ
जाता है।)

सुरेश—अच्छा इनाम भी मिलेगा? तब तो कुछ बता ही दीजिये बाबूजी,
ताकि हम लोग लेख लिख सकें।

विजया—(सरला से) देखा भैया को? अभी तो हमारी चुगली खा रहा था।
अब इनाम का जो नाम सुना तो मुँह में पानी आ गया।

(महेश का प्रवेश)

महेश—नमस्ते ताऊजी।

धर्मेन्द्र—आओ महेश, ये सब लोग चाचा नेहरु के बारे में पूछना चाहते हैं।
तुम तो खूब पढ़ते हो, कुछ बताओ न?

महेश—(शर्माते हुए) नहीं ताऊजी, आप ही बताइये तो अच्छा रहेगा।

धर्मेन्द्र—अच्छा, पहले तुम लोग जो कुछ जानते हो वह बता दो फिर कुछ मैं
भी बता दूँगा।

सब—(एक स्वर से) हाँ-हाँ, यही ठीक रहेगा। सबसे पहले महेश
बतायेगा।

महेश—चाचा नेहरु हमारे देश के प्रधान मन्त्री थे। उनका जन्म एक ऊँचे
परिवार में हुआ था। उनके पिता बैरिस्टर थे। काफी रुपया और
यश था आपके पास। कहते हैं चाचा के कपड़े इंगलैण्ड से धुल कर
आते थे। नौकर-चाकर किसी बात की कमी न थी।

सुरेश—(बीच में) अगर चाचा को किसी बात की कमी न थी तो उन्होंने
वह आरामदायक जीवन छोड़ कर इतनी मुसीबत क्यों झेलीं? जेल
क्यों गये? आजा[illegible] में भा. क्यों लिया?

महेश—देखो सुरेश, [illegible] है देश प्रेम के सामने

रुपया-पैसा, आराम, नौकर-चाकर सब तुच्छ समझता है। और फिर चाचा को तो सौभाग्य से पिता भी ऐसे मिले थे जिन्होंने उनके काम में बाधा नहीं पहुँचाई बल्कि सहायता की तथा उत्साह बढ़ाया।

सरला—लेकिन उनके पिताजी उनके आराम का भी बहुत खयाल करते थे। मैंने एक पत्रिका में पढ़ा था कि जब वे हैरो यूनिवर्सिटी के छात्र थे तब कार उन्हें छोड़ने जाती थी और छुट्टी होने पर वापस लाती थी। एक दिन चाचा अपने ही जैसी दूसरी कार में धोखे से बैठ गये। जब उस कार का मालिक आया तो बहुत बिगड़ा। चाचा को इस घटना से बहुत दुःख हुआ और उन्होंने अपने पिताजी को पत्र लिखा। आपके उदार पिता ने जवाब में चाचा को लिखा कि वे एक कार और खरीद लें और यूनिवर्सिटी के दूसरे दरवाजे पर भी कार खड़ी रहे। फिर धोखे की कोई संभावना न रहेगी।

विनमा—ऐसे किस्से तो हमें भी बहुत आते हैं पर कोई नई बात बताओ तो जानें।

(सब एक दूसरे का मुँह देखते हैं फिर एक स्वर में धर्मेन्द्र से कहते हैं।)

सब—अच्छा ताऊजी, हम तो अपनी-अपनी कह चुके। अब आप अपना वादा पूरा कीजिये।

धर्मेन्द्र—वाह बच्चों! तुम तो अपने चाचा के बारे में बहुत कुछ जानते हो। फिर भी तुम नहीं मानते तो कुछ मैं भी बतलाये देता हूँ।

धर्मेन्द्र—(थोड़ा सोच कर) चाचा नेहरू बच्चों को बहुत प्यार करते थे। उनके साथ बच्चों की तरह ही व्यवहार करते थे। उन्हें बच्चों के साथ कितना लगाव था, इस बात का पता तो केवल इसी बात से लग सकता है कि इतने काम-काज होते हुए भी वे बच्चों के लिये कोई न कोई समय निकाल लेते थे। यह तो अभी महेश ने बताया ही था कि उन्होंने देश-सेवा के लिये कितना त्याग किया।

इनका जन्म १४ नवम्बर सन् १८८९ में प्रयाग में हुआ था। सन् १९१६ में चाचा की भेंट बापू से हुई। तब से चाचा नेहरू आजादी की लड़ाई में जुट पड़े और अनेक बार जेल गये, अनेक प्रकार के कष्ट सहे। सन् १९४७ में भारत के आज़ाद होने पर वे प्रधान मंत्री बने और देश की बागडोर खूबी के साथ सँभाली। १९४७ से निरन्तर वे देश को प्रगति और खुशहाली की ओर

पढ़ाते रहे । कांग्रेस के भुवनेश्वर अधिवेशन में चाचा बीमार पड़े और २७ मई, १९६४ की दोपहर को वे हमें हमेशा के लिये छोड़ कर चल दिये ।

आज उनकी स्मृति में हम ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें ऐसा बल प्रदान करें ताकि हम उनके बताये आदर्शों पर चल सकें।

सब—(एक स्वर से) अवश्य····अवश्य । ताऊजी हम चाचा के आदर्शों पर चलते हुए अपने देश का नाम ऊँचा उठाएंगे ।

दसवां बेटा

• सुरेन्द्र कुमार 'अंचल'

[मध्यम वर्ग के गृहस्थी की बैठक ! साधारण रूप से सजा हुआ कमरा ! गाँधीजी का चित्र बीचों बीच टंगा है ! दो कुर्सियाँ और एक मेज बाँयी ओर रखी हुई है ! रमेश बाबू की कुहनिया मेज पर टिकी हैं और हथेलियों में सर थमा है ।]

रमेश बाबू—अरे रामू ! अबे ओ रामू ! (जोर से) चुन्नू !·········राजू-ऽ ऽ ! अबे ओ शैतान की औलादों ! (निराशा) कोई भी नहीं !········ अरे हाँ रामू तो राशन लेने गया है ।········मगर और सब····! कैसा जमाना आया है ! सचमुच कलयुग है, आदमी, आदमी को खा जाय अगर बस चले तो ! मैं बाप न हुआ इनका भी क्लर्क हूँ ! आफ़िस में कागजों का बोझ ढो-ढो कर जिन्दगी हो घिस गई है ! इधर घर पर !········हाय राम !········रामू····चुन्नू···· राजेश, मुन्नू, सिन्नू,पप्पी, नीना, कमल, विमल और········(नेपथ्य से नवजात शिशु का रुदन) और नये मेहमान का जन्म हो गया लगता है ! ये हो गये पूरे दस ! वाह भाई रमेश बाबू, अब अपने हाथ-पैर काट-काट कर खिला इन्हें । ये आदमखोर बच्चे मुझे नोच-नोच कर खा नहीं जायेंगे ! (उच्छ्वास) हे भगवान् ! यह मेरा घर है, घर सराय नहीं मैं भी तो इन्सान हूँ, इन्सान भी कहाँ हूँ, इन्सानों का क्लर्क हूँ किस-किस का तन ढकूगा । किस-किस को खिलाऊँगा ! किस-किस को पढ़ाऊँगा ! किस-किस की शादी करूंगा !

[नर्स का प्रवेश]

नर्स—गुडलक मिस्टर रमेश बाबू ! गुडलक ! मीठा मुँह कराइये न ! खुश खबरी है कि आप एक बेटे के और बाप हो गये हैं आप ! इनाम !

रमेश—अच्छा ! जरूर करायेंगे सिस्टर मीठा मुंह ! ये लो दो रुपये तुम्हारा इनाम !

नर्स—थैंक्यू ! मैं जा रही हूँ ! फिर आ जाऊँगी ! वैसे चिन्ता की कोई बात नहीं है.......चाची वगैरह भाभी के पास हैं । टा....टा

रमेश—टाटा ! [नर्स का प्रस्थान] मीठा मुँह, हूँ, बेवकूफ तुझे क्या मालूम कि मेरा मुँह कितना कडुआ हो रहा है ?

चाची—(प्रवेश कर) बेटा रमेश ! बेटा !

रमेश—आओ पड़ोसन चाची ! क्या बात है ?

चाची—अरे बाबू ! खड़े क्या देखत हो ! पंडतवा को बुलाय देवों ना । नाम नखत पूछवो है का ना ?

रमेश—पड़ोसन चाची ! पंडत क्या बतायगा नाम ? नाम तो मैं खुद रख दूंगा.......हिरण्यकश्यप, कंस, रावण, तैमूर, चंगेज.......अरी इतिहास में नामों की कमी थोड़े है....... !

बुढ़िया—हाय राम । दस बेटन का बाप भयो ! पन बालपन नहीं गयो ! जाको काम जो ही करेगो !

नैपथ्य—[हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे]

रमेश—लो चाची, पंडतजी तो बिन बुलाये ही आ गये !

पंडित—राम राम जिजमान ! म्हूँ तो अबार सुण्यो क राजकंवर रो जनम हुयो है.......धन्य भाग ! किण री कमी है म्हारा जिजमान रे... ....दिन दूणो रात चौगुणो...... !

रमेश—पधारो पंडतजी ! आप इसी दिन की माला फेर रहे थे क्या ।

बुढ़िया—पंडतजी ! ठीक ९ बजकर १० मिनट पे ललुओ जनमो है !

पंडत—सोना रे पाये कंवरजी पधारया छे ! नाम राखजो सुखलाल ! घर में सुख री बिरखा व्हे ला !

रमेश—(जेब से चवन्नी निकाल कर देता है ।) लो पंडत ! ये २५ पैसे हैं अभी तो ! फिर निपटते रहेंगे ।

पंडत—(पोथा समेट कर) जीवता रेओ जिजमान ! भगवान आपने खूब देवे !.......हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे !

रमेश—(व्यंग से) हूँ.......हरे कृष्ण का बच्चा !

रामू—(गुनगुनाहट) सितारों फूल बरसाओ....मेरा महबूब आया है ।

रमेश—अरे महबूब के बच्चे! खाली बोरी क्यों लाया है। राशन क्या हुआ!

रामू—पापाजी, राशन की दुकान पर तो बहुत भीड़ है! मेरा तो स्कूल का समय हो गया, मैं तो जाता हूँ! (बोरी फेंकना)

रमेश—क्या कहा! जाता है? अरे उल्लू की दुम, इधर मर! इतना बड़ा हो गया है और काम करते मौत आती है! राशन नहीं लायगा तो खाएगा क्या मेरा सर! स्कूल में आज की छुट्टी की दरख्वास्त दे दे!

रामू : (उदास स्वर) बहुत भीड़ है पापाजी! ३–४ घंटों में नम्बर आयेगा! इम्तहान पास आ रहे हैं!

रमेश : (कड़क कर) इम्तहान, इम्तहान, इम्तहान। भगवान मेरा इम्तहान ले रहे हैं सो तो तुझे पता ही नहीं! जा-राशन तो लाना ही पड़ेगा!

रामू : जाता हूँ (प्रस्थान)

नेपथ्य : रमेश बाबू! अजी रमेश जी!

रमेश : (चौंककर) अरे, आफ़िस का समय हो गया! (ज़ोर से) अरे भाई चौपड़ा, ज़रा सुनो!

चौपड़ा : (चौपड़ा का प्रवेश) कहिये चलना नहीं है क्या आफिस।

रमेश : भाई, आज साब से बोल देना कि हम आफ़िस नहीं आ पायेंगे!

चौपड़ा : क्यों? ऐसी क्या बात हो गयी है? तबियत तो ठीक है न!

बच्चे : [दौड़कर आते हैं] पापाजी मिठाई खिलाओ! पापाजी मिठाई खिलाओ!

रमेश : लो, इन्हें मिठाई की पड़ी है! अरे चौपड़ा बाबू ने टाटा करो!

चौपड़ा : (मुन्ने को उठाकर) यह सुबह-सुबह कौनसी मिठाई मुन्ने!

मुन्ना : चाचाजी, सिस्टर ने हमें कहा कि मम्मी के गुड्डा हुआ है! क्यों पापा हुआ न!

रमेश : चुप रह बे, सालो को टेलीफोन आते हैं!

चौपड़ा : अच्छा तो यह बात है! गुड, वेरी गुड! गुडलक मिस्टर रमेश बाबू!

(चिल्लाते हुए कुछ बच्चों का प्रवेश)

एक : पापाजी, मेरी स्लेट फूट गई–नई मंगा दो!

दूसरा : मेली किताब मंगा दो पापा!

तीसरा : नीना ने मेरी किताब फाड़ दी पापा!

घोया : पप्पी ने मेरा दूध गिरा दिया पापा और उल्टी शिकायत लेकर आयी है!

रमेश : (डांटकर) चुप रहो ये नेताओं! भाषण बन्द करो!

चोपड़ा : अरे कितने जवान तैयार किये हैं भई (गिनकर) एक•••दो••• तीन•••चार•••पांच•••छः•••सात•••आठ•••नौ•••दस! अरे हां, एक और भी तो•••दस•••! शाबास! उत्पादन बढ़ाओ आन्दोलन। (अट्टहास)

रमेश—अरे भाई, यह भगवान भी अच्छा हो गया है—आँखें बन्द करके फेंक देता है—मेरे घर! पड़ोस के मिश्रा साहब बेचारे कितने देवी-देवता मनाते हैं! अभी तक एक भी नहीं हुआ! मैं तो एक मामूली क्लर्क हूँ, दो सौ में किस-किस को खिलाऊँ फिर कपड़े लत्ते••••••मकान किराया !

[नैपथ्य से पप्पू को आवाज दी जाती है—सभी बच्चों का चिल्लाते हुए प्रस्थान]

नौकरानी—बाबूजी आपने गोंद तो मंगवाया ही नहीं ! अजवाइन भी घटिया मंगवाई है ! थोड़ी सी लोद भी मंगवा देवें ! (प्रस्थान)

नैपथ्य—(आवाज लगायी जाती है) अरे बाबू रमेश जी हैं क्या ?

रमेश—लो, मांगने वाले तो सुबह होते ही जमदूत की तरह आ धमके!

सेठ—(पांव पटकता हुआ) अरे रमेश बाबूजी राम-राम ! बोला तो करो भाई ! मैं कोई खा थोड़े ही जाऊँगा !

रमेश—राम-राम सेठजी! आपका हिसाब किये दो महिना हो गया ! क्या करूं ! बचत भी तो हो तब न ! दस तारीख तक थोड़ा बहुत दूंगा! इन बच्चों को भी तो खिलाना पड़ेगा! दूध से धोकर दूंगा!

सेठ—(व्यंग) खिला नहीं सकते हो तो पैदा ही क्यों करते हो ! बाबू, पहले के जापे का हिसाब चूकता नहीं है और दूसरे जापे का सामान ले जाते हो !

रमेश—(गुस्से में) सेठजी, मुंह सम्भाल कर बोलो, आपको अपने पैसों से मतलब है—मेरे बच्चों से नहीं।

सेठ—नोटिस देकर वसूल करूंगा पैसे••••••छोड़ूंगा थोड़े ही ! (प्रस्थान) (बच्चों की रेल आती है छुक-छुक••••••••••••••छुक-छुक•••••••••••••• पीऽऽऽपी)

पप्पू—पापाजी, सिगनल लगाओ, रेल आ रही है !

बुढ़िया—अरे बाबू, अभी खड़े ही हो—गोद लाओ ना ! और डाकडर साब से दरद कम होने की दवा भी लाइयो !

रमेश—(उच्छ्‌वास) हूँ चाची !

बुढ़िया—(ज़ोर से) और सुनियो तो, वो जनम घुट्टी की पुड़िया भी मत भूलियो.........ऽ......... !.........ओ...............।

••

दृश्य—दो

(कट्ट बोमन के राज्य की सीमा में रामनाथपुरम् में जैक्सन का शिविर जिसमें कट्ट बोमन के सिवाय तमिलनाड़ के सभी राजा उपस्थित थे।)

जैक्सन : आप सब राजा लोग कितना अच्छा है। कम्पनी का खैर-ख्वाह है। आपने कम्पनी को मालिक समझकर साल भर का खिराज जमा करा दिया परन्तु कट्ट बोमन को देखो वह कितना घमण्डी है। हम चाहता है, हमको उसके साथ ज्यादती नहीं करनी पड़े। क्या वह कम्पनी की ताक़त जानता नहीं? वह अपने घमण्ड में अपना, अपने बाल-बच्चों और रियासत का भला नहीं सोचता है। आप लोग उसको समझाओ कि साब तुमको माफ़ कर देगा, तुमारी इज्जत करेगा अगर तुम कम्पनी को मालिक मानकर अपना खिराज जमा करा दो।

एक राजा : कट्ट बोमन बड़ा घमण्डी है। उसको आज कम्पनी की ताकत का अन्दाज नहीं है। वह हमारे समझाए नहीं समझेगा। उसने आपका भी क्या खयाल किया, जो आपके वकील को टका सा जवाब देकर निकाल दिया, उसकी पूरी बात ही नहीं सुनी।

दूसरा राजा : इसके बाद जब आप कैंप लगाए हुये थे तो रात को उसके सैनिकों ने छापा मार कर आपके तम्बू उखाड़ दिए और वे आपके सिपाहियों की बन्दूकें छीन ले गए।

जैक्सन : हम उसका भला सोचता था और वह हमसे छेड़-छाड़ करता है। हम उसके राज को मिट्टी में मिला देगा और उसको जिन्दा नहीं छोड़ेगा। लेकिन फिर हम सोचता है कि उसको एक मौक़ा और दिया जाय। उसको यहाँ सभा में बुलाया जाय और सब बातें रोबरू तै हो जाय तो ज्यादा अच्छा है।

दृश्य—तीन

(कट्ट बोमन अपने प्रमुख सैनिक वेलयतेवन के साथ मन्त्रणा कर रहे हैं)

कट्ट बोमन : वेलय, यह आज दो दिन से जैक्सन सभा कर रहा है उसमें भी उसकी कोई चाल है। शिष्टाचार के नाते निमन्त्रण पाकर मुझे भी जाना पड़ा। पहले दिन क्या देखता हूँ कि सब राजाओं ने जैक्सन की नजर की। बहुत माल भेंट में दिया। क्या तमिलनाड़

इतना निर्वीर्य हो गया कि एक-एक कर सब राजाओं ने आधीनता स्वीकार करली। हम अकेले रह गए। अकेले ही सही, कट्ट बोमन अपना सर नहीं झुकाएगा। दूसरे दिन की सभा में कुछ खास लोगों को बुलाया गया। मैं उसमें भी निमन्त्रित था, लेकिन पूर्ण रूप से सावधान। दोनों दिन उसने मुझे उचित सम्मान दिया पर लगता है, कुछ दाल में काला। आज मुझे फिर बुलाया है। ऐसा न हो कि हम उसके जाल में फँस जायें। आज भी हमें पूरी सावधानी बरतनी है।

वेलय : महाराज! आप निश्चिंत रहें। मैंने पूरा प्रबन्ध कर दिया है। साहब की क्या मजाल जो वेलय के रहते आपका बाल भी बांका कर सके। दोनों दिन मेरे अढ़ाइ सौ सैनिक-असैनिक वेष में थोड़ा हटकर सभा स्थान के चारों ओर नियत थे जो इशारे के साथ ही आक्रमण करने को उद्युत थे। अन्य राजाओं के सैनिकों को भी मैंने अपनी ओर मिला रखा था। इस प्रकार मैंने एक सुरक्षा पंक्ति खड़ी कर रखी थी। आज भी वही प्रबन्ध रहेगा। आप निश्शंक मिलें और ऐसे स्थान पर रहें जहाँ से मुझे दीखते रहें ताकि किसी भी तरह की गड़-बड़ होते ही मैं तत्काल आपकी रक्षा कर सकूँ। मेरी एक टुकड़ी खजाने के पास खड़ी रहेगी जो अवसर पाते ही खजाने पर अधिकार कर लेगी।

कट्ट बोमन : तुम्हारे जैसे स्वामी भक्त सैनिक के भरोसे ही तो मैं खुले दिल से जैक्सन से मिलता हूँ।

(परदा गिरता है)

दृश्य—चार

(तम्बू में जैक्सन और कट्ट बोमन)

जैक्सन : कट्ट बोमन, तुमने देखा कि तमिलनाड़ के सब राजाओं ने कम्पनी को मालिक मान लिया और तुम हमारे साथ गद्दारी करता है। उस दिन तुमारा पचास आदमी रात को चोरों के माफ़िक आकर हमारे सोते हुए सिपाहियों की बन्दूकें ले गए और तम्बू को उखाड़ दिया। तुम नहीं समझेगा तो हमको तुमारे साथ बुरी तरह पेश आना होगा। तुमारा एक छोटा सा राज कम्पनी का क्या सामना कर सकता है, इसको तुम्हें अच्छी तरह सोच लेना चाहिए था। तुम अच्छी काला आदमी इतना हिम्मत दिखाता है कि हमको कुछ नहीं समझता।

कट्ट बोमन : जैक्सन! यह मत भूलो कि तुम कम्पनी के एक वेतन भोगी नौकर हो और एक स्वतन्त्र राजा के सामने बोल रहे हो। नौकर की हैसियत ही क्या है?

जैक्सन : (क्रुद्ध होकर चिल्लाता है) कट्ट बोमन, तुमको इसका मजा चखना होगा। चार दिन में सारा कर और आधीनता मन्जूर करने का पत्र नहीं भेजा तो……

कट्ट बोमन : (तलवार खींचते हुए) बन्द करो अपनी बकवास (जैक्सन ताली बजाता है। कट्ट बोमन अपनी तलवार जैक्सन की छाती पर अड़ाते हुए) तुम्हारा ताली बजाना बेकार है। अब एक कदम भी आगे बढ़ने का प्रयत्न मत करना। इस मडप को मेरे सैनिकों ने घेर रखा है।

जैक्सन : धोखेबाज !

कट्ट बोमन : जैक्सन, धोखेबाज तुम हो कि मैं? मडप के चारों ओर सैनिक को नियुक्त कर मुझे मारने की तुम्हारी योजना अब विफल हो गई है। तुम मुझसे कर मांगते थे। अब मैं तुम्हारा जमा किया हुआ सारा धन ले जा रहा हूँ। उन पर अब मेरे सैनिकों का अधिकार है। हमारे ही देश में तुम सात समुद्र पार करके आने वालों हमारे मालिक बनना चाहते हो, हमें आज्ञा देते हो। चोरी और सीना जोरी।

(वेलय अन्दर आकर कट्ट बोमन को तुरन्त साथ ले जाता है)

जैक्सन : (अकेला) ओह! आज हम अपने जाल में खुद ही फँस गया। अब हम कम्पनी को क्या मुँह दिखाएगा। अपनी जिस बहादुरी और बुद्धिमानी पर हम को भरोसा था उस पर एक काला आदमी थूक कर चला गया। हम बेइज्जत भी हुआ और खज़ाना भी लुटा दिया। अब तो हमारे लिए एक ही रास्ता है। इस तरह बे-इज्जत होकर रहने से तो नौकरी छोड़कर अपने मुल्क को जाना अच्छा। वाइगॉड हम कल ही यहाँ से रवाना हो जायगा।

पटाक्षेप

••

राज धर्म

• पी. एल. जोशी

दृश्य–एक

रंगमंच पर पूर्ण निस्तब्धता है। दूर कहीं "बीन" से गीत फूटता सा सुनाई पड़ता है। धीरे-धीरे सामने का पर्दा खुलता है, सामने पर्दे पर प्रकाश की किरणें फूटने लगती हैं और सफेद पर्दे पर चित्रित भारत माँ का वक्षस्थल उभरने लगता है।

नेपथ्य की गहराइयों से "बीन" का स्वर समीप आता सुनाई पड़ता है। आर्केस्ट्रा बीन की तान में स्वर मिलाता है। धरती पर प्रकाश की किरणें बिखरने लगती हैं। नतमस्तक साष्टांग दण्डवत् की मुद्रा में चार युगल धीरे-धीरे अपना सिर उठाते हैं। भारत माँ को सादर प्रणाम कर "बीन" की तान में स्वर मिलाकर गाते हैं।

यह धरती अपनी…………ई…………ई
यह धरा हमारी है……..
यह धरा हमारी है….
यह धरा हमारी है।

धीरे-धीरे चारों युगल उठते हैं तथा भारत माँ की ओर नमस्कार की मुद्रा में खड़े हो जाते हैं—हाथों की पुष्पांजली खोलकर भारत माँ के चरणों में पुष्प चढ़ाते हैं (गाते हैं)

तरुण—यह धरा हमारी है
यह गगन हमारा है
तरुण्यिां—यह किरणें हैं अपनी सारी
हर सुमन हमारा है

सभी समवेत स्वरों में—ये तारे हैं अपने सारे
यह वतन हमारा है।

तरुण—यश अमर रक्खेंगे हम
यह वचन हमारा है—

समवेत स्वर—हर सुमन हमारा है
यह वतन हमारा है

तरुणियाँ—अपमान न होने देंगे हम
यह अपना नारा है,

तरुण—कभी न झुकने देंगे हम
यह ध्वजा हमारी है—

समवेत स्वर—यह चमन हमारा है
यह वतन हमारा है

एक तरुणी—गंगा की कहानी है
यमुना की जवानी है

समवेत स्वर—सदियों से बहती है यह अपनी निशानी है।

तरुणियाँ—बलिदान सिखाती है
इस मिट्टी की सन्तानें

तरुण—हम अपनी जननी की
गरीमा को पहचानें—

सभी समवेत स्वर में—यह चलन हमारा है
यह वतन हमारा है।

नेपथ्य में—यह धरा हमारी है
यह गगन हमारा है।

सभी समवेत स्वरों में—हे अमीरों की जननी तुझको
शत शत बार प्रणाम—
शत शत बार प्रणाम
शत शत बार प्रणाम

धीरे-धीरे प्रकाश परिवर्तित होता है ... मन्द
परदा गिरता है, दृश्य

दृश्य–दो

नेपथ्य के स्वर—

(अमरों की प्रिय पुण्य भूमि भारतवर्ष का इतिहास सदैव गौरवशाली रहा है, आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व इस भूमि में, अरावली की अलकों में आवद्ध 'मेदपाट' नाम का एक छोटा सा राज्य……")

परदा धीरे-धीरे खुलता है, मेदपाट का राज दरवार लगा हुआ है, ऊँचे मंच पर एक रत्न जटित सिंहासन पर मेदपाटेश्वर विराजमान हैं। उम्र लगभग ३५–४० वर्ष है, मूँछे काली, भ्रकुटी तनी हुई, सिर पर त्रिपुण्ड का तिलक लगा हुआ, सर पर पचरंगी पगड़ी है, पगड़ी पर सरपेच बंधा है, जिसमें हीरे मोती चुक चान्द तारें झिलमिला रहे हैं, एक कलंगी उनके एक छत्र-शासन की साक्षी देती है, लंवी मखमली अंगरखी के ऊपर गले में मणि मुक्ता युक्त कण्ठला सुशोभित है, सफेद धोती की लांघें अंगरखी से वाहर दिखाई देती है, सुन्दर कला युक्त उदयपुर जूतियें है, कमर में वहुमूल्य कमर वन्ध में तलवार लटक रही है, दूसरी ओर कटार है।

मेदपाटेश्वर के एक ओर छड़ीदार हाथ में रत्नमंडित राजदण्ड थामें मूर्तीमान खड़ा है, दूसरी ओर रजत दण्ड पर मण्डित सुन्दर मोर पंखा लिये दूसरा छड़ीदार खड़ा है, पार्श्व में दो परिचारक चंवर ढुला रहे हैं।

महाराणा के इर्द-गिर्द मेवाड़ के १६–३२ के सरदार उमराव वैठे हैं, सवकी वेश-भूषा महाराणा के ही समान है किन्तु वस्त्र साधारण हैं, पगड़ी पर कलंगी भी नहीं है। न गले में रत्नाहार आदि ही हैं। किन्तु सवके कमर में तलवार, एवम् कृपाण हैं, सारा दरवार मौन निस्तव्ध वैठा है।

महाराणा—(निस्तव्धता तोड़कर)

मेरे वीर योद्धाओं ! आज हमारे क्षत्रित्व की परीक्षा का समय आ गया है। हम क्षत्रिय हैं, सूरमा हैं, मरना-मारना सूरमाओं को शोभा देता है। क्यों न आज हम फ़िर केसरिया वाना पहन लें ? आज हमारे देश की आन का प्रश्न है ? हमारे सम्मान का प्रश्न है ? मानवता की रक्षा का प्रश्न है ? शरणागत राजपूत वाला के धर्म का प्रश्न है। एक नारी के सम्मान का सवाल है ? पुरुष जाति को नारी की चुनौती है ?

सरदार माधोसिंह : (खड़े होकर) अपराध क्षमा हो प्रभु। इस प्रश्न पर विचार करना ही अपमान जनक है, स्वामी, आज हमारी

माँ बहनों की लाज का प्रश्न है, और हम यहाँ केवल विचार मात्र ही कर रहे हैं।

सरदार रुक्मणसिंह : क्षमा करें प्रभु ! राजकुमारी ने जिस व्यथित अवस्था में यह खत लिखा है, यह खत की भाषा बतला रही है।

सभी सरदार : (एक साथ)—मेवाड़ में शरणागत अभय है स्वामी !

महाराणा : किन्तु इसका परिणाम भी जानते हैं न आप। यह एक विषधर से खेलना है। जीते जी काल को बुलावा देना है। धर्मान्धता में मदोन्मत्त दिल्लीपति आचार-विचार की सुध खो बैठा है।

हमारे ऊपर उसका क्रोध दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। साम्प्रदायिक तत्वों को बढ़ावा देने वाले उसके जजीया कर के विरुद्ध अकेले हमने आवाज उठाई है।

मथुरा से आये हुए गोस्वामियों की रक्षा का भार हमने अपने ऊपर लेकर मानवता को सम्बल दिया है। हमने श्री नाथजी और द्वारिकाधीश को अपना इष्टदेव मानकर उनकी धर्मान्धता को चुनौती दी है।

हमने औरंगजेब के विरोधी बेटे अकबर को शरण देकर उसके एकाधिकार को ललकारा है।

गोमती की पवित्र धारा को बांध कर हमने राजसमन्द तालाब बनाकर उसकी आक्रमक कार्यवाहियों को रोक दिया है।

हमने हमारी प्रजा की अकाल, भूख और दरिद्रता से रक्षा कर सशक्त बनने का दावा किया है।

नौ चौकी की पाल पर संसार का सबसे बड़ा शिला लेख लिखवा कर हमने हमारी संस्कृति को चिरस्थायी किया है। हम चित्तौड़ के किले का जीर्णोद्धार करवा कर उसकी क्रोधाग्नि में घृत की आहुति दे रहे हैं।

यह सब आलमगीर की आंखो में धूल बनकर पहले ही चुभ रहा है और अब हम एक ओर…………

सरदार मायोसिंह : (बीच में ही बात काट कर)

मर्जिया हो तो अर्ज करूं अन्नदाता। सिद्धान्त पर मर मिटना वीरों की परिपाटी है महाराणा ! लोहू और लोहा वीरों की सम्पत्ति है और मृत्यु उनका व्यवसाय।

रही आक्रमण की बात सो तो दिल्लीपति आज नहीं तो कल अवश्य करेगा।

सरदार रुक्मणसिंह : मेवाड़ उसकी आंखों में शूल बनकर चुभ रहा है महाराणा ! वह बहाना खोज रहा है। वह मेवाड़ का विध्वंस करेगा ही। आज नहीं तो कल सही……फिर नारी के सम्मान का प्रश्न तो सर्वोपरी है। चाहे वह मौत से खेलना ही क्यों न हो ?

रावत केशरसिंह : हम युद्ध नहीं कर रहे हैं अन्नदाता ! हम तो अन्याय और अत्याचारों के प्रति आवाज उठा रहे हैं। उसकी साम्राज्य लिप्सा को चुनौती दे रहे हैं।

महाराणा : तो सबको यह स्वीकार है न, कि हम इस राजपूत रमणी की अस्मत की रक्षा करेंगे। मरेंगे, मिट जायेंगे।

सभी सरदार : (एक साथ) महाराणा राजसिंह की जय हो।

महाराणा : (दूत से) जाओ और राजकन्या से कह दो हम प्राण देकर उसकी रक्षा करेंगे।

दूत : जो आज्ञा मेदपाटेश्वर।

महाराणा राजसिंह की जय हो।—

(प्रस्थान)

महाराणा : (विचार मग्न मुद्रा में)

अब एक प्रश्न विचारणीय है, औरंगजेब पचास हजार की सेना के साथ रूपनगर की राज कन्या को ब्याहने आ रहा है। हम रूपनगर जा रहे हैं, राजकन्या का उद्धार एक महत कर्तव्य है। ऐसी हालत में औरंगजेब बोखला कर उदयपुर को तहस-नहस कर सकता है, अतः उदयपुर को भी अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता।

मैं यह भी चाहता हूँ कि आलमगीर की सेना रूपनगर पहुँचे इसके पहले ही हम राजकन्या का हरण कर लायें। अत : आवश्यक है कि हमारी सेना का एक दल औरंगजेब को अरावली की तंग घाटियों में उलझाये रक्खे। जब तक मैं राजकुमारी का उद्धार कर लौट न आऊँ औरंगजेब को रास्ते में ही रोक रखना होगा।

सभी सरदार : यह युक्ति सबसे उत्तम है। पृथ्वी पाल !

महाराणा : (कुछ विचारकर, सारे सभा पदों को एक नजर देख कर) परन्तु कौनसा वीर है, जो इस कार्य के लिये इतना मोटा संकट उठाने को तैयार है ?

(सर्वत्र शान्ति)

क्या कोई वीर सरदार इस कार्य का बीड़ा उठाने को तैयार नहीं।

(सर्वत्र शान्ति)

क्या कोई वीर एक राजपूत बाला के सतीत्व की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा करने को तैयार नहीं ?

कुंवर रत्नसिंह : घणीखम्मा अन्नदाता ! दुहाई है स्वामी ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक श्रीमान्………… राजकुमारी को लेकर सकुशल उदयपुर नहीं लौट आवेंगे तब तक मैं, शाही सेना को रोके रक्खूंगा, न मरूंगा, न गिरूंगा और न औरंगजेब को एक कदम भी आगे बढने दूंगा।

(कुंवर एक दम तलवार निकालकर सर से छुआता है, नगी तलवार महाराणा के चरणों मे रख देता है तथा थाली मे सज्जित पान का बीड़ा उठा लेता है)

महाराणा : (हतप्रभ से होकर गद्-गद् स्वरो मे) कुंवर तुम……… तुम…………बीड़ा उठाओगे कुंवर। अभी तो तुम्हारे कंकण डोवड़े भी नहीं खुले !

कुंवर रत्नसिंह : यह चुण्डावतों का जन्मसिद्ध अधिकार है स्वामी ! वीरो के कंकण तलवारों की झकारो मे, दोवड़े बारूद और तोपो की गड़गड़ाहटो मे खुलते हैं प्रभो ! वीर बालाओं के घूंघट रण भेरी के सुरम्य रव खोलते हैं। स्वामी !

महाराणा : किन्तु कुंवर—सद्य परणीता रानी के नवल सुहाग को लूट कर मैं कैसे…………

कुंवर : (बीच में ही टोक कर)—कर्तव्य की बलि वेदी पर चढ़ कर मेरी विवाह की वेदी प्रसन्न हो उठेगी स्वामी! मुझे आज्ञा कीजिये प्रभु !

महाराणा : किन्तु कुंवर, शत्रु बहुत प्रबल है, उसकी सेना अनगणित है, फिर तुम युद्ध विद्या से अनभिज्ञ।

कुंवर रत्नसिंह : सिंह भेड़ियों की परवाह नहीं करता स्वामी, हजारों शृगालों में भी अकेला सिंह अकेला नहीं कहाता प्रभु! मरना मारना और वह भी राष्ट्रीय कर्तव्य के लिये हम राजपूतों की जन्म घुट्टी में है प्रभु! युद्ध-विद्या हम पालने में सीखते हैं अन्नदाता! राष्ट्रीय कर्तव्य से प्यारा कोई जीवन नहीं होता स्वामी!

महाराणा : धन्य हो वीर! तुम्हारा शौर्य चिर अटल रहे, आओ मैं तुम्हें समस्त मेवाड़ी सेना का सेनापति बनाता हूँ। तुम्हारे आदर्श अनुकरणीय हैं कुंवर।

कुंवर रत्नसिंह : सैनिक, सैनिक ही ठीक है प्रभु—मैं तो मेवाड़ की चरण रज हूँ। इस रज में मिल कर धन्य हो जाऊँगा स्वामी!

महाराणा : (चरणों में पड़ी तलवार को उठाकर कुंवर रत्नसिह को सौंपते हैं)
धन्य हो सिंह शावक, जिस देश की धरती तुम जैसे सिंह शावक उत्पन्न करे, उसका गौरव कौन छीन सकता है कुंवर! उदयपुर की रक्षा कुंवर भीमसिह तथा जयसिह करेंगे।
जाओ कुंवर भगवान एकलिंग तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करें।

सब एक साथ : महाराणा राजसिह जी की जय।
भगवान एकलिंग की जय।

(परदा गिरता है)

दृश्य—तीन

(रंग मंच पर केसरिया बाना पहने शस्त्र सुसज्जित क्षत्रिय सैनिकों का दल प्रयाण गीत गाता हुआ प्रवेश करता है। कुंवर रत्नसिह दल का नेतृत्व कर रहा है)

कुंवर रत्नसिह : गाते हुए—
देश के जवान तुम—

सब सैनिक : बढ़े चलो-बढ़े चलो-बढ़े चलो

कुंवर रत्नसिंह : कौन शक्ति है कि जो तुम्हें अजेय रोकले कौन
विघ्न है कि जो तुम्हें अबन्ध रोकले
ध्वस्त हो धरा जहाँ
तुम अधर्म धरो चरण—

सब : शैल ध्वस्त हो गिरे कि
टूक टूक हो गगन—

कुंवर रत्नसिंह : सिन्धु मुक्त धार हो—
प्रवाह छोड़ दे पवन
पार शूल बन मिले कि—
शूल फूल का चमन
मातृ भूमि गोद में—लिये ध्वज
निशान बढ़े चलो—

सब एक साथ : बढ़े चलो-बढ़े चलो-बढ़े चलो।

कुंवर रत्नसिंह : सिंह हो डरो न देश
कोटी कोटी ये श्रृंगाल
काट काट करो वीर
पूरी आज मुण्ड माल
दर्प से उदग्र शत्रु कुम्भ फोड़ दो—
चक्र से समस्त शत्रु व्यूह
चीरते चलो—

सब : बढ़े चलो-बढ़े चलो बढ़े चलो।

कुंवर रत्नसिंह : (तलवार को ऊँची उठाकर)
वीरों! जो बीड़ा आज हमने उठाया है। यह एक गुरुतर भार है, आज फिर हमारे प्रण का समय है, रणचण्डी के आह्वान का समय है। आज माँ प्यासी है। *तुम्हें अपने लाल-लाल लोहू से माँ की प्यास बुझानी है।* यह देश बापा रावल का देश है। राणा सांगा का देश है, हठी हमीर प्रणवीर प्रताप की भूमि है, यह तुम्हारा अपना देश है।
यह उन नर सिंहों का आवास है, जिनकी आँखों में भैरव की भंग के रक्तिम डोरे, जिनके शरीर पर केसरिया बाना, जिनकी कमर में रक्त की प्यासी कटार और हाथों मे लपलपाती तलवार है, जो यह अच्छी

तरह जानते हैं कि कायर रोज-रोज मरता है, वीर सिर्फ एक बार मरता है, आखरी बार मरता है।

आज कायर को राजकन्या का वरण नहीं; एक अबला की लाज का प्रश्न है। [illegible] औरंगजेब बलहीन [illegible] को अपनी हुकूमत के जोर पर बलपूर्वक ले जाना चाहता है।

वह कल हमारी पुण्य भूमि को तहस-नहस करने, राजकुमारी चारुमति का बलात् अपहरण करने आ रहा है। बोलो तुम उसे रोक सकोगे?

सब एक साथ : हम जान दे के भी रोकेंगे।
हम उसे आगे हर्गिज न बढ़ने देंगे।

कुंवर रत्नसिंह : इन विकट परिस्थितियों में हमें प्रण करना है, जबतक महाराणा राजसमन्द-छोड़ कर न आयें, औरंगजेब को रोके रखना है, जीवित रहना है, मुगलसैन्य को आगे नहीं बढ़ने देना है।

सब एक साथ : हमें स्वीकार है—हम प्रतिज्ञा करते हैं कि,
(सब अपनी तलवार को सिर से छुआते हैं)

कुंवर रत्नसिंह : देखो आज भगवान भूतनाथ का डमरू बज चुका है। महारुद्र फुत्कार रहा है, महाकाल मुस्करा रहा है, माँ आज प्यासी है। आज देश में फ़ाग खेलने का समय है। माँ का विराट वक्षस्थल आज सूना है, उसे मुण्ड माला पहनानी है। आज माँ का खप्पर खाली है। हमें शत्रु के सीस काट-काट कर मांग का खप्पर भरना है।

देखो सामने मौत मदमस्त नाच रही है, उठो! देखो सामने जंग है। जीत है। तुम्हारा क्षत्रीत्व आज कसौटी पर है—

सब एक साथ : कुंवर रत्नसिंह की जय
महाराणा राजसिंह की जय
भगवान एकलिंग की जय।

(परदा गिरता है)

दृश्य–चार

स्थान: शाही छावनी   समय : सांयकाल

(आलमगीर चूड़ीदार पायजामे पर लंबा चोगा अंगरखा पहने हुए हैं, जिस पर लबा पृष्ठ पोषक चमक रहा है। सर पर तीन चार रंगों का लपेटदार साफ़ा है, जिस पर कलंगी लगी हुई है। गले में रत्नहार व जवाहरातों के कण्ठले पड़े हैं, हाथ में-तस्बीह की माला है, कानों मे बालियां लटक रही हैं, पैरों मे सादी जूतियां हैं, जो मृगशावक के चर्म से निर्मित हैं, अपने आसन पर आसीन है। दिलावरखां सर झुकाये कोर्निश किये खड़ा है, चारों ओर सनहाई है)

आलमगीर : (सहसा) क्या कहा! मेवाड़ की फौज!!

दिलावरखां : जी हाँ जहापनाह! मेवाड की फौज है। हमने जब उसके सरदार से कहा कि हमे रास्ता दे दो, हम मेवाड पर चढाई नही कर रहे हैं तब उसने लापरवाही से जवाब दिया–"जहाँ जाना हो हमें काट कर जा सकते हो·—"

आलमगीर : कौन है वह बदनसीब!

दिलावरखां : एक कम उम्र नौजवान! अभी मसें भीगी हैं, हाथो में मेहदी, अभी लाल-लाल दिखाई देती है, चेहरे पर मासूमियत झलकती है, किन्तु उसकी आँखों से आग बरसती है, बोली मे तूफान बरसाता है, उसकी तलवार से कयामत बरसती है, उसकी झपट मे बिजली की सी तेज़ी है और सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो…………

आलमगीर : क्या और भी कुछ आश्चर्य की बात भी…………

दिलावरखां : हाँ जहापनाह! उनके गले में मासूम हुस्नज़ाद परी का सर लटक रहा है, उसकी बीबी का सर बन्धा है।

आलमगीर : क्या कहा औरत का सर बाध लाया है! क्या मरने की नीयत से आया है!

दिलावरखां : हाँ हुजर मरने की नियत से आया है, उसकी बीबी ने अपना सर काट कर उसको जीत का पैग़ाम दिया है, जो उसने गले से लटका लिया है।
जहापनाह! वह जिधर जाता है, कयामत आ जाती है,

जिधर उसकी तलवार चल जाती है, लाशें लड़खड़ाती हैं, मुण्ड लुड़कते हैं ।

आलमगीर : उसके साथ कितनी फौज है ।

दिलावरख़ां : अन्दाज़ नहीं लगता है, आलमपनाह ! इनके साथ-साथ पहाड़ी चूहे भील हैं, जो पेड़ों की डाल-डाल पर बैठे हैं, तीरन्दाज़ भील कहर बरपा रहे हैं। एक-एक मेवाड़ी सिपाई हमारे सैकड़ों सिपाहियों को काट-काट कर मार रहा है। पहाड़ों से पत्थर लुढ़का-लुढ़का कर घाटी में फंसी हमारी सेना को तहस-नहस कर रहे हैं। पता नहीं यह घाटी कितनी लम्बी है ।

आलमगीर : कुछ भी हो दिलावरखां ! अब हमें जल्द से जल्द रूपनगर पहुँचना है, चाहे हमारे पचास हज़ार सिपाही कट क्यों न जायँ । हमें इनसे अभी मोर्चा नहीं लेकर तरक़ीब से बच निकलना है । कल रात निक़ाह है ।

दिलावरखां : मुझे तो कुछ दाल में काला नज़र आता है, जहांपनाह ! मेवाड़ी फौज़ का रास्ता रोकना बिना कारण के कैसे हो सकता है ?

आजकल मेवाड़ के राणा का सर बहुत ऊँचा होता जा रहा है ।

आलमगीर : हाँ, हमें मालूम है । मेवाड़ के राणा राजसिंह का सर ऊँचा होता जा रहा है, इसी ने हमारे "जज़िया" महसूल की खिलाफ़त की है । इसी ने चित्तौड़ पर नई-नई मरम्मतें करवाई हैं, और हमें सूचना तक नहीं दी। सुना है, गोमती नदी को बाँधकर एक बहुत बड़ा तालाब भी बनवाया गया है । मथुरा से भागे हुए गोस्वामियों को भी इसने नाथद्वारा और कांकरोली दो नगर बसाकर आबाद कर दिया है । इसने हमारे अपराधियों को पनाह दी है ।

दिलावरखां : और सुना है जहांपनाह ! उसी तालाब पर हमारे लाल किले को भी मात करने वाली खुदवाई का काम करवाया गया है, उसी तालाब की पाल पर उसने कांकरोली और राजनगर नाम के दो गांव बसाकर वहां पर द्वारिकाधीश नामक बुत की बुनियाद डालकर हमारे गुस्से को भड़काया है ।

आलमगीर : हमारा हुक्म है जाओ दिलावर, मेवाड़ को तहस-नहस कर दो। उन सुखनुमा थ.लों को चूर-चूर कर दो। तालाब को तोड़ दो।

(खून से लथपथ एक मुगल सैनिक व्याकुल एवम् विवश मुद्रा में प्रवेश करता है)

तहव्वूरखां : बरबादियां-बरबादियां चारों तरफ बरबादियों के समाचार हैं जहांपनाह ! मेवाड़ी राजपूत आपकी होने वाली मल्लिका को उठा ले गये, हमारी आधी सेना अरावली की तंग घाटियों में कुचल दी गई। हमारे हाथी छीन लिये गये, हमारा तोपखाना नष्ट हो गया।

आलमगीर : मेवाड़ की यह मजाल—

जाओ दिलावरखां, आग लगादो मेवाड़ में, रूपनगर की शाहजादी को जबरदस्ती लूट कर ले आओ—महाराणा को कैद कर लो, मेवाड़ में कत्ले आम मचादो—

तहव्वूरखां : किन्तु आलमपनाह…………

आलमगीर : किन्तु परन्तु कुछ नहीं तहव्वूरखां ! दिलावरखां और तुम तीस हजार पैदल के साथ मेवाड़ पर टूट पड़ो, यदि राणा रूपनगर गया होगा तो यह मौका अच्छा है। तुम उदयपुर, नाथद्वारा, कांकरोली नगरों को बरबाद करते हुए रूपनगर की ओर बढ़ो, रूपनगर की शाहजादी को लेकर वापिस जाती हुई मेवाड़ी सेना पर टूट पड़ना मुट्ठी पर राजपूतों को काट-काट कर उस तालाब में में फेंक दो—मैं माडल से रूपनगर होता हुआ उसका पीछा करूंगा। इस तरह हमारी दोनों फौजों के बीच मुट्ठी भर मेवाड़ी फ़ौज आसानी से पीस दी जायगी और हम रूपनगर की शाहजादी को पकड़ ले आयगे।

दिलावरखां : जो हुक्म जहांपनाह ! हम उदयपुर नगर को………कर आपके सामने पहुँच जायगे।

(तहव्वूरखां के साथ प्रस्थान)

(पट परिवर्तन)

स्थान—उदयपुर दृश्य—पांच

(महाराणा के महलों में चन्द सरदारों के साथ भीमसिंह व जयसिंह गंभीर मुद्रा में बैठे हैं।)

कुंवर भीमसिंह : आज वास्तव में कुंवर रत्नसिंह ने मेवाड़ की गौरवमयी-

गरीमा की रक्षा की है। तीस हज़ार मुग़ल सेना के सामने सिर्फ़ दो सौ भील योद्धाओं व पच्चीस राजपूतों की छोटी सी टुकड़ी ने जो जौहर दिखाया वह अभूतपूर्व था।

कुंवर जयसिंह : यही नहीं दादा—उन्होंने मरते दम तक अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी, वे लगातार मुग़ल सेना का सहांर करते रहे, कहते हैं उनका शीश कट जाने के बाद भी उनका धड़ घड़ी भरतक लड़ता रहा, उस शीशहीन धड़ ने पच्चासों मुग़ल सैनिकों को काट दिया। धड़ को लड़ते देखकर मुग़ल सेना भयभीत होकर भागने लगी, दोनों ओर पहाड़ियों से पत्थरों और तीरों की वर्षा होने लगी, मुग़ल सेना अपना तोपखाना अपने हाथी अपने घोड़े भी साथ नहीं ले जा सके। हज़ारों मुग़ल मारे गये, घाटी में खून की नदी बह निकली, कुंवर रत्नसिंह मर कर भी मेवाड़ को विजय श्री ला दी।

गरीबदास : यह तो ठीक है, कुंवर! अब हमें आगे की सोचना है, मुग़ल सेना हार कर चुप नहीं बैठी रहेगी। हमें उदयपुर खाली कर पहाड़ों में खिसक जाना चाहिये। महाराणा जी भी अब रूपनगर की राजकन्या को लेकर लौट रहे होंगे। नौचौकी की पाल पर हम मण्डप बनायें तथा राजसमन्द में नाव मुहुर्त की तैयारी करें तब तक रक्षा के लिये कौन वीर आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार है। शत्रु अब उदयपुर की ओर बढ़ रहा ही होगा।

नरुजी बारहठ : मैं मेवाड़ का एक अकिंचन सेवक इस कार्य का बीड़ा उठाता हूँ, आप लोग अरावली की घाटियों की ओर खिसकें, उदयपुर को खाली कर दें। राजमहलों की पहरेदारी मैं और मेरे पच्चीस जवानों के साथ करूंगा। आप विश्वास रखें अन्नदाता! इस शरीर में रक्त की एक बूंद रहेगी तब तक मुग़ल सैनिक मुख्य ड्योढ़ी नहीं लांघ सकेंगे।

सब : धन्य हो वीर! तुमसे ऐसी ही आशा थी। कुंवर जयसिंह तब हम सभी चलें। नगर खाली कर देने की व्यवस्था करें।

(सभी चले जाते हैं)

दृश्य—छः
स्थान—उदयपुर

(सारा शहर सुनसान वीरान पड़ा हुआ है, सिपहसालार तहव्वुरखां तथा दिलावरखां का हाथों में नंगी तलवार लिये हुए प्रवेश)

दिलावरखां : तहव्वुरखां ! इन पहाड़ी कूहों से पार पाना बड़ा ही मुश्किल है। बादशाह सलामत रूपनगर गयें और रूपनगर की शाहज़ादी उदयपुर की मल्लिका बन बैठी। हम उदयपुर पहुँचे तो उदयपुर मे आदमजात कहीं नजर नही आता। शहर वीरान पड़ा है, जैसे यहां कभी कोई रहा ही न हो। किससे लड़ें ? किसको जीतें! किसे मारें! किस पर कब्जा करें ? क्या इन सुनसान इमारतों पर इन वीरान, सूनी गलियों व वेजान सड़कों पर ? किस महल पर झण्डा फहरायें क्या इन वीरान-सुनसान जनहीन महलों पर कब्जा कर हम फतह-का सेहरा अपने सर पर बांध लें ?

तहव्वुरखां : सुनसान महल ! वीरान गलियां। सूनी सड़कें ! चारों तरफ तनहाइयां। सच कहते हो—सिपहसालार ! क्या हम इसी उदयपुर पर कब्जा करने के लिये आये हैं ? क्या यही मेवाड़ है, जिसे हम फ़तेह करने आये हैं। यहाँ तो आदमजात का नाम भी नही नजर आता। हम किससे जंग करें ? किसका क़त्ले आम करें यहाँ तो चिड़िया भी नजर नही आती ?

नेपथ्य : युद्ध के बिना तुम सुनसान उदयपुर पर भी कब्जा नहीं कर सकते कायरों।

दिलावरखां : कौन है ? सामने क्यों नहीं आते ? काफ़िर की तरह छुप-छुप कर क्यों चिल्लाते हो ?

नरूजी बारहट : उदयपुर के राजमहलों का रक्षक नरूजी बारहट अभी जीवित है। उदयपुर के राजमहलों में प्रवेश करने से पहले तुम्हे मेरी तलवार का लोहा लेना पड़ेगा।

मेवाड़ के कुछ सैनिक : ठहरो ! कायरो। जब तक हमारी तलवारें पैनी हैं तुम उदयपुर के राजमहलों मे प्रवेश नही कर सकते।

(नेपथ्य में रण भेरी बजती है, थाली मादल की ध्वनि गूँजने लगती है। नरुजी बारहट और उनके साथी तहव्वूरखां व उनके साथी युद्ध करते हुए दिखाई देते हैं)

परदा गिरता है।

दृश्य—सात

आलमगीर की छावनी, कई खेमे गड़े हुए हैं। औरंगज़ेब एक खेमे में ग़मगीन मुद्रा में गुलनार बेगम के साथ बैठा है।

आलमगीर : आज यह देखकर ताज़्जुब होता है कि हमारी विशाल सेना को मुट्ठी भर राजपूतों ने छका-छका कर तहस-नहस कर दिया।

मुट्ठी भर राजपूतों ने हमारा तोपखाना लूट लिया, हाथी लूट लिये। घोड़े लूट लिये। हमारा सब कुछ छीन लिया।

हमारी प्यारी बेग़म को क़ैद कर लिया और फिर बड़ी शान से तामजाम में बैठाकर वापस लौटा दिया।

(मुट्ठीयाँ भींचकर)

और और आलमगीर को शपथ दिलाता है कि.........

वह कभी मेवाड़ में क़दम न रक्खें।

और अपमान—भयानक अपमान। मुग़ल सल्तनत की तोहीन !

गुलनार : शांहन्शाहे आलम ! यह तोहीन है, सरासर तोहीन है, यह तख्ते ताऊस की तोहीन है। बग़ावत है, यह.......

आलमगीर : किन्तु बेगम ! हम विवश थे। हमें सब कुछ खोना पड़ा। किन्तु मैं शपथ खाता हूँ कि जब तक मेवाड़ की ईंट से ईंट नहीं बजा दूँगा। जब तक मैं मेवाड़ पर अपना झण्डा नहीं फहरा दूँगा। तब तक मैं चैन से नहीं बैठ सकता।

आहरी विवशता ! आहरी बेबसी !

(तस्वीह की माला हाथ में लिये वृद्ध मौलवी काली पोशाक पहने प्रवेश करते हैं !)

मौलवी : नही आलमपनाह ! आपने जो कुछ किया ठीक किया। आपने अब से मन्दिरो की मूर्तियो को खण्डित नहीं करने की शर्त को स्वीकार कर इस्लाम धर्म को सहिष्णुता दी है। आपने हिन्दुओं के काले बुत की महत्ता को स्वीकार कर एक अपरिहार्य सहअस्तित्व को सम्मान दिया है।

आलमपनाह ! विशाल हिन्दुस्तान की सल्तनत की सुरक्षा की दृष्टि से यह एक सही मार्ग है।

आलमगीर : किन्तु मौलाना ! कुरान शरीफ मे काफ़िर को मारना पाप नही कहा गया है।

मौलवी : नही जहापनाह, ये हिन्दू काफिर नही हैं। ये तो कुरान शरीफ को भी उतना ही सम्मान देते है, जितना ये अपनी गीता और रामायण को देते हैं। जब इस आसमान मे करोड़ों तारे एक साथ जगमगा सकते हैं, जब इस पृथ्वी पर करोड़ो वृक्ष एक साथ फल-फूल सकते हैं, जब एक सागर मे अनेकानेक जीव साथ-साथ सुख से रह सकते हैं तो इस धरती पर अनेक धर्म एक साथ क्यों नही पनप सकते ?

किसी धर्म को सम्मान देने से सम्मान देने वाला धर्म गिर नही जाता वह तो और ऊँचा उठता है।

आलमगीर : किन्तु मौलाना राजपूतों ने इस समय धर्म के साथ बग़ावत की है! उन्होंने मुग़लिया सल्तनत का अपमान किया है।

मौलवी : नही जहापनाह! अपनी वस्तुओं की रक्षा करना प्रत्येक का पहला धर्म है, किसी परायी वस्तुओं को झपट कर प्राप्त कर लेना बर्बरता है। उन्होंने वही किया जो उन्हे करना चाहिये था।

गुलनार : शाहन्शाहे आलम ! मौलवी साह्ब बहक रहे हैं, इन्हें उचित सजा दी जानी चाहिये।

आलमगीर : नही बेगम। परायी स्त्री को ससम्मान पहुँचा देने वाले हिन्दू वास्तव मे अनोखे हैं, मैं धर्मान्धता मे बावला हो गया था। आज मौलवी साहब ने मेरी आँखें खोल दी हैं। अब हमें दक्षिण मे शिवाजी को ठीक करना है।

मेवाड़ को कभी देख लेंगे । हाँ । मौलवी साहब अहमद-नगर में मैं एक कृष्ण मन्दिर बनवाऊंगा ।

मौलवी : जय हो आलमपनाह !

दृश्य—आठ

स्थान—राजसमन्द

(नौ चौकी की पाल पर महारानी चारुमती अपनी सखियों सहित)

पहली सखी : कितना सुन्दर प्रदेश है यह ! दूर-दूर तक फैला समन्दर, हमारे प्रदेश की देवी की चमक को भी मात कर दिया है । यह नौ चौकी की सुन्दर पाल सती माँ के बलिदान की कहानी सुना रही है । औरंगजेब के अत्याचारों से निकलता बलात्कार का चिन्ह हिंसा के ताण्डव नृत्य का प्रतीक बना पड़ा है ।

छतरियों में प्रत्येक मूर्ति अपने टूटे-फूटे नमूनों में भी बहुत सुन्दर दिखाई दे रही है ।

चारुमति : हाँ सखि ! यही वह मेवाड़ है । जहाँ रण बांकुरे रत्नसिंह एवं हाड़ा रानी की सी विभूतियां पैदा हुई हैं । जिस मेवाड़ के बल में स्वदेश रक्षा की लहर भरी हुई है । जहाँ की धरती खून से सींची गई है । जहाँ शरणागत अभय के नारे सदैव बुलन्द होते रहे हैं । आज वही मेवाड़ अत्याचारी औरंगजेब के अत्याचारों से सिसक रहा है । कला के ये नमूने कलाकारों के आंसूओं के सबूत हैं । और यह सब हुआ है इस अभागिन के लिए—

सखि : नहीं, महारानी चारुमति के स्वागत में आज राणाजी धन्य हुए हैं । महारानी तुम-सी चारुचन्द्र की किरण को प्राप्त कर के आज राजसमन्द की पाल धन्य है । तुम्हारे चरण स्पर्श करे महाराणा जी ने यह सुन्दर ताल डेढ़ करोड़ रुपयों की लागत से तैयार करवाया है । सिर्फ़ तुम्हारी प्राप्ति में किये गये रण में बहे रक्त को धोने के लिए, महाराणीजी । महाराणा जी ने तो यह ताल बना कर सदा के लिए आपके और उनके मंगल मिलन को अमर कर दिया है । परन्तु आपने उनके साथ

हुए संबंध की यादगार में अभी कुछ भी नहीं किया महारानी !

बाघमती : नहीं सखी मैं भी यहां पर एक बावड़ी बनवाने का निश्चय कर चुकी हूँ। आज ही से इसकी नींव भी राणा-जी के करकमलों से डलवाई जायगी जो मेरे और महाराणा के प्रेम मिलन को अमर रखेगी।

सखी : धन्य हो महाराणी, अब चलें राजसमन्द के नागल का पावन मुहूर्त आ चुका है, राणा जी हमारी बाट देख रहे होंगे।

(पटाक्षेप)

दृश्य—नौ

महाराणा राजसिंह : मेवाड़ के शूरवीर सरदारो ! आज धरती माँ की गोद हरी करने को एक बार फिर से जान्हवी ने स्वर्ग से धरती पर चरण रखा है। आज ऊँचे पहाड़ों की गोद में बहने वाली यह गोमती विनाश के मार्ग से परिवर्तित होकर विकास की ओर अग्रसर हुई है। नौ चौकी की यह छोटी सी पाल दो पहाड़ों की सुरम्य घाटी और उनके मध्य में फैला हुआ यह विशाल ताल मेदपाट की धरती को सिंचित करेगा और तब मेदपाट की जनता को अकाल की विभीषिका नहीं सहन करनी पड़ेगी।

गरीबदास : धन्य हो प्रभो ! आज मेदपाटेश्वर की कृपा से यह गोमती का तट पावन हुआ। आज हम गोमती तट पर रहने वाली सारी प्रजा मेदपाटेश्वर की महती कृपा से आभारी है।

दयालशाह : मेदपाटेश्वर की जय। मेदपाटेश्वर ने अनुकंपा कर असख्य जीवों के उद्धार हेतु, मेवाड़ की अकाल से रक्षा हेतु तथा अकाल में मेदपाट की जनता की जीविका जारी करने के उद्देश्य से इस मनोहर ताल का निर्माण किया है। इस ताल की मनोरम प्रतिमा, छतरियों का सुदृढ़ निर्माण—युगों-युगों तक महाराणा राजसिंह की प्रजावा-त्सल्य की गाथा गाया करेगी।

माधोसिंह : महाराणा ने विषम आपत्काल में गुजरते हुए भी अपने कर्तव्य से मुँह न मोड़ा। महारानी चारुमती की रक्षा का भार उठा कर आपने मानवता को बर्बर अत्याचारों से बचाया है, श्रीनाथजी और द्वारकाधीशजी को मेवाड़ में स्थापित करवा कर आपने अपना कर्तव्य पालन किया।

महाराणा : यह सब माँ दुर्गा का आशीर्वाद है माधोसिंह जी ! कि हम अपने कार्यों को पूरा कर सके। यद्यपि आज हम जिस राजसमन्द का मंगल महोत्सव मना रहे हैं। यह वह राजसमन्द नहीं जो हमारा स्वप्न था। अब तो यह एक खण्डहर मात्र है। सुन्दर कला की सुन्दरतम उदाहरण-मूर्तियाँ आज अंग-भंग सिसक रही हैं। माँ गोमती के पावन जल में कितने शहीदों का रक्त बहता है। माँ सती का अभूतपूर्व बलिदान ही इसकी एकमात्र सफलता का कारण है यह गेवरमाता का देवरा— हम धर्मान्ध अत्याचारों से हमारे प्रधानमंत्री द्वारा बनाये गये इस क़िले को नहीं बचा सके। यह नौ मन्ज़िला क़िला आज धराशायी सा खड़ा है। हम तो आज अपने स्वप्निल ताल को प्रस्तुत नहीं कर सके, परन्तु आशा है यह हमारा लक्ष्य अवश्य पूरा कर सकेगा।

जयसिंह : इसके साथ ही हम कुं० रतनसिंह और उनकी धर्मपत्नी के अभूत्तपूर्व बलिदान को नहीं भूले सकते—जिन्होंने इस ताल के निर्माण में महाराणाजी को अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिये श्रोणित दिया है। श्री नरुजी बारहट जैसे वीर भी भूला सकने योग्य नहीं हैं जिन्होंने मेवाड़ की रक्षा मात्र के लिए अपना बलिदान कर दिया। मैं महाराणा जी से प्रार्थना करूँगा कि वे इस नौ चौकी की पाल पर यह सारा इतिहास अंकित करें, जिससे वे शहीद सदा के लिए अमर हो सकें।

महाराणा : आज हम मेदपाट की जनता के चिर प्रतीक्षित स्वप्न को साकार कर रहे हैं, आज नाव महोत्सव का प्रारम्भ है। इसी मकर संक्रांति के पावन पर्व को मैं अपने पुरोहित गरीबदास जी को १२ गाँव एक घोड़ा और मूल्यवान

रत्न भेंट स्वरूप अर्पित करता हूँ ! आशा है कि वे इसे स्वीकार करेंगे।

गरीबदास मेदपाटेश्वर की जय। मेवाड़पति की कृपा का यह प्रसाद इस ब्राह्मण को स्वीकार है प्रभो!

महाराणा : इसी तरह हम हमारे सभी मित्र पड़ोसियो को एक-एक हाथी व कुछ बहुमूल्य आभूषण भेंट स्वरूप भेज रहे हैं। सभी दूत आज रवाना हो जायँ तथा इस नौ चौकी की पाल पर मेवाड़ का सारा इतिहास शिलालेख के रूप मे लगवाया जाय, इसकी हम आज्ञा देते हैं।

गरीबदास : अब नाव-मुहूर्त का समय हो गया है, महाराणा।

महाराणा . आओ चलें।

सब : महाराणा राजसिंह की जय !

॥ पटाक्षेप ॥

●●

कटुवचन

• डोरोथी विमला

पात्र

गुंजन	:	दस साल का लड़का
कुमकुम	:	आठ साल की लड़की
माँ, पिता, डॉक्टर		

[एक साधारण सा कमरा। एक मेज व कुर्सी एक ओर रखी हुई है। कमरे की सजावट भी साधारण ही है। दो बालकों का खेलते हुये प्रवेश] !

गुंजन : कुमकुम !

कुमकुम : हाँ भैया !

गुंजन : आज तुम बड़ी खुश दिखाई दे रही हो !

कुमकुम : हाँ भैया ! अम्मा ने मेरे लिये नयी फ्राक सी है। देखो…………

गुंजन : (फ्राक देखते हुये) अरे हाँ ! तेरी यह फ्राक तो बड़ी सुन्दर है !

कुमकुम : अच्छा भैया !

गुंजन : [प्यार से गाल थपथपाते हुए] हाँ !

कुमकुम : आओ भैया ! हम मिलकर खेलें !

गुंजन … सा खेल ?

… भैया, तुम मास्टर बनो और मैं…………

… में ही बोलते हुए] और तू इन्सपैक्टर…………[हँसता है]

… इन्सपैक्टर !

…ध से चिढ़ाने का अभिनय करता हुआ] और बस आयेगी …रा निरीक्षण करने ! बोर्ड पर तारीख नहीं लिखी, विषय नहीं लिखा, कॉपियाँ मेहनत से नहीं जाँची····बस वही घिसी-पिटी बातें !

[कुमकुम का रूठकर मुंह फेरना, गुंजन का हाथ पकड़कर मुँह ऊपर करते हुये]

गुंजन : बस रूठ गयी ?

कुमकुम : और क्या ? तुम तो मेरी हंसी उड़ाते हो !

गुंजन : देख, आज हम सिपाही-सिपाही खेलेंगे !

कुमकुम : बस वही सिपाही-सिपाही ! (चिढ़ाते हुये बन्दूक चलाने का, मोर्चे पर जाने का अभिनय करते हुये) साइरन बोलेगा ! शत्रु आक्रमण करेंगे और हम अपनी-अपनी बन्दूकें सम्भाल कर चल देगें ! शत्रु से मोर्चा लेंगे ! भला यह भी कोई खेल है ?

गुंजन : (रूठते हुए) अहू उ उ····तुझे क्या पता ? बन्दूक की गोलियों से कैसी मधुर आवाज आती है ! (स्नेह से कुमकुम का हाथ पकड़ते हुये) खेल तो सही, देख कितना सरल खेल है !

कुमकुम : (हाथ झटकते हुये) छिः कितना पुराना खेल है।

गुंजन : और तेरा बताया हुआ खेल बड़ा नया है।

कुमकुम : (मुंह बनाते हुये) जाओ, मैं नहीं खेलती।

[एक ओर जाना और मुंह फेरकर बैठ जाती है]

गुंजन : (पकड़कर उठाते हुये) बड़ी खराब है तू ! खेलने से मना करती है, आलसी कहीं की ! (कुमकुम हाथ छुड़ाने की चेष्टा करती है)

कुमकुम : मैं नहीं खेलती, नहीं खेलती !

गुंजन : अरे उठ भी तो ! मैं सारा दिन खेलता रहूँ, तो भी जी न भरे आ सिपाही-सिपाही खेलेंगे।

कुमकुम : मुझ से सिपाही-सिपाही नहीं खेला जायगा (बालों को ठीक करते हुये, मुंह बनाते हुये) मैं बहुत थक गयी हूँ, गर्मी भी बहुत पड़ रही है।

गुंजन : [चिढ़कर] बड़ी आई थकने वाली, आलसी कहीं की।

कुमकुम : देखो भैया बार-बार मुझे आलसी-आलसी मत कहो।

गुंजन : आलसी नहीं, तो आ खेल !

कुमकुम : मैं तो अपना बताया हुआ खेल खेलूंगी। मुझे तुम्हारा खेल अच्छा नहीं लगता।

गुंजन : [चिढ़कर क्रोध से] मत खेल, मत खेल, चुड़ैल कहीं की ! मैं अब तेरे साथ कभी नहीं खेलूंगा। चाहे तू मर भी क्यों न जाए !
[— — बैठ

कुमकुम : [illegible] गंदा ! [गुंजन ने क्रोध में आकर उसके मुंह पर थप्पड़ मार दिया]

गुंजन : ले चुड़ैल ! अभी और मारता हूं ।

[कुमकुम रोती हुई अन्दर चली जाती है । मां का प्रवेश]

मां : बेटा गुंजन

गुंजन : [चौंककर] हां मां !

मां : [प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुये] आज कुमकुम की वर्षगांठ है । शाम को पार्टी होने वाली है, जा जल्दी से बाजार से मिठाई ले आ ।

गुंजन : मैं नहीं लाता ।

मां : (पुचकारते हुए) अरे क्या हुआ तुझे ! बहिन के लिये मिठाई नहीं लायेगा ।

गुंजन : नहीं लाऊंगा, नहीं लाऊंगा ! वह मेरे साथ सिपाही-सिपाही क्यों नहीं खेलती है ?

मां : बस ! अरे तू मिठाई तो ले आ, फिर देख तू कहेगा जो खेलेगी।

गुंजन : अच्छा तो ला जल्दी पैसे दे दे । अभी लाता हूं । (पैसे और थैली देते हुये)

मां : ले ! जरा जल्दी आना बेटा ।

गुंजन : अच्छा मां—(चुटकी बजाते हुये) ये गया और ये आया ।

(कुमकुम का प्रवेश) (प्रस्थान)

कुमकुम : मां बड़ी जोर से सिर दुख रहा है । चक्कर भी आ रहे हैं ।

मां : सिर दुख रहा है ! (आगे बढ़कर सिर छूते हुये) अरे तुझे तो बड़ा तेज बुखार है । चल जल्दी से लेट जा ! (बिस्तर पर कुमकुम को लिटाती है) ठंड तो नहीं लग रही है ?

कुमकुम : नहीं मां !

मां : अरे गुंजन के पापा कहां हो ? देखो तो कुमकुम को कितना तेज बुखार चढ़ गया है । (पापा का प्रवेश)

पापा : क्या कहा ? कुमकुम को बुखार............

मां : हां ! कैसा शरीर तप रहा है ।

(पापा आगे बढ़कर कुमकुम का हाथ व सिर छूते हैं)

पापा : अरे सचमुच ! १०४° डिग्री से कम बुखार न होगा । मैं अभी डाक्टर को लाता हूँ, तब तक तुम इसकी देख-भाल करो । आजकल चेचक का प्रकोप भी बहुत हो रहा है ।

(प्रस्थान)

(गुंजन का मिठाई लेकर प्रवेश)

गुंजन : (जोर से आवाज देते हुए) माँ ! ये लो मिठाई और कुमकुम से कहो कि मेरे साथ सिपाही-सिपाही खेले।

माँ : शऽऽऽऽ चुप रह ! कुमकुम को बहुत तेज बुखार चढ़ गया है। बेहोश पड़ी है। तेरे पापा डॉक्टर को लेने गये हैं !

गुंजन : क्या कहा ? कुमकुम को बुखार चढ़ गया। बेहोश है ! (शीघ्रता से उसकी खाट की ओर बढ़ता है तभी डॉक्टर के साथ उसके पिता का प्रवेश)।

पिता : यह रही बेटी कुमकुम !

डॉक्टर : (आगे बढ़कर कुमकुम का हाथ देखते हुए, चेहरे पर गंभीरता है) बुखार बहुत तेज है ! हालत गम्भीर है ! (माँ की ओर देखते हुये) आप सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रखिये। (पिता की ओर देखते हुए) मैं यह इन्जेक्शन लगा रहा हूँ, पर पूरी सावधानी की आवश्यकता है। देखिये ! मरीज के पास कोई नही जाये। किसी प्रकार का शोरगुल न हो। शाम तक होश आ जाय, तब कुछ आशा है अन्यथा कुछ नही कहा जा सकता।

गुंजन : डॉक्टर साहब ऐसा न कहिये !

डॉक्टर : हाँ बेटे ! हम सब बुखार और बेहोशी को दूर करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। आगे ईश्वर की इच्छा। [पिता से] लड़के को यहाँ से दूर रखिये और हाँ मरीज का पूरा ध्यान रखिये।

(प्रस्थान)

दृश्य—दो

(गुंजन—बड़ा उदास, मुँह लटकाये, चिन्तित-सा इधर-उधर घूम रहा है। कभी उसकी चाल तेज हो जाती है और कभी धीमी। स्वयं ही कुछ बड़बड़ाता जाता है)

गुंजन : (स्वगत, मुठ्ठियाँ कस कर बन्द करते हुए) ओह ! कुमकुम को बुखार चढ़ गया ! बेहोश पड़ी है। डॉक्टर साहब कहते हैं हालत गम्भीर है ! शाम तक होश नहीं आया तो........ हे ईश्वर........ यदि कुमकुम को कुछ हो गया तो........ हे ईश्वर........ नही........ नही........ अब मैं क्या करूँ ? (परेशानी से) ओह अपराधी मैं हूँ ? यदि मैंने कुमकुम को वे कठोर शब्द नही कहे होते तो अच्छा होता।

(प्रस्थान)

पुनः दृश्य—पूर्व

(वही कमरा, वही सब कुछ)

(गुंजन का प्रवेश, धीरे-धीरे वह कुमकुम की खाट की ओर बढ़ता है। उसकी आँखों में आँसू छलक रहे हैं, कुमकुम की खाट के पास जाकर उसे देखते हुए)

गुंजन : हाय ! एक ही दिन में बुखार ने क्या से क्या कर दिया ?
(कुमकुम की खाट के पास घुटने टेककर बैठते हुए)
कुमकुम, मुझे क्षमा कर दो ! तेरे बीमार होने से पहले मैं तुझे न मालूम क्या-क्या कह बैठा था ? मुझे बड़ा दुःख है ! (रोते हुये) मुझ से अब नहीं सहा जायेगा। (कुमकुम की ओर देखकर) बोल कुमकुम कर दिया न तूने मुझे क्षमा ?

कुमकुम : (धीरे से आँखें खोलते हुये गुंजन की ओर देखकर) मेरा प्यारा-सा भैय्या !

गुंजन : (उसके मुँह की ओर देखते हुए) बहन (रोता है। धीरे-धीरे पुनः

कुमकुम की आँखें बन्द होने लगती हैं, सब व्यथित हो उठते हैं, डॉक्टर गुंजन को अलग करता है)

गुंजन : नही डाक्टर साहब, मुझे बहन से अलग मत करो। (थोडी देर मे कुमकुम फिर आँखें खोलती है, सब के चेहरे खिल उठते है।)

माँ-बाप : (साथ ही) बेटा कैसा जी है ?

डॉक्टर : क्या बेटा कुछ तकलीफ है ?

कुमकुम : भूख लगी है, चाय पियूंगी !

माँ : अभी लाती हूँ बेटा ! (हँसते हुए जाना)

डॉक्टर : अब चिन्ता की कोई बात नही है। सुबह तक सब ठीक हो जायेगा। (गुजन से) बेटा अब किसी को कटु वचन मत कहना !

गुंजन : डाक्टर साहब ! अब मैं जीवन भर कभी ऐसी भूल नही करूंगा। [पिता का प्यार से गुजन को अक में लेना]

पिता : अच्छा, बेटा !

(माँ का चाय लेकर प्रवेश) कुमकुम से ।

माँ : लो बेटा। देखो मैं चाय ले आई। (सहारा देते हुये उठाना व कुमकुम का चाय पीना)

कुमकुम : भैय्या ! चलो सिपाही-सिपाही खेलेंगे !

गुंजन : नही मास्टर-मास्टर खेलेंगे ! वही बड़ा अच्छा और सरल खेल है !

पिता : आज नही बेटा ! दो दिन कुमकुम आराम कर ले, तब खेलना !

गुंजन : हाँ, हाँ कुमकुम अभी तू लेट जा। देख एक ही दिन मे" कितनी कमजोर दिखने लगी है।

कुमकुम : हँस पडती है। [सभी हँस पड़ते हैं]

पटाक्षेप

••

पात्र :

[illegible]

दृश्य – एक

(उदयराम अपने घर के बाहर चबूतरे पर बैठा है। जीतमल का प्रवेश। संध्या समय।)

उदयराम : आओ, जीतमल कहाँ जा रहे हो?

जीतमल : रामू लुहार के यहाँ, सुबह हँसिया रख आया था। उसने अब तक सुधार दिया होगा। कल फसल जो काटनी है।

उदयराम : भाई, इस बार फसल की बड़ी दुर्दशा हुई।

जीतमल : हाँ यह साल सूखा निकल गया, फिर भी जो कुछ हाथ लगे, उसे तो बटोरना ही होगा।

उदयराम : हाँ, हाँ। बैठो, कुछ बात-चीत ही करें।

जीतमल : (बैठता है) आपने तो आज काम शुरू कर दिया।

उदयराम : काम क्या शुरू कर दिया, मानो किसी गढ़ को जीता जा रहा हो। वर्षा की कमी ने कुओं को पाताल में पहुँचा दिया। इधर,

बैलों के खुर पक गए हैं। अजीब बीमारी............भयंकर समस्याएँ...........

जीतमल : बेचारे बैलों के कठोर श्रम से पानी खोदकर साल भर जैसे-तैसे फसलें पिलाईं। बहुत दुख देखा, अब मरे जा रहे हैं। कुछ दवा ?...........

उदयराम : भैरूजी की भभूत (राख) लगाने से लाभ पहुँचा है।

जीतमल : अच्छा है। जो भाग्य में लिखा है वह होकर रहेगा।

उदयराम : भाग्य सबसे बड़ा है। विधाता का लिखा हुआ कभी मिटाया नहीं जा सकता।

राजू : (प्रवेश करते हुए) पिताजी, भुजबल भाग्य का विधाता है। पुरुषार्थ सबसे बड़ा है। पुरुषार्थ में वह शक्ति है कि रेगिस्तान को भी उद्यान में बदल दे। पर्वतमालाओं को समतल बना कर फसलें उगाएँ। नदियों को इच्छानुसार मोड़कर अधिक उपयोगी बना लें। किन्तु हम पुरुषार्थ को ठुकरा कर अंधविश्वास के फंदे में फंसते जा रहे हैं। इसी का यह फल गरीबी हमारे गले पड़ी है।

उदयराम : बेटा, तुम अभी नादान हो! दुनिया की रीति-नीति में क्या समझो ?

जीतमल : तुम पढ़ने वाले जवान, जरा सोचो, हम दिन रात कड़ी मेहनत करते हैं, फिर हमारी हालत ऊँची क्यों नहीं उठती ? भैया, यह बड़ा टेढ़ा सवाल है। बड़े होने पर तुम्हें पता चलेगा।

राजू : मुझे तो अभी से पता चल रहा है कि भाग्य के नाम पर अंध-विश्वास का क्षय रोग समाज में बुरी तरह फैला हुआ है। इससे जन-जीवन निरंतर जर्जर हो रहा है। यदि अब भी समय रहते हम न सँभले, तो गरीबी का आतंक हमारा सत्यानाश कर देगा।

जीतमल : हमने गरीबी को न्योता कब दिया ?

राजू : जो गरीबी का निमंत्रण स्वयं स्वीकार करले, गरीबी की शरण में चला जाए, उसके लिये क्या कहें ?

उदयराम : बेटा कहने की बातें कुछ और होती हैं, जो भुगतता है वही जानता है कि उसे क्या-क्या करना पड़ता है।

राजू : पिताजी, यह सच है कि आप दिन-रात कठोर श्रम करते हैं। किन्तु अंधविश्वास में बँधे रहकर प्रगतिशील गति-विधि को

(हरीश का अध्ययन-कक्ष। हरीश कुर्सी पर बैठा हुआ सामने की टेबल पर झुककर कुछ लिख रहा है। सामने दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। समय-प्रातःकाल। प्रभात प्रवेश करता है।)

प्रभात : नमस्ते।

हरीश : नमस्ते। आइए बंधु! आज इतनी जल्दी ?

प्रभात : वनस्पति-विज्ञान की पुस्तकें लेने आया हूँ। कुछ लिखित कार्य करना है।

हरीश : अच्छा, बैठिए। और क्या हाल-चाल हैं ?

प्रभात : सब ठीक है। कल शाम को पेट में तकलीफ़ हो जाने से कॉलेज न आ सका। वाद-विवाद प्रतियोगिता कैसी रही ?

हरीश : बड़ा मजा आया। तुमने तो बंधु स्वर्ण-अवसर खो दिया, उसे सुनने का। यद्यपि अपना जो वार्षिकोत्सव चल रहा है, उसमें मुझे तो यही वाद-विवाद प्रतियोगिता इतनी पसन्द आई कि अन्य कार्य-क्रम फीके-से लगे।

प्रभात : ऐसी क्या खास बात थी ?

हरीश : सबसे पहली बात थी—विषय का चुनाव। "उपज बढ़ाने

पर पहले ध्यान देना आवश्यक है, अथवा उद्योग-धन्धों की वृद्धि पर।"

प्रभात : विषय तो बहुत अच्छा था। देश की आर्थिक स्थिति का आधार भी तो इसी बात पर आश्रित है।

हरीश : हाँ बंधु, इस पर वक्ताओं ने इतने अच्छे विचार दिये कि सुन कर दंग रह जाना पड़ा।

प्रभात : मैं तो वंचित रह गया' अब क्या हो सकता है ?

हरीश : खैर।

प्रभात : निर्णय कैसा रहा ?

हरीश : उपज बढ़ाने पर पहले ध्यान देना आवश्यक है, इस बात पर अधिक बल था।

प्रभात : लेकिन उद्योग-धंधों की भी तो उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हरीश : उपेक्षा क्यों ? उनका चालू रहना तो आवश्यक है ही।

प्रभात : प्रथम कौन आया ?

हरीश : राजेन्द्र।

प्रभात : मुझे भी उसी की संभावना थी।

हरीश : गजब का बोलने वाला छात्र है। उसके शक्तिशाली तर्कों के सामने विरोधी पक्ष की दलीलें मरियल-सी लगीं।

प्रभात : क्यों न लगे ?

हरीश : राजेन्द्र जैसे होनहार छात्र पर देश को गर्व होना चाहिये।

प्रभात : वह तो परीक्षाओं में भी लगातार सर्व प्रथम आता रहा है।

हरीश : उसके लिए तो मानो इन अध्ययन के बाद विदेशों में अध्ययन करने के सुअवसर तैयार हैं।

प्रभात : सुना है कि उसके घर की आर्थिक दशा साधारण है।

हरीश : कुछ भी हो, उसके व्यक्तित्व की दशा असाधारण है, जिसने सभी कठिनाईयाँ पीछे धकेल दीं। सरकार उसकी योग्यता पर मुग्ध होकर उसे छात्रवृत्ति दे रही है।

प्रभात : मुझे तो प्रतीत होता है कि कालेज से निकलने पर वह राज्य का कोई अच्छा पदाधिकारी बनेगा।

हरीश : सही है। हमें उससे प्रेरणा लेनी चाहिए।

प्रभात : अवश्य।

दृश्य–तीन

(राजपथ पर आमने-सामने मिलते हुए)

अनिल : कहिए' कोई नया समाचार ?

सुधीर : क्या कहूँ····हाँ, एक बात है—अपने छात्र राजेन्द्र को आप जानते हैं। वह अपने यहाँ से···········

अनिल : वही राजेन्द्र, जिसने एम. एस. सी. (एजी.) को टॉप किया था, वही तीन-चार वर्ष पहले···········

सुधीर : जी हाँ, वही। आज कल अपने गाँव में खेती करता है।

अनिल : सर्विस (नौकरी) नहीं मिली ?

सुधीर : सर्विस के लिए तो दो-तीन बार शासन से भी बुलावा आया और विदेशों से भी। उसने सबको अस्वीकार कर दिया।

अनिल : अजीब बात है।

सुधीर : जी हाँ, और अजीब बात है कि उसके गाँव का प्रत्येक किसान अब नये ढंग से योजनाबद्ध खेती करता है। पैदावार कई गुनी बढ़ गई है। ग्रामवासियों की रूढ़िवादी प्रथाएँ भी काँप उठीं। वहाँ सह–अस्तित्व, आत्मविश्वास और अनेक धंधे फल-फूल रहे हैं।

अनिल : अच्छा।

सुधीर : राजेन्द्र अपने अध्ययन को अपने श्रम से मूर्त रूप देना चाहता है। इसके लिए उसका भगीरथ प्रयत्न देश में खुशहाली की गंगा बहाएगा।

अनिल : अब वहाँ के निवासियों का जीवन अनुकरणीय ही होगा !

सुधीर : जी हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं। आज के युग में इस प्रकार का यह पहला उदाहरण है कि राजेन्द्र जैसे व्यक्ति ने ग्रामवासियों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया।

अनिल : यह अपने लिए भी महान् गौरव की बात है।

दृश्य–चार

(गाँव की चौपाल पर कुछ व्यक्ति बैठे हैं। राजेन्द्र भी वहाँ पहुँच रहा है, त्यों ही ग्राम सेवक का प्रवेश। समय–संध्या।)

ग्राम सेवक : राजेन्द्र बाबू, रुकिये।

राजेन्द्र : (रुक कर हाथ जोड़ते हुए) नमस्कार।

ग्राम सेवक : (हाथ जोड़कर) नमस्कार।

राजेन्द्र : अभी कष्ट कैसे किया ?

ग्राम सेवक : एक बहुत अच्छी खबर लाया हूँ।

राजेन्द्र : खुश खबर सुनाइए। शुभ काम में देरी क्यों ?

ग्राम सेवक : इस वर्ष आपका ग्राम देश में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। दस हजार रुपयों का पुरस्कार मिला है।

राजेन्द्र : यह पुरुषार्थ की विजय...........

(चौपाल पर जोरदार हर्ष-ध्वनि)

(परदा गिरता है)

••

हवा महल

• डॉ० शिवकुमार शर्मा

जीवन की तराजू में सुआयोजित महनत और उससे मिलने वाला फल सदा से ही बराबर उतरते रहे हैं। इस दृष्टि से दिसम्बर के महीने के दूसरे रविवार के बाद वाले दिन की शाम की घटना भी एक कथनीय घटना है। वैसे इस घटना को अजीब तो नहीं कह सकते क्योंकि इस अजीबो-गरीब दुनियाँ में क्या ऐसा है, जो अजीब हो ? फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि इस जीवन की तराजू ने उस दिन की महनत और उससे मिलने वाले फल को यों तोल डाला कि तराजू की डंड़ी ज़मीन के साथ लम्ब बनाने लगी।

इस दिन मैं तो आकस्मिक अवकाश पर था, और इस अवकाश का अधिक से अधिक उपयोग हो इस दृष्टि से कागज़ के एक पुर्जे पर दिन भर की कार्य योजना बना रहा था कि सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आवाज़ सुनाई दी। मेरा दर्वाज़े की ओर देखना और मेरे साथी श्री तिवाड़ी का कमरे में घुसना दोनों ही काम साथ-साथ हो गये। साधारण अभिवादन के बाद ही उन्होंने अंग्रेजी में टाईप किया हुआ एक प्रार्थना पत्र मेरे सामने रख दिया और कहने लगे:—

—"यह उसी लड़के का प्रार्थना पत्र है जिसका मैं जिक्र कर चुका हूँ। इसने मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास की है। सौ में से गणित में ६५, केमिस्ट्री में ६५ और फिजिक्स में ६७ अंक हैं। कमाल का लड़का है। इसके इंटर प्रथम वर्ष के अंक देखिये। सभी विषयों में अंक ६० के ऊपर हैं। द्वितीय वर्ष में यह अब तक पढ़ता रहा है, यह बात इस पत्र में पढ़िये। बहुत जीवट वाला लड़का है। कहता है–इस वर्ष ऐसा लगा कि शायद इंटर में मुझे प्रथम श्रेणी न मिले, इसलिए कालेज छोड़ दिया। अगले साल फिर से कालेज में प्रवेश लूंगा और निश्चित ही प्रथम श्रेणी प्राप्त करूँगा।"

—"तो क्या वह नौकरी करने को पूरी तरह तैयार है ? मैंने पूछा।
—"जी हाँ। वह कहता है कि आखिर जुलाई तक मैं करूँगा भी तो क्या ?" मेरे साथी ने उत्तर दिया।
—"तो क्या आपने उसे यह बता दिया कि उसे सिर्फ़ पचास रुपया वेतन और पैंतीस रुपया मँहगाई ही मिलेगा ?"
—"हाँ। यह वह अच्छी तरह जानता है। आखिर मैट्रिक पास ही तो है वह।"
—"क्या वह लड़का गाँव चलने को तैयार है ?"
—जी हाँ। उसके बहनोई कालेज में प्रोफेसर है। वे राजी हैं राजी क्यों न होंगे ? आखिर मैंने जो राजी किया है उन्हें।"
—"अच्छा तो चलें। पहले बड़े साहब के ऑफिस चलना होगा और पता लगाना होगा कि अपने साहब ने इस खाली जगह पर किसी की नियुक्ति तो नही कर दी है।"
मैंने अपनी योजना वाला कागज का पुर्जा वहीं छोड़ा और हम दोनों जा पहुँचे बड़े साहब के कार्यालय में और ज्योंही मैं उनके कमरे में घुसा, साहब को भी वहीं बैठा पाया। उन्होंने कहा—
—"जब तक आप खुद उम्मीदवार को तलाश करके नहीं लाओगे कुछ भी संभव नहीं है।"
—"जी हाँ। यह एक नया उम्मीदवार है।" यह कहते हुए मैंने उस उम्मीदवार का प्रार्थना पत्र और रजिस्ट्रेशन कार्ड उनके सामने प्रेषित कर दिये।
—"केवल रजिस्ट्रेशन कार्ड काफ़ी नहीं है। यह नाम एम्प्लायमेन्ट एक्सचेंज से नियमित रूप से आने पर ही नियुक्ति देना सम्भव होगा।"
—"कोई हर्ज नहीं। मैं अभी वहाँ पहुँचता हूँ। मैंने उत्तर दिया।
—आप एक घन्टे के अन्दर–अन्दर अगर यह काम पूरा करके लौट आते हैं, तो मैं यहीं बैठा-बैठा इस उम्मीदवार की नियुक्ति कर दूँगा।"
—"जी हाँ। मैं एक घंटे के पूर्व ही लौटने की कोशिश करूँगा।" मैंने अपने मित्र को साथ लिया और तेजी से साइकल लेकर जा पहुँचे एम्प्लायमेन्ट एक्सचेंज। और डट गये एम्प्लायमेन्ट ऑफीसर के सामने की कुर्सी पर।
—"कहिए, कैसे पधारना हुआ ?" एम्प्लायमेंट ऑफीसर ने पूछा।
—"क्या कहूँ साहब ? उस दिन मैं आप से मिला ही था। आपके द्वारा बताये हुए दो हो उम्मीदवार नाकाराआमद साबित हुए। और द्वार-

पेट कारोबार में लग चुके थे। दो ने कालेज में पढ़ना शुरू कर दिया। और आखिरी एक ने तो आकर यही नौकरी का प्रार्थना पत्र प्रेषित करने मात्र के लिये ही आपके यहाँ रजिस्ट्रेशन कराया था। वह यही नौकरी करने को राजी नहीं है। यों उस दिन हमारा काम नहीं बन पाया। अब यह उम्मीदवार हमने तैयार किया है, अगर आप इसका नाम भेजें तो बड़ी कृपा हो।" मैंने उत्तर दिया।

—"मगर यह तो मैट्रिक ही है।" एम्प्लायमेंट ऑफीसर ने पूछा।

—"हाँ, हाँ। परन्तु इसने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक किया है और इसने इन्टर द्वितीय वर्ष में अभी ही कालेज छोड़ा है।" मैंने उत्तर दिया।

—"तो क्या हुआ? हमारे पास मैट्रिक प्रथम श्रेणी के और भी उम्मीदवार हैं और तुमने तो बी० ए० और इन्टर पास उम्मीदवार माँगे हैं? ये मैट्रिक की सूचि में कैसे भेज सकता हूँ।" उन्होंने पूछा।

—"मैं तो समझता हूँ जब वैसे उम्मीदवार आपके पास नहीं हैं, तो फिर उनसे कम योग्यता के व्यक्तियों से ही तो काम चलाया जायगा। और आप हमारी कठिनाई को भी तो देखिये। वहाँ गाँव में तो यों समझो कि व्यक्तियों को बहला फुसला कर और अगर अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो पिंजड़े में बंद करके लेजाना पड़ता है और वैसे मैं आप को अभी इतमिनान कराये देता हूँ।"

मैंने फोन उठाया और अपने कार्यालय से ज्योंही पहली आवाज आई, हमारे साहब की थी। केवल यही कहना पड़ा कि ये एम्प्लायमेंट ऑफीसर आप से बात करना चाहते हैं और फोन एम्प्लायमेंट ऑफीसर को पकड़ा दिया।

—"मैं मैट्रिक प्रथम श्रेणी वाले उम्मीदवारों की सूची आपको अभी बनवाकर देता हूँ।" एम्प्लायमेंट ऑफीसर ने संतुष्ट होकर फोन यथास्थान रखते हुए कहा।

—"जी हाँ। जरा जल्दी काम करा दीजिये। हमारे साहब अब एक घंटे तक ही ऑफिस में रहेंगे और उन्हें आज शाम की गाड़ी से ही बाहर भी जाना है।" मैंने उत्तर दिया।

—"आप इनको देने का पत्र जरा जल्दी तैयार करा दीजिये।" एम्प्लायमेंट ऑफिसर ने अपने एक सहायक को सम्बोन्धित करते हुए आज्ञा दी।

कार्यालय का काम यथावत् चलता रहा। कई उम्मीदवार आये और अपना-अपना काम करके चले गये। मैं बार-बार जब घड़ी की ओर दृष्टि डालता तो ऐसा लगता कि देरी हो रही है। पर यही सोचकर संतोष कर लेता कि मेरा कागज महत्वपूर्ण अगर है भी, तो मेरे लिए, इस कार्यालय की दृष्टि से तो मेरा कागज यहां के अनेकों कागजों में केवल एक साधारण कागज मात्र है। इसी कारण जल्दी करने की हिम्मत नहीं हुई। मन मसोस कर बैठे रहना, या कभी-कभी अप्रत्यक्ष संकेत की दृष्टि से कुछ हिलडुल लेना मात्र ही ठीक समझा। जब अपना पत्र हाथ लगा तो साढ़े पर कई मिनिट गुजर चुके। हम दोनों तेजी से चले।

—"देखिये यह भी क्या खूब है।" मेरे साथी ने कहा।

—"हाँ वाक़ई उल्टी गंगा बह रही है।" मैंने उत्तर दिया।

—"नौकरी लड़के को मिलेगी और दौड़ रहे हैं हम।"

—"और दौड़ भी यों रहे हैं कि इस दौड़ने में हमें इतना भी मान नहीं, कि पत्र लाने' ले जाने में दौड़ने का काम है किसका, और कर रहा है कौन ?"

—"फिर भी यह लड़का अगर अपने यहाँ आ पड़े तो बुरा नहीं है। कुछ न कुछ काम तो करेगा ही।"

—"कुछ न कुछ की क्या बात है ? आखिर फर्स्टक्लास है यह। मेरी दृष्टि से तो यह सैकण्ड क्लास इन्टर या थर्ड क्लास बी०ए० से किसी कदर कम नहीं है।"

—"वाह' वाह ! अजी क्या हम इसकी तुलना किसी एम०ए० से नहीं कर सकते ?"—मेरे साथी ने एक चुटकी ली।

—"काश एम०ए० भी लोग सप्लीमेंट्री में पास हुआ करते तो हम यह भी कर गुजरते।" मैंने मजाक में हिस्सा बँटाते हुए उत्तर दिया।

—"जो भी हो' हमें तो इसे नियुक्ति दिलाने में सफलता मिलनी चाहिए। वैसे इसकी "पर्सनलिटी" बड़ी अच्छी है। चश्मा लगाता है, तन्दुरुस्त है, लम्बे कद का है, और फिर गनीमत तो यह है कि यह वहाँ गाँव आने को राजी है।" मेरे मित्र बोले।

—"हाँ। सबसे अच्छी बात तो यही है कि यह अपने पिंजड़े में बाखुशी आ फँसा है। साहब का हुक्म हुआ और यों समझो कि पिंजड़े की फाटक के ताला लगा।" मैंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

ऐसी ही बातें करते हुए हम कार्यालय जा पहुँचे। साहब रवाना हो चुके थे। साहब के निजी सहायक (पी.ए.) के सामने पत्र रख दिया। पूर्व बात-

चीत के समय इनके भी उपस्थित होने से ज्यादा स्पष्टीकरण की जरूरत नहीं पड़ी। इन्होंने पत्रों की जांच की, अपना नोट इन पत्रों पर लगाया और हमें साहब की कोठी का पता बताते हुए शीघ्र ही वहां पहुँचने और पत्रों पर हस्ताक्षर कराने का आग्रह किया।

साहब की कोठी का पता इतना स्पष्ट बताया गया था कि हम सीधे वहीं जा पहुँचे। दर्वाजा बन्द था। घंटी बजाई, साहब बाहर निकले, नोट को पढ़ा और कहने लगे—

—"यह वही उम्मीदवार है न !"

—"जी हाँ यह वही है।" मैंने फ़ौरन उत्तर दिया।

साहब ने हस्ताक्षर किये। अब तक ३॥ बज चुके थे। साहब ने मुझे आदेश दिया—"अब इन पत्रों को ऑफिस जाकर सीधे ही टाईपिस्ट को दीजिये।"

इधर साहब का आदेश और अब तक की दौड़ धूप से थके पांव थे, और उधर पाँच मील की अब बची हुई दूरी और उस पर बाइसिकल की दौड़ थी। फिर भी हम दोनों साथी प्रसन्न मुद्रा में थे। अपने साथी को अब मैंने विश्वास के साथ यह कह दिया कि वे उस लड़के को जाकर सूचना दें कि उसकी नियुक्ति हो गई है। वह अब दूसरे दिन प्रातः ही रवाना होने को तैयार रहे और में लम्बी दौड़ पर चल पड़ा। सवा चार बजते-बजते कार्यालय में पहुँचा। टाईपिस्ट के कमरे में घुसा और अपना कागज़ उसके सामने रख दिया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु अपने सामने के टाइप करने के कागजात के ढेर में सबसे नीचे उसने मेरा कागज़ रख दिया और काम करने लगा। उसने भारी काम में लगे रहने का ऐसा प्रदर्शन किया कि मैंने उसे कुछ भी कहने की जरूरत नहीं समझी। फिर भी उसके काम करने की तीव्र गति से मुझे विश्वास हो गया कि मेरी बारी शीघ्र आयेगी। थोड़ी देर बाद ही मेरे पत्र की बारी आई। उसने मेरा कागज़ उठाया और चन्द सैकण्ड में धड़ाके से पूरा करके मेरे हाथ में दे दिया और बताया कि अब मुझे हैडक्लर्क से मिलना है।

हैडक्लर्क साहब ने पत्रों को सरसरी तौर पर देखकर टाइप किए हुए हुक्मनामें पर हस्ताक्षर कर दिये और नियुक्ति शाखा के एक लिपिक को दे दिया। लिपिक ने उस पत्र को पढ़कर एक अजीब-सी मुद्रा में मेरी ओर देखा और पूछा—

— "एम्प्लायमेंट एक्सचेंज से प्राप्त पत्र किधर है ?

— "ये इधर है।" मैंने उत्तर दिया।

— "लड़के का प्रार्थना पत्र कहाँ है ?

—"ये लीजिये !"

—"प्रमाण पत्रों की सही प्रतियाँ कौन सी है ?"

—"इधर ये हैं !"

उसकी पैनी दृष्टि एक क्षण मे ही प्रत्येक कागज को देख लेती और वह दूसरा प्रश्न कर देता । अंत मे उसने पूछा—

—"क्या आपके पास इस उम्मीदवार का मैट्रिक का प्रमाण पत्र भी है ?"

तभी मुझे याद आया कि मेरे मित्र ने अहतियातन वह प्रमाण पत्र मुझे अपने पास अलग से सुरक्षित रखने और काम बनने पर लौटा देने को दे रखा था । मैने उसे जेब से निकाला और सामने रखते हुए बोला–

—"यह लीजिये ! आप जो कुछ भी मांगते हैं, मैं फौरन दिये देता हूँ तब काम बनने मे कैसे देर हो सकती है ?

लिपिक ने व्यग भरी हँसी हँसते हुए कहा—

—"आपका ख्याल है कि अब देरी नही । पर मेरे ख्याल से तो अभी दो वर्ष चार दिन की देरी है । देखिये ! ये है इसकी जन्म तारीख । और इसके अनुसार आज के भी चार दिन बाद यह लडका सोलह वर्ष का होगा ?"

—"ऐसा कैसे होगा ?" यह कहते हुए मैंने उन पत्रों मे सभी जगह लिखी जन्म तारीख एक सर्राटे से देख डाली और लिपिक की शक्ल देखने लगा ।

दिन भर की दौड़ धूप मुझे याद आई । मुझे मेरे मित्र की सहयोग की उत्कठ भावना का ख्याल आया । मुझे उस लड़के के बंधे बिस्तरो के खुलने और उसकी निराशा का भान हुआ और यही जीवन की तराजू उस सन्ध्या-काल के अन्धकार मे उस दिन की महनत और उसमे मिलने वाले फल को यों तोलती हुई नजर आई कि उसकी डंडी जमीन के साथ लम्ब बना रही थी । नीचे के पलड़े मे दिन भर की महनत का भारी बोझ था, पर ऊपर आकाश को छूने वाला, महनत के फल वाला पलड़ा—पूर्णतः खाली ।

तभी खयाल आया कि यह तो हवामहल बन गया । पर कभी-कभी हवा-महल का बनाना भी बुरा नहीं है और यो समझो तो कोई इसे बनाता थोड़े ही है । यह तो कम्बख्त बन जाता है और आखीर में जाकर पता लगता है ।

••

जार्ज स्टीफेन्सन

• महेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ

मेरा नाम जार्ज स्टीफेन्सन क्यों रखा गया ? यह वास्तव में पूछे जाने योग्य प्रश्न है । एक ब्राह्मण-पुत्र का नाम भी कहीं ऐसा हो सकता है ? परन्तु अब तो मेरा यह नाम ही पॉपूलर हो गया है और अब लोगों को, सच पूछा जाय तो, खलता भी नहीं होगा, क्योंकि आजकल इस सम्बन्ध में प्रश्न-वृष्टि कम हो गई है ।

मेरे इस नाम के पीछे भी एक इतिहास है । मेरे पिता पं० हरि शंकरजी, जो इस समय स्थानीय राजकीय माध्यमिक पाठशाला के मुख्याध्यापक हैं, ने एक लम्बे अर्से पहले साइंस के साथ इन्टर किया था और तभी से उनकी वैज्ञानिकों में दिलचस्पी हो गई । वे स्वयं को भी कम वैज्ञानिक नहीं समझते थे, घर पर छोटी सी लेबोरेटरी थी, जिसे वह केवेन्डिश की लेबोरेटरी कहा करते थे । वैसे उस से परिवार का कभी कुछ लाभ हुआ हो, यह तो कहा नहीं जा सकता परन्तु दीवाली पर हम भाइयों को लाभ अवश्य हो जाता था, खूब आतिशबाज़ी बनाई जाती थी घर पर ।

हाँ, तो पिताजी की वैज्ञानिकों में दिलचस्पी इस हद तक बढ़ी कि उन्होंने अपने होने वाले पुत्र-पुत्रियों के नाम ही वैज्ञानिकों के नाम पर रखने का निश्चय कर लिया । फलस्वरूप सबसे बड़े भाई साहब का नाम मार्कोनी पड़ा, दूसरे भाई साहब का नाम न्यूटन, तीसरे का जेम्स वाट और चौथा मैं जार्ज-स्टीफेन्सन हुआ । मैंने पिताजी की लिस्ट देखी थी । उसके अनुसार यदि कोई लड़की पैदा होती तो उसका नाम मैडम क्यूरी रखा जाता ।

मेरे घर वाले मेरा पूरा नाम न लेकर केवल फेन्सी कहते थे । परन्तु पिताजी ने मुझे कभी इस नाम से नहीं पुकारा था, वह मुझे पूरा नाम लेकर पुकारा करते थे । उनका विचार था कि नाम का लड़के पर बहुत प्रभाव पड़ता है ।

मेरे सब भाइयों (मुझे छोड़कर) की खुशनसीबी या बदनसीबी से उनको उनके नाम के अनुसार ही काम मिला। इस प्रकार भाइयों पर 'यथा नाम तथा गुण' की कहावत चरितार्थ होती है। सबसे बड़े भाई मार्कोनी साहब एक रेडियो की छोटी सी दूकान पर छोटे से नौकर की हैसियत से काम कर रहे हैं। पिताजी को इस बात की खुशी है कि कम से कम उन्हें अपने नाम के अनुसार काम तो मिल गया। पिताजी ने मार्कोनी सा० को रेडियो इन्जीनीयर बनाने का पूरा निश्चय कर रखा था। परन्तु दसवीं कक्षा में लगातार पूर्ण विराम लगा रहने के कारण वह रेडियो इन्जीनीयर तो क्या रेडियो मेकेनिक भी नहीं बन सके। लाचार हो उन्हें रेडियो की दूकान पर लगाना पड़ा। अब शादी-ब्याह में वह एम्पलीफायर, लाउड-स्पीकर आदि लेकर जाते हैं। दूकान का मालिक दोपहर बारह से तीन बजे तक लंच पर घर जाता है इस बीच रेडियो से स्वयं मार्कोनी सा० कुश्ती लड़ते हैं।

दूसरे भाई न्यूटन कक्षा दस के परिणाम निकलने के बाद घर आये ही नहीं और सीधे काश्मीर पहुँचे। जेब में मकान के किराये के रुपये थे ही। वहाँ जाकर एक सेब के बगीचे में मुंशी बन गये और आजकल उसी में साझीदार हैं। हर माह १००) भेजते हैं और साल में एकाध बार मिलने चले आते हैं। इस प्रकार न्यूटन सा० को भी अपने सेबों से ही पाला पड़ा और अपनी जन्मभूमि से हाथ धोना पड़ा। होटल में सिर मारते फिरते हैं बेचारे। फिर भी पिताजी को संतोष है कि लड़का लगा अपने नाम के अनुसार काम में ही है।

यह कक्षा दस इस बुरी तरह से हमारे परिवार के पीछे पड़ी हुई थी कि सब भाइयों को इसमें अनुत्तीर्ण होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जेम्सवॉट, मेरे तीसरे भाई, ज्योंही फेल होकर घर आये, पिताश्री ने बेंत लिये हुए दरवाजे पर ही उनका वार्म-वेलकम (गर्मागरम स्वागत) किया और वहीं पिल पड़े बेचारे पर। कम से कम दो, तीन कौड़ी (एक कौड़ी=२०) बेंत उनकी सुकुमार पीठ पर पड़े होंगे। रेखागणित के चित्रों और भूगोल के नक्शों से भरी हुई पीठ लिये जेम्स वॉट साहब सिसकते रहे और पिताजी का भीषण भाषण चलता रहा। मैं इतना डर गया था कि उस घटना के दो, तीन दिन बाद तक मुझे दस्त रोकने की दवा खानी पड़ी।

दूसरे दिन जेम्स वॉट साहब गधे के सींग बन गये। बहुत ढूँढा पर सब बेकार रहा। वह सीधे बम्बई गये। वहाँ वे कुक (रसोइया) असिस्टेंट (सहायक) नियुक्त किये गये, एक होटल में। आज वहीं एक बड़े होटल में सीनियर कुक हैं। आधी जिन्दगी तो देगची का ढक्कन उछलते देख-देखकर

कट गई है। शेष भी कट जायगी, जेम्सवॉट साहब की।

मैं कहने को तो जार्ज स्टीफेन्सन हूँ, पर मैं रेलगाड़ी और रेल्वे विभाग से इतना डरता हूँ जितना विद्यार्थी (प्राइमरी कक्षाओं का) अपने अध्यापकों की बेंत से। क्यों? इस बात का पर्दाफ़ाश करके मैं स्वयं भी हलका हो जाता हूँ। जैसा कि पहले बता चुका हूँ कि कक्षा दस पं० हरि शंकर जी (पिता श्री) के आत्मजों के लिए अभिशप्त रही है। फलस्वरूप ज्योंहि परिणाम में मेरी असफलता घोषित की गई त्योंहि एक बिजली सी मेरे मस्तिष्क में कौंध गई। मेरे स्मृति पटल पर जेम्सवाट साहब की पिटाई चल-चित्र की भाँति घूम गई। मैं सीधा रेल्वे स्टेशन पहुँचा, जेब में ढाई आना पड़ा हुआ था। प्लेटफार्म पर भीड़ थी। मैं 'नर्वस नेचर' का प्राणी हूँ। चुनाचे, मेरे कलेजे में धुकर-पुकर होने लगी। ऐसा लगता था कि हर कोई मुझे घूर रहा है। जैसे ही कोई सिपाही पास से निकलता, मुझे लगता कि वह मुझे ही पकड़ने आ रहा है। अचानक गाड़ी आई, मेरा ध्यान उधर नहीं था, मैं एक बैंच पर बैठा हुआ एक पुलिसमैन को देख रहा था जो मुझे काफ़ी समय से घूर रहा था। गाड़ी ने जोर की विशिल (सीटी) दी। मैंने बुरी तरह चौंककर पीछे देखा घबराहट इतनी अधिक थी कि गाड़ी का इन्जन बड़ा अजीब सा दिखाई पड़ रहा था, मैं समझने की कोशिश कर रहा था कि यह सब क्या है? पर दिमाग़ के ब्रेक जाम हो गये। अचानक ही आँखों के आगे अंधेरा छा गया और जब आँखें खुलीं तो अपने घर पर चारपाई पर पड़ा हुआ था। पता नहीं यह सब कुछ कैसे हुआ। मैंने पूछने की कोशिश भी नहीं की।

पिताजी की मार से तो बच गया परन्तु अब दूसरी चिन्ता मुँह बाये खड़ी थी। पिताजी मुझे टी० टी० ई० या गार्ड बनाना चाहते थे, पर कक्षा दस में फेल होते ही उन्होंने अपना निश्चय बदल डाला। उन्होंने एक दिन अपना विचार स्पष्ट कर दिया कि अब टी० टी० ई० या गार्ड बनने का स्वप्न छोड़कर खल्लासी या फ़ायरमैन की पोस्ट के लिए तैयार रहूँ। मैं जानता था कि मुझे भी अपने नाम के अनुसार काम करवाने की पिताजी की प्रबल इच्छा है अतः वह मुझे खल्लासी अथवा फ़ायरमैन बनाकर ही छोड़ेंगे। चुनाचे मैंने ट्रेन-टाइम (गाड़ी के समय) पर घर से गोत लगाई, पर स्टेशन जाने का हौसला रह नहीं गया था। पिताजी के मित्र दीनदयाल सक्सेना के घर की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर सारी दास्तान सुनाई, रोकर-गिड़गिड़ा कर बता दिया कि आगे पढ़ना चाहता हूँ। फिर कभी फ़ेल न होने की क़सम खाई। उन्होंने पिताजी को समझाने के लिए जाना चाहा, मैंने उन्हें रोका और कहा कि इस प्रकार जाने से काम नहीं बनेगा। क्योंकि पिताजी इसने

ज़िद्दी हैं कि दूसरे की बात मानेंगे ही नही ।

सक्सेना चाचा, चाची और उनके बड़े पुत्र ने अपनी मीटिंग में एक प्लान बनाया। जिसके अनुसार मुझे उनके घर मे नज़रबन्द रहना था। इधर पिताजी बहुत परेशान थे। बहुत दौड़धूप की, पुलिस में रिपोर्ट की, पर सब बेकार। आखिर सक्सेना साहब ने उन्हें एक उपाय सुझाया। अखबार में मेरा चित्र छापा गया, उसके नीचे लिखा हुआ था प्रिय जॉर्ज स्टीफेंसन ! तुम्हारे जाने से सब दुखी हैं, तुम फ़ौरन चले आओ। तुमसे कोई कुछ नहीं कहेगा और तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही काम किया जावेगा, फायरमैन के पद पर नही झोंका जावेगा। रुपयो की आवश्यकता हो तो लिखो,— तुम्हारा पिता ।"

तीसरे दिन मैं घर पर आगया। किसी ने कुछ नही कहा, मेरी पढाई बदस्तूर जारी रही। मैं इतना डर गया था कि फिर फेल न होने के प्रयत्न में लगा रहा।

अब मैं बी० डी० ओ० (क्षेत्रीय विकास अधिकारी) हूँ और स्टीफेन्सन होने पर भी रेलगाड़ी से मेरा दूर का भी सम्बन्ध नही है। मुझे इससे प्रसन्नता है परन्तु शायद पिताजी को इससे वह सतोष नही है जो मेरे रेल्वे विभाग मे होने पर होता। वैसे उनकी निगाह मे मैं ही एक मात्र लायक बेटा हूँ। अब वह मुझे केवल फैन्सी कहते हैं। शायद वह भी डरने लगे है कि कहीं नाम का अभिशाप फिर पीछे नही पढ जाय।

मैं अब भी यह सब कुछ सोचता हूँ, कह उठता हूँ वाह रे नाम की करामात। मार्कोनी—रेडियो की दुकान पर महज़ अदना सा नौकर, न्यूटन—सेब के बगीचे में मुन्शी और साझीदार, जेम्स वॉट—होटल मे कुक............और ....और मैं......मैं......हा......हा......हा......हा.....।

••

चिराग कैसे जले ?

• रामसिंह अरोरा

"तो तुम्हारा विचार है कि ग़रीब और निम्न जाति में उत्पन्न लोगों में दिल नहीं होता ? छिः ! हृदय और विचारों की शुचिता वहीं अधिक है जहाँ तुम्हारी दृष्टि में वह विल्कुल नहीं । तुम्हारा पड़ोसी, तुम्हारी रोटियों पर पलने वाला वह माला भंगी, क्या तुम्हारे चिन्तन का कभी विषय वन पाया ? काश तुम प्रेमचन्द से मोह कर पाते ।" सक्सेना वहुवा ऐसी दलीलें दिया करता ।

"अभी जव सर्दियों ने वाहुपाश खोलने प्रारम्भ किये थे उसकी गृहणी ने जिसे वह प्यार से लाडो कहा करता था—मर गई ।"

"नहीं तो !"

तुम्हें विश्वास नहीं आता ?—सक्सेना वोला, अभी पिछले हफ़्ते ही की तो वात है, अपनी पत्नी के निधन पर माला मुझ से वोला "मास्टर जी वह तो मर गई पर चाँदना छोड़ गई" मेरे कानों में उसके ये शब्द आज भी गूंज रहे हैं । इतिहास के पृष्ठों के उस पार या तो शहंशाह शाहजहां की पत्नी पर पुत्र-प्रसव में जान पर वन आई थी या उस दिन लाडो पर ।

□

वैसे मालीराम कुछ हँसमुख प्रकृति का था और वड़े संयुक्त परिवार के साथ रहा करता था । एक वार वच्चों की संख्या वताने लगा—'घर में सक्सेना साहव (उससे "सक्सेना" वोला नहीं जाता था) ग़रीवी रहती है, चिराग़ कहाँ से जलावें ? जव अंधेरे में किसी चीज को टटोलने लगता हूँ तव किसी न किसी वच्चे की खोपड़ी हाथ में आ जाती है । पत्नी के लिए कहता "वड़ी टांठी है, एक वार वुखार में सर्दी जकड़ गई, रात भर हाय तोवा करती रही, नींद नहीं आई तो चक्की पीसी, पानी भरा, झाड़ू लगाकर किसी काम-काज से छः मील दूर, शहर चली गई, शाम को लौटी, न जाने क्या खोजने के लिए कमरे में वनी टांड पर चढ़ गई और गिर पड़ी—दांत निक

पड़े। सक्सेना साहब पन्द्रे भर तक उसे होश नहीं आया, मैंने समझा आज तो बुढ़ापा बिगड़ा पर दूसरे दिन फिर ताजी थी। सक्सेना साहब कलियुग में देवता दानवों का युद्ध होता तो इन्द्र भगवान् दधीचि के पास न जाकर लाशों के पास आते और स्मित हास्य उनके चहरे पर मेल जाता।

□

आज से आठ वर्ष पूर्व मैं यहाँ आया था। मालू न जाने कब से यहाँ था। वह प्रायः बीमार रहता, गरीबी को साथ लेकर पैदा हुआ था। इलाज कहाँ से करवाए। रोटियों का सलीका बैठ जाय, यही बहुत था! पहिले कभी हाथ की और पांवों की अंगुलियाँ गलती चली गई होंगी अब तो उसके यह अंग साखा और टहनियों से शून्य वृक्ष—ठूंठ की तरह हैं। हथेलियाँ भी गलने लगी हैं, वहीं खुजली पुजाता है तो मानो डण्डे से खुजा रहा हो। अंगुलियों से विहीन हथेलियाँ—भावनाओं में स्वयं कितनी सिहरन है। दया का पात्र तो वह था ही पर सक्सेना के लिए विशेष तौर से। उसकी दीन दशा पर तरस खा, उसे भोजन, पैसे आदि दिया करता और देने के लिए प्रोत्साहित करता। जब समय मिलता उससे बातें करता। एक दिन मालीराम पूरे मूड में था—"सक्सेना साहब बात कुछ पुरानी है सन् १६५५ में कई स्कूलें—वहाँ स्कूलें बनी, यह भी बन गई और मुझे यहाँ पाँच रुपये महीने की नौकरी मिल गई।"

'नहीं, नहीं, सक्सेना साहब इससे मेरा गुजारा नहीं होता। बीबी-बच्चों सहित पड़े रहने का यह एक ठौर है। रोटियाँ तो पत्नी और बच्चियाँ माँग लाती हैं, कुछ पैसे भी। आपकी कृपा से बच्ची कैसी गाती है? कितना मिठास है? मेरी तो बेटे से अधिक है! आप लोगों की शरण में पड़ा हूँ। मरना चाहता हूँ, मर नहीं पाता।'

'ऐसा न कहूँ तो क्या करूँ बाबू जी? पिता जन्म से पहिले ही परलोक-वासी हो गए थे, माँ जन्म के कुछ दिन बाद, परन्तु मैं अमर बेल की भाँति बढ़ता ही गया। कुछ वर्ष ताऊ ने पाला, मेरी सात वर्ष की उमर में वह भी राम-प्यारे हो गए। ताई ने निकाल दिया, यहाँ आ गया था बाबू जी! दूर की एक मौसी लगती थी। आपकी कृपा थी। तीस वर्ष का था तब यहाँ लग पाया था।'

'नहीं, नहीं, शुरू से यह नौकरी नहीं की थी, बारह वर्ष तो जमादार साहब के साथ फौज में अर्दली था। यह देखो साहब हाथ और पैर। यह बीमारी वहीं शुरू हुई। फिर जमादार साहब ने अपने पास से हटा दिया। सरकार ने नौकरी से खारिज कर दिया' वह एक मिनट चुप साध गया। बस इतनी सी देर में चहरे पर कई भाव आये और बदल गए। फिर स्वयं

वास्तव में मालीराम दुर्भाग्य लेकर पैदा हुआ था जिसका छोर कभी दिखाई न पड़ा। मेरे एक साथी थे मि० सिंह। कुछ ऐसी विशेषता थी उनकी वाणी में—प्राय: ठीक ही बैठती थी। एक दिन मालीराम को तेज़ ज्वर था। पत्नी पीहर थी। चार दिन तक बिना खाए भीतर ही पड़ा रहा। सूख कर कांटा हो गया था। हम लोग उसे देखने गए थे। गुफा सा अंधेरा, कमरे की सीलन, गन्दगी एवं दुर्गन्धमय वातावरण में खड़ा रहना दूभर कर दिया। मालू के प्रति जागृत सहानुभूति भी हमें कमरे में रोक न पाई। लौटते समय मि० सिंह कहने लगे—'अब दो-चार दिन का मेहमान है'। बात आंग्लभाषा में इतनी धीमी वाणी में थी कि उसे न सुनाई पड़े। सुनकर मुझे धक्का सा लगा, पर सोचा, चौला बदल जावे तो ठीक ही होगा। बेचारे की आत्मा को शान्ति तो मिले।

दूसरे दिन प्रात: हम लोग स्कूल जा रहे थे। मालीराम बाहर बैठा था।

"बाबूजी नमस्ते"

'कहो जमादार ठीक हो ?' मि० सिंह बोले।

"नहीं हूँ तो हो जाऊँगा मास्टर साहब, मरूँगा नहीं, मौत लिखी नहीं है भाग्य में। मैंने आपकी सारी बात समझ ली थी।" उसने मुसकराने का प्रयास किया तो गन्दे भद्दे दांत दिखाई पडे।

बात बदलने के दृष्टिकोण से मि० सिंह ने पूछा, 'कुछ दवाई दारू लेगा ?' 'नहीं बाबूजी हम तो जंगल के पेड़ हैं, बग़ीचे के नहीं जिनकी सार संभाल करते हुए भी हालत सुधर नहीं पाती। कल परसों में घरवाली आ जायगी। फिर सब ठीक हो जायगा।'

□

अँधियारे पक्ष के बाद उजियारा पक्ष आया। शीत वृद्धि पर था। जनवरी की तेज़ ठण्डी हवाएँ कितनी चुभती हैं। कुछ जल्दी सो गया था। अत: दो बजे के आस पास आँखें खुल गईं। मेरे कमरे की दीवार से लगकर ही खड्डा खोद-कर एक कुतिया ब्या गई थी। उसके छोटे-छोटे पिल्ले सर्दी से ठिठुर रहे थे कूँ कूँ की चीख से रही सही नींद भी उड़ गई। निस्सहाय कुतिया क्या करे। बेचारों ने पलटा खाया—ध्यान आया शान्ता ख़र्राटे ले रही होगी बच्चे उघड़े पड़े होंगे। बड़ी बेचैनी हुई। ध्यान मालीराम और उसकी पत्नी पर केन्द्रित हो गया। उसके पास तो कुछ भी नहीं है। सर्दी में ओढ़ने बिछाने को भी नहीं।

सब रुपया इकट्ठा कर सक्सेना ने उसे दिया था—एक रजाई के लिए। उसकी दो बच्चों को पिछले दो दिन से दमा-पीड़ा से परेशान है। ऐसा न हो अब इसी सर्दी में बच्चा हो जाए। मुझे यह सुनना अजीब हुआ। प्रभु वन्दना का उद्देश्य अंगूठा, बत्ती बनाई, किसको—प्रभु दोपहरी में कुछ गर्म मौसम में ऐसे बच्चा देना। इन्हीं दीन है। ऐसा न हो कि शीत में बच्चा ठिठुर-ठिठुर जाए। घड़ी भले पाँच बजा रही थी पर अंधेरे को देखकर पूरी तरह रात्रि का भ्रम होता था। कुछ सर्दी-सी लगी रजाई में दुबके ही आँख लग गई। तड़के ही मैं थाली बजने की ध्वनि का आभास सा हुआ।

ग्यारह बजे के लगभग ही नौकरी पर जाने को था कि बाहर से आवाज आई। देखा मानीराम खड़ा है। आँखों में आँसू भरे बोला—"बाबूजी एक बच्चे लाना चाहता हूँ। बस, चिराग जलता रहे यही इच्छा है" बिना समझाए ही मैं सारी कथा समझ रहा था।

☐

ठीक पन्द्रह दिन बीत गये उस बात को। उस दिन धूप चमक रही थी। बिना बादल और बिना तेज हवा का मौसम शीत के दिनों में सुहावना कहा जा सकता है। छुट्टी हो गई थी मैं भी घर जाने को उत्सुक थे। देखा सक्सेना मानीराम से बात कर रहा है। मानू उदास पर सिसकियों से कहे जा रहा था—"सक्सेना साहब मैं अन्त्येष्टि करके आया हूँ। जबसे होश सँभाला है इन्हीं हाथों से चाचा, ताऊ, चाची, ताई, मौसी, अपनों, भाभी, बहनों, अपने और अपने भाई के दसियों बच्चों, पन्द्रह दिन पहले अपनी पत्नी और आज अपने पुत्र की अन्त्येष्टि कर लौट रहा हूँ। मुझे मत देखो सक्सेना साहब उस ईश्वर को देखो जिसने मुझसे यह सब कुछ करवाया।" सभी जन वहीं बैठ गए थे।

सक्सेना उसकी गुमटी (गोल कमरा) की ओर भावशून्य देख रहा था। फिर बोला "मानू, ईश्वर को याद कर। वह जो दिखावे देखता जा। जा देख, कुत्ते को हटा। वह थाली चाट रहा है। तुझसे मजेगी भी नहीं उसी में खाएगा।"

"सक्सेना साहब-कभी यह थाली मेरी पत्नी दहेज में लाई थी। मेरे भाईयों और मेरे बेटे के जन्म पर यह बजाई गई थी। अब किस काम आवेगी कुत्ता चाट तो रहा है। कोई इसमें दो टुकड़े डाल देगा, मैं भी आग बुझा लिया करूँगा"—वह रो रहा था।

••

पीठ का फ़ोटो

—करणीदान बारहठ

महत्वपूर्ण व्यक्तित्व को दबोचे हुए बैठ गया था मैं एक चाय की दुकान पर, पुरानी, टूटी-फूटी बैंच के एक कोने में। मेरे व्यक्ति की महत्ता भी एक दिन में ही उभर कर आ गई थी—एक दिन में ही नहीं—उस क्षण से ही मानना चाहिए जब मैंने राष्ट्रपति भवन से प्राप्त हुआ लिफ़ाफ़ा खोला था। मुझे राष्ट्रपति-पुरस्कार मिलना था।

प्राथमिक स्कूल का अध्यापक राष्ट्रपति-पुरस्कार से विभूषित हो, यह मेरे सौभाग्य की बात थी। मुझे एहसास हुआ कि मेरे आस-पास के सभी व्यक्ति बौने हो गए थे। मैं उभरकर काफ़ी ऊपर आ गया था।

मुझे दिल्ली जाना था। इस देहाती बस-स्टैंड से मुझे बस पकड़नी थी। मैं बस की प्रतीक्षा में इस बैंच के कोने में बैठा था। सामने बैठा था एक पटवारी, एक टेक्स का अफ़सर और दुकान पर बैठा था दुकान का मालिक।

हल्की सी भीड़ की भारी चहचहाहट थी दुकान पर। बस की प्रतीक्षा तो थी ही, किन्तु सड़क पर एक टैक्सी भी खड़ी थी जिसे पूरे यात्रियों की आवश्यकता थी और यात्री पूरे नहीं हो रहे थे। टेक्सी का ड्राइवर गणना कर चुका था। अभी सात ही हुए थे। कम से कम दस तो होने चाहिये।

स्थूलकाय दुकानदार को आदेश मिला—'चाय बनाओ'। उसने अपनी छोटी-सी केतली सुलगती भट्टी पर रखदी और अपने कार्य में व्यस्त हो गया। पटवारी अपने कागज़ों को समेट रहा था। टेक्स अफ़सर का ध्यान सड़क की ओर था। मैंने पास में बैठे टैक्सी के ड्राइवर से पूछा—'कब तक चलोगे, मित्र?' मेरे विनीत स्वर का उत्तर कड़े शब्दों में मिला—'अभी क्या जरूरी है? सवारी तो पूरी होने दो, यार।'

चाय वाला चाय बनाने में मस्त था, पटवारी अपने कागज़ों तथा टेक्स

अफ़सर का ध्यान सड़क पर ही था। तभी दो सवारियाँ और आ गई। टैक्सी वाले ने पूछा—'कहाँ जाना है?'

सिरसा जाना है। बस कब आयगी?'

टैक्सी वाले ने कोई जवाब नहीं दिया। वे चाय वाले की ओर गए। उन्होंने उससे पूछा—'सिरसा वाली बस कब आयगी?'

'आज बसों का कोई पता नहीं, सभी बारात में लगी है। बैठो, चाय पीओ।'

मन मारकर मुसाफ़िरों ने कहा—'दो कप चाय बनादो।'

मेरा ध्यान चाय वाले की ओर गया। कितना मोटा ताजा आदमी है यह! दिन भर आग की भट्टी के आगे बैठा रहता है। फिर भी अपने शरीर को पाल रखा है इसने। उसने मस्ती से आवाज़ दी—'चाय तैयार है जी, चाय पीलो।'

चाय से लबालब गिलास वहाँ से हट गए। इतने में पटवारी अपने काग़ज़ों से निबट चुका था। उसने टैक्स अफ़सर की ओर अपना ध्यान मोड़ लिया—'क्या हाल-चाल है, अफ़सर साहब?'

'अजी, गुज़ारा कर रहे है।'

'ठाठ है, हुज़ूर, आजकल।'

'अजी रहने दो, सीज़न तो आपका है। छोड़ो इन बातों को। मकान पूरा हो गया है क्या?'

'पूरा हो गया' 'निश्चिन्त भाव से पटवारी ने कहा।

'काफ़ी लग गया होगा, लेकिन क्या बना है, कोठी बनी है।'

'गुज़ारा किया है, अफसर साहब। आपका मुकाबला थोड़ा ही है।'

'हमारे पास क्या है? सड़क की ओर झाँकते रहते है। फिर देखो, अभी दो लड़कियों की शादी की है।'

'शादियों की लोग चर्चा ही करते है।' बीच ही में चाय वाले ने कहा।

'आप लोगो की मेहरबानी है।' टैक्स अफ़सर ने यही उत्तर दिया।

तभी पटवारी ने आदेश दिया—'दो कप चाय, कुछ मीठा लोगे, अफसर साहब!'

'आप खिलाओ और मैं नहीं लूँ, यह कैसे हो सकता है।'

'दो चार सौ ग्राम मीठा,' पटवारी का आदेश था।

'भुजिया भी?' पटवारी ने पूछा।

'हाँ हाँ, भुजिये बिना चाय चलती ही नहीं।'

'सौ ग्राम भुजिया।' पटवारी ने फिर आदेश दिया।

चाय, भुजिया, मीठा सभी सामने आ गए। तभी उसमें से एक ने मुझसे पूछा—'आपको कहाँ जाना है?'

'नोहर'

'गाड़ी चढ़ना है?'

'हाँ, जी।'

'क्या काम करते हो?'

'मास्टर हूँ, भोजासर में।'

'अच्छा, अच्छा,' टैक्स अफ़सर ने कहा, 'थोड़ा आप भी लो।'

'नहीं साहब, मैं यह सब कुछ नहीं लेता,' और मैंने अपने पतले व्यक्तित्व को और समेट लिया।

वे अपने काम में व्यस्त हो गये।

मुझे सोचने का अवसर मिला। विशालकाय राष्ट्रपति भवन में पहुँचना है। नोहर जाकर पाजामा, चोले की इस्त्री करानी है।....राष्ट्रपति बोल रहे हैं—'मेरे देश के राष्ट्रनिर्माताओं, आज आप लोगों को सम्मानित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है।'........मैंने भी अपना भाषण तैयार किया है। शायद मेरी भी बारी आ सकती है।........पत्रकार सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। ....उनके भी प्रश्न आ रहे हैं—'आपने समाज को क्या दिया?'....आपकी अध्यापन शैली क्या है?'....आपके परीक्षा परिणाम कैसे रहे?'....देश में कैसी शिक्षा चाहिये?'........

तभी चाय वाले को फिर आदेश मिला—'चार कप चाय बनाना।'

चाय वाला फिर अपनी केटली भट्टी पर टेकता है, पानी डालता है। इतने में कुछ और मुसाफ़िर आते हैं। टैक्सी वाला पूछता है– 'कहाँ जाना है?'

'सिरसा'

टैक्सी वाला चुप हो जाता है। मैं फिर पूछता हूँ– 'यार, कब तक चलोगे?' 'कैसे चलूँ, बाबूजी? सवारियाँ नहीं मिलीं। पूरी दस सवारियाँ चाहिये। ज्यादा जल्दी है तो आप पूरे बीस रुपये दे दो, रिज़र्व करालो।'

मैं अपनी बैंच पर और सिकुड़ जाता हूँ। फिर विचारों का तांता मेरे मस्तक में बनता है– 'राष्ट्रपति अपने हाथ से पुरस्कार दे रहे हैं और मेरे से हाथ मिला रहे हैं। फ़ोटोग्राफ़र सामने खड़ा है। मेरा फ़ोटो ले रहा है। मैं मुस्कुरा रहा हूँ। फ़ोटो अखबार में छप गया है। अखबार सारे भारत में फैलता है। लोग मेरी फ़ोटो देख रहे हैं। मेरा नाम पढ़ रहे हैं अखबार घर में भी आया है। घर वाली उस फ़ोटो को देख रही है। बच्चे देख रहे हैं...।

गुड्डी कह रही है– 'पिताजी, मेरा फिराक़ नहीं लाये।'

'ले आया हूँ, बेटी।'........'बहुत सस्ता है। थानेदार की लड़की टैरालीन की फिराक पहनती है।' रोने लगती है। पप्पू कहता है– 'मेरे लिए बूट नहीं लाये'........'लाया हूँ।' 'मैं तो कपड़े के हैं। इतने सस्ते मैं नहीं पहनूँगा।'

इतने मे किसी ने संदेश दिया– 'आज बसें नहीं आएगी। सभी बारात मे लगी हैं।'

'हाँ, हाँ,' टैक्स अफसर ने समर्थन किया– 'अरे, आज बसें तो नहीं आएगी। मास्टरजी, आपको टैक्सी में ही जाना होगा।'

मैंने कह दिया– 'मैं तो तैयार हूँ, साहब। कोई जाये तो।'

बात यहीं समाप्त हो जाती है। टैक्सी वाला हाथ में एक चमड़े का थैला लिए चुपचाप बैठा है। फिर वह आदेश दे देता है तीन कप चाय बनाओ न।'

चायवाले ने प्रसन्न मुद्रा मे फिर पानी चढ़ा दिया। पटवारी फिर कहता है– 'अफ़सर साहब, आजकल का वक्त बड़ा खराब आ गया। मँहगाई कितनी है? कारीगर साला पूरे दस रुपये माँगता है और आठ घन्टे काम करता है। यही मजदूरों का हाल है।'

'अजी साहब,' टैक्स अफसर ने कहा– 'इनके तो नखरे ही अजीब है। जमाने को क्या कहें? मैंने लड़कियो की शादी की है। थोड़ा-थोड़ा करते ही दस हजार खर्च हो गये।'

'ठीक कह रहे हो आप।'

तभी चाय के कप मेज पर आ जाते है। टैक्सी वाला एक कप पटवारी के आगे और एक कप टैक्स अफसर के सामने रख देता है। दोनो कहते है– 'अरे यार, अभी तो पी थी।'

'लीजिए न'

'अरे रहने दो।'

'लो, थोड़ा कम कर लेते है।'

तीन कप के चार कप बनते है। पटवारी कहता है– 'मास्टरजी, एक कप आप ले लो।'

'मैं तो पीता ही नहीं।'

'अजी देखिए न, इसकी तासीर ठंडी होती है। इसको गर्म मत मानिए।'

मैं चाय का कप उठा लेता हूँ और पीने लग जाता हूँ। तभी एक बस आकर खड़ी हो गई। मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं थैला लेकर चल पड़ा। बस के पास पहुँचते ही बस के ड्राईवर ने कहा—'किधर आ रहा है। यह बस बारात की है।'

चाय, भुजिया, मीठा सभी सामने आ गए
पूछा—'आपको कहाँ जाना है ?'
'नोहर'
'गाड़ी चढ़ना है ?'
'हाँ, जी ।'
'क्या काम करते हो ?'
'मास्टर हूँ, भोजासर में ।'
'अच्छा, अच्छा,' टैक्स अफ़सर ने कहा, 'थो
'नहीं साहब, मैं यह सब कुछ नहीं लेता,'
को और समेट लिया ।
वे अपने काम में व्यस्त हो गये ।
मुझे सोचने का अवसर मिला । विशालक
है । नोहर जाकर पाजामा, चोले की इस्त्री क
हैं—'मेरे देश के राष्ट्रनिर्माताओं, आज आप
अपार हर्ष हो रहा है ।'........मैंने भी अपना
मेरी भी वारी आ सकती है ।........पत्रकार
........उनके भी प्रश्न आ रहे हैं—'आपने समा
अध्यापन शैली क्या है ?'....आपके परीक्षा
कैसी शिक्षा चाहिये ?'........
तभी चाय वाले को फिर आदेश मिला—'
चाय वाला फिर अपनी केटली भट्टी पर
इतने में कुछ और मुसाफ़िर आते हैं । टैक्सी वाल
'सिरसा'
टैक्सी वाला चुप हो जाता है । मैं फिर
चलोगे ?' 'कैसे चलूं, बाबूजी ? सवारियां न
चाहिये । ज्यादा जल्दी है तो आप पूरे बीस रुपये
मैं अपनी बैंच पर और सिकुड़ जाता हूँ ।
मस्तक में बनता है– 'राष्ट्रपति अपने हाथ से
हाथ मिला रहे हैं । फ़ोटोग्राफ़र सामने खड़ा है
मुस्कुरा रहा हूँ । फ़ोटो अख़बार में छप गया
फैलता है । लोग मेरी फ़ोटो देख रहे हैं । मेरा
में भी आया है । घर वाली उस फ़ोटो को देख र
गुड्डी कह रही है– 'पिताजी, मेरा फिराक़ न

'मैं आता हूँ, बेटी।'……'बबुआ मरता है। थानेदार की लड़की टेरालीन की फ़्रॉक पहनती है।' रोने लगती है। पप्पू कहता है– 'मेरे लिए बूट नहीं लावें'……'लाता हूँ।' 'वे तो कपड़े के हैं। इतने सस्ते मैं नहीं पहनूँगा।'

इतने में किसी ने संकेत दिया– 'आज बसें नहीं आएंगी। सभी बारात में लगी हैं।'

'हाँ, हाँ,' टैक्स अफ़सर ने समर्थन किया– 'अरे, आज बसें तो नहीं आएंगी। मास्टरजी, आपको टैक्सी में ही जाना होगा।'

मैंने कह दिया– 'मैं तो तैयार हूँ, साहब। कोई जावे तो।'

बात यहीं समाप्त हो जाती है। टैक्सी वाला हाथ में एक चमड़े का थैला लिए चुपचाप बैठा है। फिर वह आदेश दे देता है तीन कप चाय बनाओ न।'

चायवाले ने प्रसन्न मुद्रा में फिर पानी चढ़ा दिया। पटवारी फिर कहता है– 'अफ़सर साहब, आजकल का वक्त बड़ा खराब आ गया। मँहगाई कितनी है? कारीगर साला पूरे दस रुपये माँगता है और आठ घन्टे काम करता है। यही मजदूरों का हाल है।'

'अजी साहब,' टैक्स अफ़सर ने कहा– 'इनके तो नखरे ही अजीब हैं। जमाने को क्या कहें? मैंने लड़कियों की शादी की है। थोड़ा-थोड़ा करते ही दस हजार खर्च हो गये।'

'ठीक कह रहे हो आप।'

तभी चाय के कप मेज पर आ जाते हैं। टैक्सी वाला एक कप पटवारी के आगे और एक कप टैक्स अफ़सर के सामने रख देता है। दोनों कहते हैं– 'अरे यार, अभी तो पी थी।'

'लीजिए न'

'अरे रहने दो।'

'लो, थोड़ा कम कर लेते हैं।'

तीन कप के चार कप बनते हैं। पटवारी कहता है– 'मास्टरजी, एक कप आप ले लो।'

'मैं तो पीता ही नहीं।'

'अजी देखिए न, इसकी तासीर ठण्डी होती है। इसको गर्म मत मानिए।'

मैं चाय का कप उठा लेता हूँ और पीने लग जाता हूँ। तभी एक बस आकर खड़ी हो गई। मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं थैला लेकर चल पड़ा। बस के पास पहुँचते ही बस के ड्राइवर ने कहा—'किधर आ रहा है। यह बस बारात की है।'

चाय, भुजिया, मीठा सभी सा

पूछा—'आपको कहाँ जाना है

'नोहर'

'गाड़ी चढ़ना है ?'

'हाँ, जी ।'

'क्या काम करते हो ?'

'मास्टर हूँ, भोजासर में ।'

'अच्छा, अच्छा,' टैक्स अफ़

'नहीं साहब, मैं यह सब कु

को और समेट लिया ।

वे अपने काम में व्यस्त हो

मुझे सोचने का अवसर
है । नोहर जाकर पाजामा,
हैं—'मेरे देश के राष्ट्रनिर्माता
अपार हर्ष हो रहा है ।'……
मेरी भी बारी आ सकती है
……उनके भी प्रश्न आ र
अध्यापन शैली क्या है ?'…
कैसी शिक्षा चाहिये ?'……

तभी चाय वाले को पि

चाय वाला फिर अपने
इतने में कुछ और मुसाफ़िर

'सिरसा'

टैक्सी वाला चुप हो जा
चलोगे ?' 'कैसे चलूं, बाबूजी
चाहिये । ज्यादा जल्दी है तो

मैं अपनी बेंच पर और
मस्तक में बनता है— 'राष्ट्रपति
हाथ मिला रहे हैं । फ़ोटोग्राफ़र
मुस्कुरा रहा हूँ । फ़ोटो अखबा
देखता है । लोग मेरी फ़ोटो देख
में भी आता है । घर वाली उन

कह रही है— 'पिताजी,

अंजाने मोड़ पर भूले सम्बोधन

• जगदीश 'सुदामा'

बस निकल गई। अच्छा हुआ, मेरे बहाने को एक सहारा मिल गया। इसके बाद कोई बस नहीं जाती शायद।

पानी का गिलास रख कर बेरा चला गया। मुझे ठीक से याद नहीं, बेरे से क्या मगवाया था? हाँ, वह एक प्लेट चिवड़ा मेरे सामने रख गया था, और मैं उसी को खा रहा था""चाहे-अनचाहे""""।

मैडम ने बुलाया था। कल ही उसने ऑफिस का चार्ज लिया था। एक-एक बाबू से, अपने ऑफिस में बुलाकर बातें की थी उसने।

"मैडम बुला रही हैं।" मेरी टेबुल पर आकर चपरासी ने कहा था। सुना है—मैडम का स्वभाव बहुत रूखा है। बात-बात में चिढ़ती हैं। क्या पूछेगी? यही—तुम्हारे पास कौनसा सेक्शन है""कितना काम पेंडिंग है? यहाँ कब से काम कर रहे हो"""""?

"खड़े क्यों हो? कुर्सी पर बैठ जाओ।"

"मैडम"""""।" मुझे भय लगने लगा था—कहीं मैडम ने मेरे मुँह से अपना नाम तो नहीं सुन लिया। मैं सामने कुर्सी पर बैठ गया।

ट्रन""टर्रर्र्र""ट्रन।

अब तक मैडम ने मुझसे कुछ नहीं पूछा था। हाँ उसकी खामोश नजरें फाइल से हटकर बार-बार मेरी ओर उठ जाती थीं।

"दो चाय ले आओ।" "जी मैडम" कह कर चपरासी लौट गया।

"यहाँ कब से काम कर रहे हो?"

"करीब चार साल से" और मैं उंगलियों पर गिनने लगा था नवम्बर ६५, नवम्बर ६६"""""।

मैं फिर हताश होकर मुड़ जाता हूँ। ड्राइवर के पास पुलिस का अफ़सर खड़ा होता है।

अड्डे पर फिर बात चलती है। टैक्सी के लिए मुसाफ़िर कह देते हैं—'अब जाकर क्या करना है ? आगे बस नहीं मिलेगी।'

उनको समर्थन भी मिलता है— 'आज बसें कहीं नहीं मिलेंगी। सभी बारात में लगी हैं।'

वे फिर विचार विनिमय करते हैं और निर्णय ले लेते हैं—'आज नहीं चलेंगे।'

पाँचों मुसाफ़िर अपनी गठरी उठाकर चले जाते हैं और मैं अकेला रह जाता हूँ और मुझे ऐसा अहसास हुआ कि मेरी सारी कल्पनाओं पर तुषारा-पात हो गया है।

तभी पुलिस सबइन्सपेक्टर आ पहुँचा। उसने रोब से आवाज़ दी—'ए, टैक्सी वाले।'

'हाँ, जी।'

'चलो, मुझे नोहर जाना है।'

'आया जी,' उसने जोर से कहा और धीरे से एक अश्लील गाली निकाल दी।

टैक्सी वाले ने टैक्सी का स्टेयरिंग संभाल लिया और पास में जा बैठा पुलिस अफ़सर।

मेरे सामने अंधेरा सा छा गया।

तभी टैक्स अफ़सर ने मुझसे कहा—'मास्टरजी, आप भी चले आओ।'

मेरा हृदय हर्ष से गद्‌गद् हो गया जैसे कि मुझे राष्ट्रपति पुरस्कार मिल रहा हो।

पीछे से आवाज़ आई—'मास्टरजी हैं।'

मैं उस महोत्सव से लौटकर आया हूँ। मेरा फ़ोटो अखबार में छपा है। फोटो में राष्ट्रपतिजी पुरस्कार दे रहे हैं। मेरी घरवाली कह रही है—'आपकी तो पीठ ही दिखाई देती है। चेहरा तो नहीं आया।'

फिर भी सभी प्रसन्न हैं। प्रमाण पत्र मेरे हाथ में है और कान में जीवित है वही आवाज—'मास्टरजी हैं।'

••

अंजाने मोड़ पर भूले सम्बोधन

• जगदीश 'सुदामा'

बस निकल गई। अच्छा हुआ, मेरे बहाने को एक सहारा मिल गया। इसके बाद कोई बस नहीं जाती शायद।

पानी का गिलास रख कर बेरा चला गया। मुझे ठीक से याद नहीं, बेरे ने क्या मंगवाया था? हाँ, यह एक प्लेट चिवड़ा मेरे सामने रख गया था, और मैं उसी को खा रहा था····चाहे-अनचाहे·······।

मैडम ने बुलाया था। कल ही उसने ऑफिस का चार्ज लिया था। एक-एक बाबू से, अपने ऑफिस में बुलाकर बातें की थी उसने।

"मैडम बुला रही हैं।" मेरी टेबुल पर आकर चपड़ासी ने कहा था। सुना है—मैडम का स्वभाव बहुत रूखा है। बात-बात में चिढ़ती हैं। क्या पूछेगी? यही—तुम्हारे पास कौनसा सेक्शन है····कितना काम पेंडिंग है? यहाँ कब से काम कर रहे हो·······?

"खड़े क्यों हो? कुर्सी पर बैठ जाओ।"

"मैडम·······।" मुझे भय लगने लगा था—कहीं मैडम ने मेरे मुँह से अपना नाम तो नहीं सुन लिया। मैं सामने कुर्सी पर बैठ गया।

ट्रन····टरंट्रन्····ट्रन।

अब तक मैडम ने मुझसे कुछ नहीं पूछा था। हाँ उसकी खामोश नजरें फाइल से हटकर बार-बार मेरी ओर उठ जाती थी।

"दो चाय ले आओ।" "जी मैडम" कह कर चपरासी लौट गया।

"यहाँ कब से काम कर रहे हो?"

"करीब चार साल से" और मैं उंगलियों पर गिनने लगा था नवम्बर ६५, नवम्बर ६६·······।

"बी० ए० कब किया था तुमने ?"

"अभी पिछले साल ही। प्राईवेट बैठा था।" और वह फिर फ़ाइल में कहीं खोगई।.......

"लो चाय पियो।" जाने क्यों मुझे संकोच-सा होने लगा था। "मैडम चाय मैंने अभी-अभी पी है। आप ये तकल्लुफ़ क्यों कर रही हैं ? आप लीजिये।" और यह कहते हुए मैंने भी कप उठा लिया।

आखिर ये मौन कब तक ? मैं उठ खड़ा हुआ। इजाज़त लेने की मैंने आवश्यकता नहीं समझी थी।

"सुनो ललित....।" और मैं एक बारगी कांप उठा—मैडम के मुंह से अपना नाम सुनकर।

"यह है मेरा एड्रेस,....आज शाम को मेरे यहाँ आना। कुछ जरूरी बातें करनी हैं तुमसे। कहो, आओगे न।" और यह कहते हुए, उसने मेरी तरफ़ एक कार्ड बढ़ा दिया।

मैंने मौन स्वीकृति दे दी, कार्ड को जेब में रखते हुए अपनी टेबुल पर लौट आया।.......

न तो बेरे ने ही आकर पूछा कि मुझे क्या चाहिये, और न मैंने ही चाय की आवश्यकता महसूस की। लिहाजा काउन्टर पर पन्द्रह पैसे रखकर, मैं होटल से बाहर निकल आया। बिजली की रोशनी में कई परछाइयां रेंग रही थीं। मेरी परछाई कभी मुझसे आगे, कभी पीछे हो जाती।....

घन्टे भर से स्टेन्ड पर बस की प्रतीक्षा करता रहा था। आखिर जब अन्धेरा बढ़ने लगा, तो मैंने लौट जाना ही उचित समझा। यही कुछ पन्द्रह कदम आगे बढ़ा था कि बस, बस स्टेन्ड पर जा लगी। मैं ड्राईक्लीनर्स की दुकान के सामने खड़ा, लोगों को बस में चढ़ते हुए देखता रहा—

मुझे मैडम के वहाँ जाना चाहिये....अब शायद मैं बस नहीं पकड़ सकता। नहीं, मैं मैडम के वहाँ नहीं जाऊँगा। बस जाती है तो चली जाय....। और तभी बस आगे बढ़ गई। मेरे मन को एक गहरा संतोष मिला—बस चली गई।....सच मैडम, इतनी प्रतीक्षा के बाद भी जब, बस हाथ से निकल गई तो मैं कैसे आता ? ये बहाना नहीं मैडम,....हक़ीकत है।

"सामने देखकर नहीं चलते। ख़ुद तो मरेंगे, हमें भी साथ ले मरेंगे।" मैंने अपने आपको कार की फ्रन्ट बाडी पर झुका हुआ पाया। ड्राईवर क्षोभ में बड़बड़ा रहा था। आस पास कुछ लोग इकट्ठे होने लगे थे।

"सॉरी....।" मैं फिर स्वाभाविक गति से आगे बढ़ गया।

"हेलोऽऽ....माई स्वीट हार्ट।"

"कॉलेज से रेस्टीकेट नही करवा दिया तो मेरा नाम नी……"

"……बोला नही।" और मेरे साथी मेरी इस छेड़खानी पर ठहाका मार कर हँसने लगे।

"आई लव यू…ऊ…ऊ…ऊ।" मैं गुनगुनाता हुआ कैन्टीन की ओर बढ़ जाता। वह भी अपनी सहेलियो के साथ साइंस फैकल्टी की ओर चली जाती। जाते-जाते, दो-तीन बार मुड़कर जरूर देखती। मैं भी तीन ऊंगलियाँ हिला-हिला कर "टाटा" के संकेत कर देता।……

मैं जानता हूँ, मैड़म मुझ से क्या बातें करना चाहती हैं। मैंने जेब मे कार्ड निकाल कर एक बार फिर पढ़ा…मिसेज बेला सोनी, ७/ए पंचवटी। मैडम शायद मुझसे बदला लेना चाहती हैं। मैंने कार्ड फाड कर एक ओर फेंक दिया। आवेश मे मेरी स्वाभाविक गति तेज हो गई थी…ज्यादा हुआ तो वह मेरा ट्रान्सफर करा देगी। मेरी नौकरी नही छीन सकती।

"ट्रन…………टर्रट्रन…………ट्रन।"

"कम इन।"…………

ओह, मैड़म……। नहीं-नहीं, मैं अन्दर नही आऊँगा। अपने घर बुलाकर वह मेरा अपमान करना चाहती हैं। जाने कैसे मैं… …मैं अपना रास्ता भटक गया। और फिर एक अनजाने आवेश ने मुझे अन्दर धकेल दिया।

"आओ ललित ! मैं बहुत देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी……अरे तुमतो हाँफ रहे हो। बैठो, खड़े क्यो हो ?"

सचमुच मेरे चेहरे पर पसीना चिलचिलाने लगा था—"दरअसल बात यह थी मैड़म कि वो……वो बस हाथ से निकल गई। मजबूरन मुझे पैदल ही आना पड़ा। आपने याद जो किया था मुझे ? मुझे लगा जैसे, मैं एकाएक गम्भीर हो गया हूँ।

"ओह, आइ सी… …।" और फिर जाने क्या सोचने हुवे वह बोली—"एक्सक्यूज मी,"—मैं अभी पाँच मीनट मे आई।"

उसके चले जाने के बाद मैंने सरसरी निगाह से पूरे कमरे को देख लिया। ट्यूब लाइट की रोशनी मे हर वस्तु अपनी जगह पर सुव्यवस्थित चमक रही थी—शो केस, रेडियो, खिड़की पर लगे हल्के आसमानी रंग के कर्टेन और उसके बैड के ठीक ऊपर एक तस्वीर……बेला और मैं……। हाँ, याद आया—हिन्दी एसोसीएशन ने अपना एक एकांकी प्रस्तुत किया था, जिसमे बेला भिखारिन का पार्ट अदा कर रही थी। इस तस्वीर में यही

भिखारिन बेला न फुटपाथ पर बैठी है, और मैं·······एक राहगीर, उसके टीन के कटोरे में दस पैसे का सिक्का डाल रहा हूँ।·······उसकी करुणार्द्र आँखें, ऊपर मेरी और देख रही हैं··········।

"क्या देख रहे हो ललित ?"

"कुछ नहीं मैडम, ऐसे ही देख रहा था·······································

और मैं देखता रह गया, उसके बदले हुवे लिबास को। वही सफ़ेद साड़ी जिसके एक कोने पर आज भी कहीं लिखा हुवा होगा—" माई स्वीट हार्ट। मेरी आँखें उसकी साड़ी के हर कोने से बँधती गई। मैडम मेरे ठीक सामने आकर बैठ गई थी।

"तुम्हारी शादी हो गई ?"

आगई न असलियत पर। मैं औरत जात को अच्छी तरह से जानता हूँ। अभी कह देगी·······तुम्हारे बीबी-बच्चों का ख्याल आता है·······वरना·······।

वरना मुझे सस्पेन्ड करा देती, ऊँह। मैंने मैडम को उत्तर देना उचित नहीं समझा। सुना-अनसुना करते हुये मैं फिर उस तस्वीर की ओर देखने लगा। नौकर हम दोनों के बीच पड़ी टेबल पर ढ़ेर सारी मिठाइयाँ, नमकीन, सूखा मेवा और न जाने क्या-क्या रख कर चला गया।

"यह सब क्या है बेला ?" और मुझे पहली बार अपनी ग़ल्ती का एह-सास हुवा—"आई एम सॉरी·······मैडम !" "नेवर माईन्ड ललित। मैं तो जैसे अपना नाम ही भूल गई थी। अच्छा किया, तुमने आज फिर याद दिला दिया।"

"क्या मतलब ?"·······मुझे लगा, जैसे मैं बेला को समझने में कहीं ग़ल्ती कर रहा हूँ। मेरी दृष्टि एक बारगी ही उसके चेहरे पर होती हुई सूनी माँग के बीच से गुज़र गई, और फिर आँखों के आगे वही तस्वीर उभर आई·······उसकी करुणार्द्र आँखें, ऊपर मेरी ओर देख रही हैं।

तो क्या, बेला·······? और आगे मैं कुछ भी नहीं सोच सका।

''''''ओ'''' ''बिटियाँ रानी बड़ी सयानी'''''''', और वह साड़ी के एक कोने में नन्ही बच्ची की आँख से गिरने वाला हर आँसू सहेजने लगी।

''''''''माई स्वीट हार्ट। मैंने अपनी आँखें साड़ी के पल्लू से हटा ली, ''''''''वेला। यह क्या किया तुमने?''''''''यह दाग किसलिये सहेज कर रक्खा था? अब मैं क्या कहूँ—इस पगली से। मेरे मुँह में एक तीखा सा स्वाद घुलने लगा था।

वेला अब बहुत गम्भीर हो गई थी। उसने एक गहरी साँस ली'''''''' ''चाहते हुए भी हम वक़्त को नहीं भुला सकते ललित। यह और बात है कि उसे भुलाने का एक अच्छा खासा अभिनय कर लेते हैं''''''''हँस लेते हैं'''''''' बोल लेते हैं''''''''।''

मैंने देखा—उसकी आँखें छलछला आई थी।

''''''''शादी के एक वर्ष बाद इसका जन्म हुवा था, और फिर इसके ठीक एक महिने बाद वे'''' ''''''

'मैडम''''''''''''।'' मुझे याद नहीं आ रहा। मैं वेला से क्या कहने जा रहा था।

''हाँ ललित, समय के साथ-साथ सम्बोधन भी बदल जाते हैं,

''''''''हमारे विचार''''''''हमारे व्यवहार''''''''।''

वह साड़ी के पल्लू से आँखों की भीगी कोर पोंछने लगी थी। न जाने क्या सोचकर मैं खड़ा हुआ। मेरा दम घुटने लगा था। मैंने एक नजर घड़ी की ओर देखा—गयारह बजने को थे।

"अरे तुम तो उठ खड़े हुए। तुमने अपने बारे में तो कुछ बताया ही नहीं''''''''कितने बाल-बच्चे है।" और यह कहती हुई वह पास ही के कमरे की ओर बढ़ गई।

"तीन बच्चे। दो बच्चे, एक बेबी।"

"यह लो अपने बच्चों को देना।" उसने एक थैला मेरी ओर बढ़ा दिया''''''''" और सुनो, कभी कभार आजाया करो। यहाँ मेरा है भी कौन, जिसको अपनी बात कह सकूँ''''''''''''''''अपना दर्द कह कर हल्का कर सकूँ''''''''''''''''।"

'मेरी आँखें फिर उस तस्वीर पर जा लगी हैं''''''''''''वही भिखारिन वेला, फुटपाथ पर बैठी है, और मैं''''''''''''एक राहगीर''''''''उसके टीन के

कटोरे में दस पैसे का सिक्का डाल रहा हूँ। उसकी करुणार्द आँखें, ऊपर मेरी ओर देख रही हैं............।

अनायास पलकें गीली हो गईं, और मैं अधिक देर तक वहाँ खड़ा नहीं रह सका।

लेम्प-पोस्ट की रौशनी में चमचमाती सड़क पर इक्के-दुक्के तांगे आ-जा रहे थे। मैं सड़क को पार कर, सामने वाली फुटपाथ पर बढ़ गया।

कुछ परछाइयाँ अब भी सड़कों पर रेंग रही थीं। मेरी परछाई, कभी मुझसे आगे, कभी पीछे हो जाती...............।

••

□ प्रस्तुत पुस्तक के लेखक गण

१. श्री श्याम श्रोत्रिय,
श्री रघुनाथराय जाजोदिया,
रा उ. मा. वि. सुजानगढ़ (राज०)

२. श्री वृजेश 'चंचल',
शारदा सदन, वृजराजपुरा,
कोटा–६ (राज०)

३. श्रीमती शकुन्तला 'रेणु',
नवरत्न सरस्वती सदन,
झालरापाटन (राज०)

४. श्रीनन्दन चतुर्वेदी,
१४/३१६, बजाजखाना, घण्टाघर,
डाकोत पाड़ा, कोटा–६ (राज०)

५. श्री बी० एल० जोशी,
राजकीय उ. मा. वि. डूँगला
चित्तौड़ (राजस्थान)

६. श्री रमेशकुमार 'शील',
राजकीय उ. मा. वि. बयाना
भरतपुर (राजस्थान)

७. श्री कान्तिचंद्र भारद्वाज,
राजकीय बहु उ.मा.वि. गुमानपुरा
कोटा (राजस्थान)

८. श्री भगवंतराय गाजरे,
राजकीय उ. मा. वि. आनिन्द
जोधपुर (राज०)

९ श्री चतुर्भुज शर्मा, समन्वयक,
अभिनव केन्द्र, टोंक
(राजस्थान)

१०. श्री चन्द्रमोहन हाड़ा 'हिमकर',
राज्य मूल्यांकन केन्द्र अजमेर
(राज०)

११. श्री भागचन्द जैन धानमंडी,
किशनगढ़ अजमेर (राजस्थान)

१२. श्री विश्वेश्वर शर्मा,
श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी
चोहट्टा, उदयपुर (रज०)

१३. श्री देवेन्द्र मिश्र,
गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर
चूरू (राज०)

१४. श्री गोपालकृष्ण जिंदल,
राजकीय मा० वि. गगवाना
अजमेर (राज०)

१५. श्रीमती कंचनलता,
राजकीय मा. वि. डीडवाना
नागौर (राज०)

१६. श्री भगवतीलाल व्यास,
विद्याभवन हा. सेकेन्डरी स्कूल,
उदयपुर (राज०)

१७. सुश्री दीपाली सान्याल, 'सुचि',
राजकीय उ.मा. बालिका शाला,
प्रतापगढ़ (चितौड़गढ़)
(राजस्थान)

१८. सुश्री सावित्रीदेवी रांका,
द्वारा किताब महल, चौड़ा रास्ता,
जयपुर (राज०)

१९. श्री नाथूलाल गुप्त,
राजकीय उ. मा. वि. छिपाबड़ौद
कोटा (राज०)

२०. श्री ओमदत्त जोशी,
राजकीय प्राथमिक शाला, मसूदा
अजमेर (राज०)

२१. कुमारी सुमन तारे,
राजकीय कन्या मा.वि. लाखेरी
बूंदी (राज०)

२२. श्री जी. वी. आज़ाद,
हाथीभाटा, अजमेर (राजस्थान)

२३. श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा, 'ललित'
राजकीय उ. मा. वि. वजीरपुर
सवाईमाधोपुर (राजस्थान)

२४. श्री गौरीशंकर आर्य,
शिक्षा प्रसार अधिकारी,
पं. स. डग झालावाड़ (राज०)

२५. श्री मदनलाल शर्मा,
गांधी विद्यामंदिर, सरदारशहर
चूरू (राज०)

२६. श्री जगदीशचन्द शर्मा,
राजकीय मा. वि. गिलूण्ड
उदयपुर (राज०)

२७. श्री यज्ञदत्त 'अक्षय',
गौतम हाई स्कूल, अजमेर (राज०)

२८. श्री राधाकृष्ण शास्त्री,
खाचरियावास सीकर (राज०)

२९. श्री सत्य 'शकुन',
राजकीय मा. वि. बरसिंहसर
बीकानेर (राज०)

३०. श्री त्रिलोक गोयल,
अग्रसेन नगर, अजमेर (राज०)

३१. श्री सुरेन्द्र 'अँचल',
राजकीय मा.शा. भीम
उदयपुर (राज०)

३२. श्री श्रीलाल मिश्र,
रामचन्द्र गोयनका मा. शा.
डूण्डलोद झुन्झुनू (राज०)

३३. डोरोथी विमला,
राजकीय उ. मा. कन्या शाला,
बीकानेर (राज०)

३४. डा. शिवकुमार शर्मा,
राज्य शिक्षा संस्थान,
उदयपुर (राज०)

३५. श्री महेन्द्रकुमार कुलश्रेष्ठ,
महात्मागांधी राज. उ. मा. वि.
(राज०) कोटा

३६. श्री रामसिंह अरोरा

३७. श्री करणीदान बारहठ,
मालारामपुरा, सांगरिया
श्रीगंगानगर (राज०)

३८. श्री जगदीश 'सुदामा'
श्रीकृष्ण निकुंज, भट्टियानी
चोहट्टा, उदयपुर (राज०)

□□□